प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ४

चौथी बार
नवम्बर, १९५४

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिन्टिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी गिरगाँव, बम्बई नं० ४

अनुवादकर्त्ताका वक्तव्य

बंगलासे अनुवाद करनेका मेरे लिए यह पहला ही मौका है। इसके पहले मैंने एक छोटी-सी कहानीका * अनुवाद अवश्य किया था।

हिन्दीमें जिसे 'टकसाली भाषा' कहते हैं, उससे मुझे एक तरहकी चिढ़-सी है। मेरी समझमें वह नपी-तुली, एक खास चौखटेमें बैठी हुई, निष्प्राण भाषा है जो हृदयकी भाषा नहीं हो सकती, उसमे लेखकका व्यक्तित्व अप्रकट ही रह जाता है।

वर्तमान समयमे सभी भाषाओंकी शैलियोंका विकास हो रहा है; परंतु हिन्दी इस विषयमें बहुत पिछड़ी हुई है। अभी तक इसमे उसी नपी-तुली भाषाका ही, यद्यपि कुछ समयसे कुछ विद्रोही भी दिखाई देने लगे हैं, बोलबाला है।

भाषाको भावों, रसों, विचारोंकी अनुगामिनी होना चाहिए। भावोंके आवेगमें जब बहुत-से विचार आकर हृदयमे ऊथल-पुथल मचाते हैं तब भाषाके लिए यह संभव नहीं कि वह शान्त अविच्छिन्न प्रवाहमें किसी बँधे हुए तरीकेसे ही बाहर निकले। जब हमारा मन गहरे दार्शनिक 'मूड' में होता है तब भाषा भी गंभीर और बड़े बड़े मिश्रित वाक्योंवाली निकलती है। इसके सिवाय साधारण बोल-चालमें भी हम उस भाषाका उपयोग नहीं करते जिसका उपयोग टकसाली भाषाके हिमायती लिखनेमे करते हैं।

शरद् बाबूकी भाषा और शैली हमेशा प्रसंगके अनुसार बदलती रहती है। जब वे किसी गहरी मनोविज्ञानिक या दार्शनिक चर्चामे पड़ते हैं या किसी गहरे भावको प्रकट करते हैं तब उनकी शैली भी उसी परिमाणमे गंभीर हो जाती है। उनकी लेखनी बड़ी ही स्वाभविकतासे, एक एक वाक्यमें अनेक भाव भरती हुई, लगातार लम्बे लम्बे वाक्य उगलती हुई चली जाती है। इसी तरह जब वे कोई चुभती हुई बात कहते हैं तब दो-दो तीन-तीन शब्दोंके वाक्योंकी झड़ी-सी लगा देते हैं। हिमालयके शिखरों और चट्टानोंपरसे जोर-शोरसे प्रवाहित होनेवाली गंगा मानों समतल-भूमिपर आकर मन्थर गतिसे बहने लगती है।

---

* यह छोटी कहानी तसवीर (छवि) शरत्साहित्यके तीसरे भागमें प्रकाशित हुई है।

अनुवाद-कर्त्ताओंमें बहुत कम ऐसे हैं जो मूल लेखकोंकी शैलीको अक्षुण्ण रखनेका प्रयत्न करते हैं। वे मूलके सधारणसे साधारण वाक्योंको तोड़कर दो-दो तीन-तीन वाक्य बना देते हैं और जगह जगह अपनी ओरसे बिल्कुल ही नये वाक्य और शब्द भर देते हैं और इस तरह मूलकी अपेक्षा अनुवादको सवाया कर देते हैं। बीच बीचमें जहाँ भाव कुछ गंभीर होते हैं वहाँ वे अपनी तरफसे उनकी टीका या भाष्य करनेसे भी नहीं चूकते। उदाहरणार्थ, साधारण बातचीतमें हम लोग 'अर्थात्' 'यानी' 'या' आदि शब्दोंकी सहायतासे अपनी बातको अधिक स्पष्ट करनेकी कोशिश नहीं करते, बल्कि पहलेसे ही सरल वाक्य या शब्दोंका उपयोग करते हैं; परंतु अनुवादकर्त्ता इसकी परवा नहीं करते और निरंकुश होकर अपनी टीकाको अनुवादमें शामिल कर देते हैं। मानों मूल लेखकको अपना भाव स्पष्ट करनेकी कुछ फिक्र ही न हो।

मेरे इस अनुवादमें और चाहे जितनी त्रुटियाँ हो, परन्तु, भाषा, भाव और शैलीमें मैंने शक्ति-भर मूलका पूरा पूरा अनुकरण किया है और मेरा विश्वास है कि, शरद् बाबू यदि कल हिन्दी सीखकर हिन्दीमें लिखने लगें तो उनकी लेखनशैली इस अनुवादकी शैलीसे अधिक भिन्न न होगी। आप इस अनुवादमें मूलसे असम्मत वाक्योंका प्रयोग अथवा मूलके वाक्यों, भावों और अलंकारोंका लोप न पायँगे।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दीमें अप्रचलित संस्कृत शब्दोंको जैसाका तैसा उठाकर, बङ्गलाकी विभक्तियोंके बदले हिन्दी विभक्तियाँ डालकर, बङ्गलाको हिन्दी बनानेकी कोशिश की गई है अथवा वाक्यशः अनुवाद करनेकी धुनमें मूलका प्रसाद गुण नष्ट हो जाने दिया है। मैंने इन दोषोंसे अपने अनुवादको अछूता रखनेकी भरसक कोशिश की है। साधारण बङ्गला-भाषा-भाषियोंके लिए मूल बङ्गला समझना जितना सरल या कठिन है, हिन्दीभाषियोंके लिए उसका यह हिन्दी अनुवाद समझना भी उतना ही सरल या कठिन होगा। मैंने उसकी सरलता या कठिनतामें न्यूनाधिक्य करनेकी कोशिश नहीं की है। इसे मैं एक तरहसे अनधिकार चेष्टा समझता हूँ।

शरद् बाबू जगह जगहपर साहित्यिक प्रतीकवाद (Symbolism) के गंभीर अलंकारोंका प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार अपने मनोविज्ञानको भाषा-द्वारा, घटनाओंके द्वारा, शब्दोंके हेर-फेरसे, प्रकट करते हैं। विशिष्ट शब्दको

विशिष्ट स्थानमें विशिष्ट तरहसे उपयोग करनेमें उनका कोई न कोई गूढ़ उद्देश्य रहता है। मैंने इस ओर भी पूरा ध्यान दिया है और उनकी उक्त विशिष्टताको सुरक्षित रखनेकी कोशिश की है।

हिन्दीमें विराम चिह्नोंके उपयोगके सम्बन्धमें काफ़ी अराजकता फैली हुई है। एक ही वाक्यमें एक साथ अनेक विचार और भावोंका जहाँ प्रवेश होता है वहाँ उन्हें सुलझाकर स्पष्ट करनेके लिए, तथा लिखित भाषामें बोल-चालकी स्वाभाविकताकी पुट देनेके लिए, विराम चिह्नोंका उपयोग होना चाहिए। इस अनुवादमें मैंने विराम-चिह्नोंका उपयोग बहुत अंशोंमें अमेरिकन विराम-पद्धतिके अनुसार किया है।

अनुवाद-कार्यकी ओर मेरी रुचि नहीं है· परन्तु, एक तो पिताजीका इसके लिए बहुत आग्रह हुआ, और दूसरे मैं बंगला भाषाका विशेष ज्ञान भी प्राप्त करना चाहता था जिसके लिए अनुवादकार्य बहुत ही उपयुक्त है, इसलिए मुझे इस उद्योगमें प्रवृत्त होना पड़ा। मालूम नहीं, इसमें कहाँ तक सफल हुआ हूँ। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि परिश्रम करनेमें मैंने कोई त्रुटि नहीं की है।

१०-११-३६ —हेमचन्द्र मोदी

श्रीकान्त

१

मेरी सारी जिन्दगी घूमनेमें ही बीती है। इस घुमक्कड़ जीवनके तीसरे पहरमें खड़े होकर, उसके एक अध्यायको सुनाते हुए, आज मुझे न जाने कितनी बातें याद आ रही हैं।

यों घूमते फिरते ही तो मैं बच्चेसे बूढ़ा हुआ हूँ। अपने-पराये सभीके मुँहसे अपने सम्बन्धमें केवल 'छिः छिः' सुनते सुनते मैं अपनी जिन्दगीको एक बड़ी भारी 'छिः छिः' के सिवाय और कुछ भी नहीं सोच सका। किन्तु बहुत कालके बाद जब आज मैं कुछ याद और कुछ भूली हुई कहानीकी माला गूँथने बैठा हूँ और सोचता हूँ कि जीवनके उस प्रभातमें ही क्यों उस सुदीर्घ 'छिः छिः' की भूमिका अङ्कित हो गई थी तब हठात् यह सन्देह होने लगता है कि सब लोग इस 'छिः छिः' को जितनी बड़ी करके देखते थे उतनी बड़ी शायद वह नहीं थी। जान पड़ता है, शायद, भगवान् जिसे अपनी सृष्टिके ठीक बीचमें जबरन धकेल देते हैं उसे भला लड़का कहलाकर एग्ज़ामिन पास करनेकी सुविधा नहीं देते; और न वे उसे गाड़ी-घोड़े-पालकीपर लाव-लश्करके साथ भ्रमण करके 'कहानी' नाम देकर छपानेकी ही अभिरुचि देते हैं। उसे बुद्धि तो शायद वे कुछ देते हैं, परतु दुनियादार लोग उसे 'सु-बुद्धि' नहीं कहते! इसी कारण उसकी प्रवृत्ति ऐसी असंगत, ऐसी निराली होती है, और उसके देखनेकी चीज़, और जाननेकी तृष्णा, स्वभावतः ऐसी बेजोड़ होती है कि, यदि उसका वर्णन किया जाय तो, शायद, 'सु-बुद्धि' वाले लोग हँसते हँसते मर जायँ। उसके बाद वह मन्द बालक, न जाने किस तरह, अनादर और अवहेलाके कारण, बुरोंके आकर्षणसे और भी बुरा होकर, धक्के और ठोकरें खाता हुआ,

अज्ञात-रूपसे अंतमें किसी दिन अपयशकी झोली कंधेपर रखकर, कहीं चल देता है, और बहुत समयतक उसका कोई पता ही नहीं लगता।

अतएव इन सब बातोंको रहने देता हूँ। जो कुछ कहने बैठा हूँ वही कहता हूँ। परंतु कहनेसे ही तो कहना नहीं हो जाता। भ्रमण करना एक बात है और उसका वर्णन करना दूसरी बात। जिसके भी दो पैर हैं, वह भ्रमण कर सकता है किन्तु दो हाथ होनेसे ही तो किसीसे लिखा नहीं जा सकता। लिखनां तो बड़ा कठिन है। सिवाय इसके, बड़ी भारी मुश्किल यह है कि, भगवानने मेरे भीतर कल्पना-कवित्वकी एक बूँद भी नहीं डाली। इन अभागिनी आँखोंसे जो कुछ दीखता है, ठीक वही देखता हूँ। वृक्षको ठीक वृक्ष ही देखता हूँ और पहाड़ पर्वतोंको पहाड़-पर्वत। जलकी ओर देखनेसे वह जलके सिवाय और कुछ नहीं जान पड़ता। आकाशमें बादलोंकी तरफ आँख फाड़कर देखते देखते मेरी गर्दन अवश्य दुखने लगी है, बादल बादल ही नजर आये हैं, उनमें किसीकी निबिड़ केश-राशि तो क्या दीखेगी, बालका टुकड़ा भी खोजे नहीं मिला। चन्द्रमाकी ओर देखते देखते आँखें पथरा गई हैं परंतु उसमें भी कभी किसीका मुख-उख नजर न आया। इस प्रकार भगवानने ही जिसकी विडम्बना की हो उसके द्वारा कवित्व-सृष्टि कैसे हो सकती है? यदि हो सकती है तो केवल यही कि वह सच सच बात सीधी तरहसे कह दे। इसलिए मैं यही करूँगा।

किन्तु मैं घुमक्कड़ क्यों हो गया, यह बतानेके पहले उस व्यक्तिका कुछ परिचय देना आवश्यक है जिसने जीवनके प्रभातमें ही मुझे इस नशेमें मस्त कर दिया था। उसका नाम था इन्द्रनाथ। हम दोनोंका प्रथम परिचय एक फूटबाल-मैचमें हुआ। जानता नहीं कि वह आज जीवित है या नहीं। क्योंकि, बरसों पहले एक दिन वह बड़े सुबह उठकर, घर-बार जमीन-जायदाद और अपने कुटुम्बको छोड़कर केवल एक धोती लेकर चला गया और फिर लौटकर नहीं आया। ओह, वह दिन आज किस तरह याद है!

स्कूलके मैदानमें बंगाली और मुसलमान छात्रोंमें फूटबाल-मैच था। सन्ध्या हो रही थी। मगन होकर देख रहा था। आनन्दकी सीमा न थी। हठात्,—अरे, यह क्या! तड़ातड़ तड़ातड़ शब्द और 'मारो सालेको, पकड़ो सालेको' की पुकार मच गई। मैं विह्वल-सा हो गया। दो-तीन मिनट,—बस इतनेमें कहाँ कौन गायब हो गया, निश्चय ही न कर पाया। ठीक तौरसे

पता लगा तब, जब कि मेरी पीठपर आकर एक छतरीका पूरा बेंट तड़ाकसे टूट गया तथा और भी दो-तीन बेंट सिर और पीठपर पड़नेको उद्यत दीखे। देखा, पाँच-सात मुसलमान छोकरोंने मेरे चारों ओर व्यूह-रचना कर ली है और भाग जानेको जरा-सा भी रास्ता नहीं छोड़ा है।

और भी एक बेंट,—और भी एक। ठीक इसी समय जो मनुष्य बिजलीके वेगसे उस व्यूहको भेदता हुआ मेरे आगे आकर खड़ा हो गया, वह था इन्द्रनाथ।

रंग उसका काला था। नाक वंशीके समान, कपाल प्रशस्त और सुडौल, मुखमें दो-चार चेचकके दाग। ऊँचाई मेरे बराबर ही थी किन्तु उम्र मुझसे कुछ अधिक थी। कहने लगा, "कोई डर नहीं है, तुम मेरे पीछे पीछे बाहर निकल आओ।"

उस लड़केकी छातीमे जो साहस और करुणा थी, वह दुर्लभ होते हुए भी शायद असाधारण नहीं थी। परंतु इसमे जरा भी संदेह नहीं कि उसके दोनों हाथ असाधारण थे। यही नहीं कि वे बहुत बलिष्ठ थे, वरन् लम्बाईमें भी घुटनों तक पहुँचते थे। सिवाय इसके, उसे एक सुविधा यह भी थी कि जो उसे जानता नहीं था उसके मनमें यह आशंका भी न हो सकती थी कि विवादके समय यह भला आदमी अकस्मात् अपना तीन हाथ लम्बा हाथ बाहर निकालकर मेरी नाकपर एकाएक इस अन्दाज़का घूँसा मार सकेगा। वह घूँसा क्या था, उसे बाघका पंजा कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

दो ही मिनटके भीतर मैं उसकी पीठसे सटा हुआ बाहर आ गया; और तब, इन्द्रने बिना किसी आडम्बरके कहा, "भागो।"

भागना शुरू करके मैंने पूछा, "और तुम?" उसने रुखाईसे जवाब दिया, "अरे तू तो भाग—गधे कहींके।"

गधा होऊँ—या चाहे जो होऊँ, मुझे खूब याद है, मैंने हठात् लौटकर और खड़े होकर कहा, "नहीं, मैं नहीं भागूँगा।"

बचपनमें मार-पीट किसने न की होगी? किन्तु, मैं था गाँवका लड़का—दो-तीन महीने पहले ही लिखने-पढ़नेके लिए शहरमे बुआजीके यहाँ आया था।—इसके पहले, इस प्रकार दल बाँधकर, न तो मैंने मार-पीट ही की थी, और न किसी दिन इस तरह दो पूरे छतरीके बेंट ही मेरी पीठके ऊपर टूटे थे। फिर भी मैं अकेला भाग न सका। इन्द्रने एक बार मेरे मुँहकी ओर

देखकर कहा, "नहीं भागेगा, तो क्या खड़े खड़े मार खायगा? देख, उस तरफसे वे लोग आ रहे हैं—अच्छा, तो चल, खूब कसकर दौड़ें।"

यह काम तो मैं खूब कर सकता था। दौड़ते दौड़ते जब हम लोग बड़ी सड़कपर पहुँचे, तब शाम हो गई थी। दूकानोंमें रोशनी हो गई थी और रास्तेपर म्युनिसिपलके केरॉसिनके लेम्प, लोहेके खंभोंपर, एक यहाँ और दूसरा वहाँ, जल रहे थे। आँखोंमें जोर होनेपर, ऐसा नहीं है कि एकके पास खड़े होनेपर दूसरा दिखाई न पड़ता। आततायियोंकी अब कोई आशंका नहीं थी। इन्द्र अत्यन्त स्वाभाविक सहज स्वरसे बात कर रहा था। मेरा गला सूख रहा था, परंतु आश्चर्य है कि इन्द्र रत्ती-भर भी नहीं हाँफा था। मानों कुछ हुआ ही न हो—न मारा हो, न मार खाई हो और न दौड़ा ही हो। जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसे भावसे उसने पूछा, "तेरा नाम क्या है रे?"

"श्री—का—न्त।"

"श्रीकान्त? अच्छा," कहकर उसने अपने जेबसे मुट्ठी-भर सूखी पत्ती बाहर निकाली। उसमेंसे कुछ तो उसने खा ली और कुछ मेरे हाथमें देकर कहा, "आज खूब ठोका सालोंको, ले खा।"

"क्या है यह?"

"बूटी।"

मैंने अत्यन्त विस्मित होकर कहा, "भाँग? यह तो मैं नहीं खाता।"

उसने मुझसे भी अधिक विस्मित होकर कहा, "खाता नहीं? कहाँका गधा है रे! खूब नशा होगा—खा, चबाकर लील जा।"

नशेकी चीज़का मज़ा उस समय तक ज्ञात नहीं था; इसलिए सिर हिलाकर मैंने उसे वापस कर दिया। वह उसे भी चबाकर निगल गया।

अच्छा, तो फिर सिगरेट पी, "यह कहकर उसने जेबसे दो सिगरेट और दियासलाई बाहर निकाली। एक तो उसने मेरे हाथमें दे दी और दूसरी अपने हाथमें रक्खी। इसके बाद, वह अपनी दोनों हथेलियोंको एक विचित्र प्रकारसे जुटाकर, उस सिगरेटको चिलम बनाकर जोरसे खींचने लगा। बापरे,—कैसे जोरसे उसने दम खींचा कि एक ही दममें सिगरेटकी आग सिरेसे चलकर नीचे उतर आई! लोग चारों तरफ खड़े थे—मैं बहुत ही डर गया। मैंने डरते हुए पूछा, "पीते हुए यदि कोई देख ले तो?"

"देख ले तो क्या? सभी जानते हैं।" यह कहकर स्वच्छन्दतासे

सिगरेट पीता हुआ वह चौराहेपर मुड़ा और मेरे मनपर एक गहरी छाप लगाकर, एक ओरको चल दिया।

आज उस दिनकी बहुत-सी बातें याद आती हैं। सिर्फ इतना ही याद नहीं आता, कि उस अद्भुत बालकके प्रति, उस दिन मुझे प्रेम उत्पन्न हुआ था, अथवा यों खुले आम भाँग और तमाखू पीनेके कारण, मन ही मन घृणा।

इस घटनाके बाद करीब एक महीना बीत गया। एक दिन रात्रि जितनी उष्ण थी उतनी ही अँधेरी! कहीं वृक्षकी एक पत्ती तक न हिलती थी। सब छतपर सोये हुए थे। बारह बज चुके थे, परतु किसीकी भी आँखांमें नींदका नाम न था। एकाएक बाँसुरीका बहुत मधुर स्वर कानोंमें आने लगा। साधारण 'रामप्रसादी' सुर था। कितनी ही दफे तो सुन चुका था, किन्तु बाँसुरी इस प्रकार मुग्ध कर सकती है, यह मैं न जानता था। हमारे मकानके दक्षिण-पूर्वके कोनेमें एक बड़ा भारी आम और कटहलका बाग था। कई हिस्सेदारोंकी सम्पत्ति होनेके कारण कोई उसकी खोज-खबर नहीं लेता था, इस लिए पूरा बाग निबिड जंगलके रूपमें परिणत हो गया था। गाय-बैलोंके आने-जानेसे उस बागके बीचमेसे केवल एक पतली-सी पगडंडी बन गई थी। ऐसा मालूम हुआ कि मानों उसी वन-पथसे बाँसुरीका सुर क्रमशः निकटवर्ती होता हुआ आ रहा है। बुआ उठकर बैठ गईं और अपने बड़े लड़केको उद्देश कर बोलीं, "हाँ रे नवीन, यह बाँसुरी राय-परिवारका इन्द्र ही बजा रहा है न?" तब मैंने समझा कि इस वंशीधारीको ये सभी चीन्हते हैं। बडे भइयाने कहा, "उस हतभागेको छोड़कर ऐसी वंशी दूसरा कौन बजायगा और, उस जंगलमे, ऐसा कौन है जो ढूकेगा?"

"बोलता क्या है रे! वह क्या गुसाईंके बगीचेमेंसे आ रहा है?"

बड़े भइया बोले, "हाँ।"

ऐसे भयंकर अंधकारमे उस अदूवर्ती गहरे जगलका खयाल करके बुआ मन ही मन मानों सिहर उठीं और डर-भरे कण्ठसे प्रश्न कर उठीं, "अच्छा उसकी माँ भी क्या उसे नहीं रोकती? गुसाईंके बागमे तो न जाने कितने लोग साँपके काटनेसे मर गये हैं—उस जंगलमे इतनी रातको वह लड़का आया ही क्यों?"

बडे भइया कुछ हँसकर बोले, "इसलिए कि उस मुहल्लेसे इस मुहल्लेतक आनेका वही सीधा रस्ता है। जिसे भय नहीं है, प्राणोंकी पर्वाह नहीं है, वह

क्यों बड़े रास्तेसे चक्कर काटकर आवेगा माँ ? उसे तो जल्दी आनेसे मतलब, फिर चाहे उस रास्तेमें नदी-नाले हों,—चाहे साँप-बिच्छू और बाघ-भालू हों !"

"धन्य है रे लड़के, तुझे !" कहकर बुआ एक निःश्वास डालकर चुप हो रहीं। वंशीकी ध्वनि क्रमशः सुस्पष्ट होती गई और फिर धीरे धीरे अस्पष्ट होती हुई दूर जाकर विलीन हो गई।

यही था वह इन्द्रनाथ। उस दिन तो मैं यह सोचता रहा था कि क्या ही अच्छा होता, यदि इतना अधिक बल मुझमें भी होता और मैं भी इसी तरह मार-पीट कर सकता और आज रात्रिको जब तक सो न गया तब तक यह कामना करता रहा कि यदि किसी तरह ऐसी वंशी बजा सकता !

परन्तु उससे सद्भाव किस तरह पैदा करूँ ? वह तो मुझसे बहुत ऊँचेपर है। उस समय वह स्कूलमें भी न पढ़ता था। सुना था कि, हेडमास्टर साहबने अन्याय करके उसके सिरपर ज्यों ही गधेकी टोपी लगानेका आयोजन किया, त्यों ही, वह मर्माहत हो, अकस्मात् हेडमास्टरकी पीठपर एक धौल जमाकर, घृणा-भावसे स्कूलके रेलिंग फाँदता हुआ घर भाग आया और फिर गया ही नहीं। बहुत दिनों बाद उसीके मुँहसे सुना था कि वह एक न-कुछ अपराध था। हिन्दुस्तानी पंडितजीको क्लासके समयमें ही नींद आने लगती थी, सो एक बार जब वे नींद ले रहे थे तब, उनकी गाँठ-बँधी चोटीको उसने कैंचीसे काटकर जरा छोटा-भर कर दिया था ! और उससे उनकी विशेष कुछ हानि भी नहीं हुई, क्यों कि पंडितजी जब घर पहुँचे तब उनको अपनी चोटी अपनी चपकनकी जेबमें ही पड़ी हुई मिल गई ! वह कहीं खोई नहीं गई, फिर भी पंडितजीका गुस्सा शान्त क्यों न हुआ और क्यों वे हेडमास्टर साहबके पास नालिश करने गये—यह बात आजतक भी इन्द्रकी समझमें नहीं आई। परंतु फिर भी यह बात वह ठीक समझ गया था कि स्कूलसे रेलिंग फाँदकर घर आनेका रस्ता तैयार हो जानेपर फिर फाटकमेंसे वापिस लौटकर जानेका रास्ता प्रायः खुला नहीं रह जाता। और फाटकका रास्ता खुला रहा या नहीं रहा, यह देखनेकी उत्सुकता भी, उसे बिल्कुल नहीं हुई। यहाँ तक कि सिरपर १०-२० अभिभावकोंके होनेपर भी, उनमेंसे कोई भी, उसका मुँह किसी भी तरह फिर विद्यालयकी ओर नहीं फेर सका।

इन्द्रने कलम फेंककर नावका डाँड़ हाथमें ले लिया। तबसे वह सारे दिन गंगामें नावके ऊपर रहने लगा। उसकी अपनी एक छोटी-सी डोंगी

थी। चाहे आँधी हो चाहे पानी, चाहे दिन हो चाहे रात, वह अकेला उसी-पर बना रहता। कभी कभी एकाएक ऐसा होता कि वह पश्चिमकी गंगाके इकतरफा बहावमें अपनी डोंगीको छोड़ देता, डॉड़ पकड़े चुपचाप बैठा रहता और दस-दस पंद्रह पंद्रह दिनतक फिर उसका कुछ भी पता न लगता।

एक दिन इसी प्रकार जब वह बिना किसी उद्देश्यके अपनी डोंगी बहाये जा रहा था, तब उसके साथ मिलनकी गाँठको सुदृढ करनेका मुझे मौका मिला। उस समय मेरी यही एक मात्र कामना थी कि उससे किसी न किसी प्रकार मित्रताका सम्बन्ध दृढ किया जाय, और यही बतलानेके लिए मैंने इतना कहा है।

किन्तु जो लोग मुझे जानते हैं वे तो कहेंगे कि यह तो तुम्हे नहीं सोहता भैया! तुम ठहरे गरीबके लड़के और फिर लिखना-पढना सीखनेके लिए अपना गाँव छोड़कर पराये घर आकर रहे हो, फिर तुम उससे मिले ही क्यों और मिलनेके लिए इतने व्याकुल ही क्यों हुए? यदि ऐसा न किया होता, तो आज तुम——

ठहरो, ठहरो, अधिक कहनेकी ज़रूरत नहीं है। यह बात हजारों लोगोंने लाखों ही बार मुझसे कही है: स्वयं खुद मैंने भी यह प्रश्न अपने आपसे करोड़ों बार पूछा है, परंतु सब व्यर्थ। वह कौन था?—इसका जवाब तुममेंसे कोई भी नहीं दे सकता और फिर, 'यदि ऐसा न हुआ होता तो मैं क्या हो जाता,' इस प्रश्नका समाधान भी तुममेसे कोई कैसे कर सकता है? जो सब कुछ जानते हैं, केवल वे (भगवान्) ही बता सकते हैं कि क्यों इतने आदमियोंको छोड़कर एकमात्र उसी हतभागेके प्रति मेरा सारा हृदय आकृष्ट हुआ और क्यों उस मन्दसे मिलनेके लिए मेरे शरीरका प्रत्येक कण उन्मुख हो उठा।

वह दिन मुझे खूब याद है। सारे दिन लगातार गिरते रहनेपर भी मेह बन्द नहीं हुआ था। सावनका आकाश घने बादलोंसे घिरा हुआ था। शाम होते-न-होते चारों ओर अंधकार छा गया था। जल्दी जल्दी खाकर, हम कई भाई रोजकी तरह बाहर बैठकखानेमें बिछे हुए बिस्तरपर रेंडीके तेलका दीपक जला कर, पुस्तक खोलकर, बैठ गये थे। बाहरके बरामदेमें एक तरफ फूफाजी केन्वासकी खाटपर लेटे हुए अपनी साध्य तन्द्राका उपभोग कर रहे थे और दूसरी ओर बूढ़े रामकमल भट्टाचार्य अफीम खाकर अंध-कारमें आँखें मीचे हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। ड्योढ़ीपर हिन्दुस्तानी दरबा-नका 'तुलसीदासी स्वर' सुन पड़ रहा था और भीतर हम तीनों भाई मँझले

भइयाकी कड़ी देख-रेखमें चुपचाप विद्याभ्यास कर रहे थे। छोटे भइया जतीन और मैं तीसरी और चौथी कक्षामें पढ़ते थे और गम्भीर स्वभावके मझले भइया दो दफे एण्ट्रेन्स फेल होकर तीसरी दफेकी तैयारी कर रहे थे। उनके प्रचण्ड शासनमें किसीको एक मिनट भी नष्ट करनेका साहस न होता था। हम लोगोंका पढ़नेका समय था ७॥ से ९ बजे तक। उस समय बात-चीत करके हम उनकी 'पास होने' की पढ़ाईमें विघ्न न डाल सकें, इसके लिए वे रोज कैंचीसे काट काटकर कागजके २५-३० टिकट जैसे टुकड़े रख छोड़ते। उनमेंसे किसीमें लिखा होता 'बाहर जाना है,' किसीमें 'थूकना है,' किसीमें 'नाक साफ करना है,' किसीमें 'पानी पीना है' आदि। जतीन भइयाने एक नाक साफ करनेका टिकट मझले भइयाके सामने पेश किया। मझले भइयाने उसपर अपने हाथसे लिख दिया '८ बजकर ३३ मिनटसे लेकर ८ बजकर ३३॥ मिनट तक।' अर्थात् इतने समयके लिए वह नाक साफ करने जा सकते हैं। छुट्टी पाकर जतीन भइया टिकट हाथमें लेकर गये ही थे कि छोटे भइयाने थूकने जानेका टिकट पेश कर दिया। मझले भइयाने उसपर 'नहीं' लिख दिया। इसपर दो मिनट तक छोटे भइया मुँह फुलाये बैठे रहे और उसके बाद उन्होंने पानी पीनेकी अर्जी दाखिल कर दी। इस बार वह मंजूर हो गई। मझले भइयाने इसके लिए लिख दिया, "हाँ, ८ बजकर ४१ मिनटसे लेकर ८ बजकर ४७ मिनट तक।" परवाना लेकर छोटे भइया हँसते हुए ज्यों ही बाहर गये त्यों ही जतीन भइयाने लौटकर हाथका टिकट वापस दे दिया। मझले भइयाने घड़ी देखकर और समय मिलाकर एक रजिस्टर बाहर निकाला और उसमें वह टिकट गोंदसे चिपका दिया। यह सब सामान उनकी हाथकी पहुँचके भीतर ही रक्खा रहता था। सप्ताह समाप्त होनेपर इन सब टिकटोंके सामने रखकर कैफियत तलब की जाती थी कि क्यों अमुक दिन तुमने इजाजतसे अधिक समय लगा दिया।

इस प्रकार मझले भइयाकी अत्यन्त सतर्कता और शृंखलाबद्धतासे,—हमारा और उनका खुदका,—किसीका जरा-सा भी समय नष्ट न होने पाता था। इस तरह प्रति दिन, डेढ़ घण्टा, खूब पढ़ लेनेके उपरान्त, जब हम लोग रातके नौ बजे घरमें सोनेको आते थे तब निश्चय ही माता सरस्वती हमें घरकी चौखटतक पहुँचा जाती थीं; और दूसरे दिन स्कूलकी कक्षासे जो सब सम्मान

सौभाग्य प्राप्त करके हम घर लौटते थे वह तो आप समझ ही गये होंगे। परन्तु मझले भइयाका दुर्भाग्य कि उनके बेवकूफ परीक्षक उन्हें कभी न चीन्ह सके! वे निजकी तथा पराई शिक्षा-दीक्षाके प्रति इतना प्रबल अनुराग तथा समयके मूल्यके सम्बन्धमे अपने उत्तरदायित्वका इतना सूक्ष्म खयाल रखते थे, फिर भी, वे उन्हें बराबर फेल ही करते गये। इसे ही कहते हैं अदृष्टका अन्ध न्याय-विचार। खैर, जाने दो—अब उसके लिए दुखी होनेसे क्या लाभ?

उस रात्रिको भी घरके बाहर वही घना अंधकार, बरामदेमें तन्द्राभिभूत वे ही दोनों बुड्ढे और भीतर दीपकके मन्द प्रकाशके सम्मुख गभीर अध्ययनमे लगे हुए हम चारों प्राणी थे।

छोटे भइयाके लौट आते ही प्यासके मारे मेरी छाती एक बारगी फटने लगी। इसीलिए टिकट पेश करके मैं हुक्मकी राह देखने लगा। मझले भइया उसी टिकटोंवाले रजिस्टरके ऊपर झुककर परीक्षा करने लगे कि मेरा पानी पीनेके लिए जाना नियम-संगत है या नहीं,—अर्थात् कल परसों किस परिणाममें मैंने पानी पिया था।

अकस्मात् मेरे ठीक पीछेसे एक 'हुम्' शब्द और साथ ही साथ छोटे भइया और जतीन भइयाका आर्तकण्ठसे निकला हुआ 'अरे बापरे! मार डाला रे' का गगनभेदी चीत्कार सुन पड़ा। उन्हें किसने मार डाला, सिर घुमाकर यह देखनेके पहले ही, मझले भइयाने मुख उठाकर विकट शब्द किया और बिजलीकी तेजीसे सामने पैर फैला दिये जिससे दीवट उलट गया। तब उस अंधकारमें 'दक्ष-यज्ञ' मच गया। मझले भइयाको थी मिर्गीकी बीमारी, इस लिए वे 'ओं ओं' करके दीवट उलटाकर जो चित् गिरे सो फिर न उठे।

ठेलठाल करके मैं बाहर निकला तो देखा कि फूफाजी अपने दोनों लड़कोंको बगलमें दबाये हुए, उनसे भी अधिक तीव्र स्वरमें, चिल्लाकर छप्पर फाड़े डाल रहे हैं। ऐसा लगता था मानों उन तीनों बाप-बेटोंमें इस बातकी होड़ लगी हुई है कि कौन कितना गला फाड़ सकता है।

इसी अवसरपर एक चोर जी छोड़कर भागा जा रहा था और ड्योढ़ीके सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया था। फूफाजी प्रचण्ड चीत्कार करके हुक्म दे रहे थे, "और मारो,—सालेको मार डालो" इत्यादि।

दम-भरमें रोशनी हो गई, नौकर-चाकरों और पास-पड़ौसियोंसे आँगन खचाखच भर गया। दरबानोंने चोरको मारते मारते अधमरा कर दिया

और प्रकाशके सम्मुख खींच लाकर, धक्का देकर गिरा दिया। पर चोरका मुँह देखकर घरभरके लोगोंका मुँह सूख गया—अरे, ये तो भट्टाचार्य महाशय हैं!

तब कोई तो जल ले आया, कोई पंखेसे हवा करने लगा, और कोई उनकी आँखों और मुँहपर हाथ फेरने लगा। उधर घरके भीतर मझले भइयाके साथ भी यही हो रहा था।

पंखेकी हवा और जलके छींटे खाकर रामकमल होशमें आकर लगे फफक फफक कर रोने। सभी लोग पूछने लगे, "आप इस तरह भागे क्यों जा रहे थे?" भट्टाचार्य महाशय रोते रोते बोले, "बाबा, बाघ नहीं, वह एक तगड़ा भालू था—छलाँग मारकर बैठकखानेमेंसे बाहर आ गया!"

छोटे भइया और जतीन भइया बारंबार कहने लगे, "भालू नहीं बाबा, एक भेड़िया था, पूँछ समेटे पायन्दाजके ऊपर बैठा गुर्रा रहा था।"

मझले भइया, होशमें आते ही अधमिची आँखोंसे दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए संक्षेपमें बोले, "दी रायल बेंगाल टाईगर।"

परन्तु वह है कहाँ? चाहे मझले भइयाका 'दी रायल बेंगाल' चाहे रामकमलका 'तगड़ा भालू' हो, परन्तु वह यहाँ आया ही किस तरह और चला ही कहाँ गया? जब इतने लोगोंने उसे देखा है तब वह होगा तो कुछ न कुछ अवश्य ही।

तब किसीने विश्वास किया और किसीने नहीं किया। किन्तु सभी भय-चकित नेत्रोंसे लालटैन लेकर चारों तरफ खोजने लगे।

अकस्मात् पहलवान् किसोरीसिंह 'वह बैठा है' कहकर एक छलाँगमें बरामदेके ऊपर चढ़ गया। उसके बाद वहाँ भी ठेलाठेली मच गई। उतने सब लोग एक साथ बरामदेपर चढ़ना चाहते थे, किसीसे भी क्षण-भरकी देर न सही जाती थी। आँगनके एक तरफ अनारका दरख्त था। मालूम पड़ा कि उसीकी घनी डालियोंमें एक बड़ा जानवर बैठा है। वह बाघसे समान ही मालूम होता था। पलक मारते न मारते सारा बरामदा खाली हो गया और बैठकखाना खचाखच भर गया। बरामदेमें एक भी आदमी न रहा। घरकी उस भीड़मेंसे फूफाजीका उत्तेजित कण्ठस्वर सुन पड़ने लगा, "बरछी लाओ—बन्दूक लाओ—" हमारे मकानके पासके मकानमें गगन बाबूके यहाँ एक मुंगेरी बन्दूक थी। उनका लक्ष्य उसी अस्त्रपर था।

'लाओ' तो ठीक, किन्तु लाए कौन? अनारका झाड़ था दरवाजेके ही

निकट और फिर उसपर बैठा था भेड़िया। हिन्दुस्तानी सिटपटाये तक नहीं और जो लोग तमाशा देखने आये थे वे भी सनाका खींचकर रह गये।

ऐसी विपत्तिके समय न जाने कहाँसे इन्द्र आकर उपस्थित हो गया। शायद वह सामनेके रास्तेसे कहीं जा रहा था और शोर-गुल सुनकर अन्दर घुस आया था। पल-भरमें सौ कण्ठ एक साथ चीत्कार कर उठे, "ओ रे, बाघ है बाघ! भाग जा रे लड़के, भाग जा!"

पहले तो वह हड़बड़ाकर भीतर दौड़ आया किन्तु पल-भर बाद ही, सब हाल सुनकर, निर्भय हो, ऑगनमें उतरकर लालटैन उठाकर देखने लगा। दुमंजलेकी खिड़कियोंमेंसे औरतें साँस रोककर इस साहसी लड़केकी ओर देख देखकर 'दुर्गा' नाम जपने लगीं। नीचे भीड़में खड़े हुए हिन्दुस्तानी सिपाही उसे हिम्मत बँधाने लगे और आभास देने लगे कि एकाध हथियार मिलनेपर वे भी वहाँ आनेको तैयार हैं।

अच्छी तरह देखकर इन्द्रने कहा, "द्वारिका बाबू, यह तो बाघ नहीं मालूम होता।" उसकी बात समाप्त होते न होते वह 'रायल बैंगाल टायगर' दोनों हाथ जोड़कर मनुष्यके ही स्वरमें रो पड़ा और बोला, "नहीं, बाबूजी, नहीं, मैं बाघ-भालू नहीं, श्रीनाथ बहुरूपियाँ हूँ।" इन्द्र ठठाकर हँस पड़ा। भट्टाचार्य महाशय खड़ाऊँ हाथमें लिये सबसे आगे दौड़ पड़े,— "हरामज़ादे, तुझे डरानेके लिए और कोई जगह नहीं मिली?" फूफाजीने महाक्रोधसे हुक्म दिया, "सालेको कान पकड़कर लाओ।"

किशोरीसिंहने उसे सबसे पहले देखा था, इसलिए उसका दावा सबसे प्रबल था। वह गया और उसके कान पकड़कर घसीटता हुआ ले आया। भट्टाचार्य महाशय उसकी पीठपर जोर जोरसे खड़ाऊँ मारने लगे और गुस्सेके मारे दनादन हिन्दी बोलने लगे,—

"इसी हरामज़ादे बदजातके कारण मेरी हड्डी-पसली चूरा हो गई हैं। साले पछहियोंने घूँसे मार मारकर कचूमर निकाल दिया।"

श्रीनाथका मकान बारासतमें था। वह हरसाल इसी समय एक बार रोज़गार करने आता था। कल भी वह इस घरमें नारद बनकर गाना सुना गया था। वह कभी भट्टाचार्य महाशयके और कभी फूफाजीके पैर पड़ने लगा। बोला, "लड़कोंने इतना अधिक भयभीत होकर, और दीवट लुढ़काकर, ऐसा भीषण काण्ड मचा दिया कि मैं स्वयं भी मारे डरके उस वृक्षकी

आड़में जाकर छिप गया। सोचता था कि कुछ शान्ति होनेपर, बाहर आकर, अपना स्वाँग दिखाकर जाऊँगा। किंतु मामला उत्तरोत्तर ऐसा होता गया कि मेरी फिर हिम्मत ही नहीं हुई।"

श्रीनाथ आरजू-मिन्नत करने लगा; किन्तु फूफाजीका क्रोध कम हुआ ही नहीं। बुआजी स्वयं ऊपरसे बोलीं, "तुम्हारे भाग्य भले थे जो सचमुचका बाघ-भालू नहीं निकला, नहीं तो जैसे बहादुर तुम और तुम्हारे दरबान हैं,— छोड़ दो बेचारेको, और दूर कर दो ड्योढ़ीके इन पछहियाँ दरवानोंको। एक जरासे लड़केमें जो साहस है उतना घर-भरके सब आदमियोंमें मिलकर भी नहीं है।" फूफाजीने कोई बात ही न सुनी; वरन् उन्होंने बुआजीके इस अभियोगपर आँखे घुमाकर ऐसा भाव धारण किया कि मानों इच्छा करते ही वे इन सब बातोंका काफी और ठीक ठीक जवाब दे सकते हैं, परन्तु चूँकि औरतोंकी बातोंका उत्तर देनेकी कोशिश करना भी पुरुष जातिके लिए अपमानकारक है इसलिए, और भी गरम होकर हुक्म दिया 'इसकी पूँछ काट डालो।' तब उसकी रंगीन कपड़ेसे लिपटी हुई घासकी बनी लम्बी पूँछ काट डाली गई, और उसे भगा दिया गया। बुआजी ऊपरसे गुस्सेमें बोलीं, "पूँछको रख छोड़ो, किसी समय काम आएगी!"

इन्द्रने मेरीओर देखकर कहा, "मालूम पड़ता है, तुम इसी मकानमें रहते हो, श्रीकान्त?

मैंने कहा, "हाँ, तुम, इतनी रातको कहाँ जाते थे?"

इन्द्र हँसकर बोला, "रात कहाँ है रे, अभी तो संध्या हुई है। मैं जाता हूँ अपनी डोंगीपर मछली पकड़ने, चलता है?"

मैंने डरकर पूछा, "इतने अंधकारमें डोंगीपर चढ़ोगे?"

वह फिर हँसा। बोला, "डर क्या है रे! इसीमें तो मजा है। सिवा इसके क्या अँधेरा हुए बगैर मछलियाँ पाई जा सकती हैं? तैरना जानता है?"

"खूब जानता हूँ।"

"तो फिर चल भाई।" यह कहकर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। कहा, "मैं अकेला इतने बहावमें उस तरफको नाव नहीं ले जा सकता,— ऐसे ही किसीकी खोजमें था जो डरे नहीं।"

मैंने फिर कुछ न कहा। उसका हाथ पकड़े हुए चुपचाप रास्तेपर आ पहुँचा। पहले तो मानो मुझे अपने आपपर ही विश्वास न हुआ कि सचमुच ही उस रात्रिको मैं नाव चलाने जा रहा हूँ, क्योंकि जिस आह्वानके

आकर्षणसे उस स्तब्ध निविड़ निशामें, घरके समस्त शासन-पाशको तुच्छ समझकर, अकेला बाहर चला आया था वह कितना बड़ा आकर्षण था, यह उस समय विचारकर देख सकना मेरे लिए साध्य ही नहीं था। अधिक समय बीतनेके पूर्व ही गोसाईंबागके उस भयङ्कर वन-पथके सामने आ उपस्थित हुआ और इन्द्रका अनुसरण करता हुआ स्वप्नाविष्ट पुरुषकी भाँति उसे पारकर गंगाके किनारे जा पहुँचा।

कंकड़ पत्थरोंका खड़ा किनारा है। सिरके ऊपर एक बहुत प्राचीन बरगदका वृक्ष मूर्तिमान अन्धकारके समान चुपचाप खड़ा है और उसीके करीब तीस हाथ नीचे सूचीभेद्य अंधकारके तलमें, पूरी बरसातका गंभीर जल-स्रोत चट्टानोंसे टकराकर, भँवरोंकी रचना करता हुआ, उद्दाम वेगसे दौड़ रहा है। देखा कि, उसी स्थानपर इन्द्रकी छोटी-सी नाव बँधी हुई है। ऊपरसे देखनेपर ऐसा मालूम हुआ मानों उस खूब तेज जल-धाराके मुखपर केलेके फूलका एक छोटा-सा छिलका लगातार टकरा टकराकर मर रहा है।

मैं स्वयं भी बिलकुल डरपोंक नहीं था। किन्तु जब इन्द्रने ऊपरसे नीचे तक लटकती हुई एक रस्सी दिखलाकर कहा, "डोंगीकी इस रस्सीको पकड़कर चुपचाप नीचे उतर जा; सावधानीसे उतरना, फिसल गया तो फिर खोजनेसे भी तेरा पता नहीं लगेगा।" तब दर असल मेरी छाती धड़क उठी। जान पड़ा कि यह असम्भव है, फिर भी मेरे लिए तो रस्सीका सहारा है—"किन्तु तुम क्या करोगे?"

उसने कहा, "तेरे नीचे जाते ही मैं रस्सी खोल दूँगा और फिर नीचे उतरूँगा। डरकी बात नहीं है, मेरे नीचे उतरनेके लिए बहुत-सी घासकी जड़ें झूल रही हैं।"

और कुछ न कहकर मैं रस्सीके सहारे बड़ी सावधानीसे बमुश्किल नीचे उतर कर नावपर बैठ गया। इसके बाद उसने रस्सी खोल दी और वह झूल गया। वह किस चीजके सहारे नीचे उतरने लगा सो मैं आज भी नहीं जानता हूँ। डरके मारे मेरी छाती इतने जोरसे धड़कने लगी थी कि उसकी ओर मैं देख भी न सका। दो तीन मिनटतक विपुल जल-धाराके उन्मत्त गर्जनके सिवाय कहींसे कोई शब्द भी नहीं सुनाई दिया। एकाएक एक हलकी-सी हँसीके शब्दसे चौंक कर मुँह फिराया तो देखता हूँ कि इन्द्रने दोनों हाथोंसे डोंगीको जोरसे धक्का देकर ठेल दिया है और आप कूदकर उसपर चढ़ बैठा है। क्षुद्र तरी एक चक्कर-सा खाकर नक्षत्र-वेगसे बहने लगी।

२

कुछ ही देरमें सामने और पीछे सघन अन्धकारसे लिप-पुतकर एकाकार हो गया। रह गई दाहिनी और बाईं ओर दोनों सीमाओंतक फैली हुई विपुल उद्दाम जलकी धारा, और उसके ऊपर खूब तेजीसे चलनेवाली वह छोटी-सी नाव और उसपर किशोर वयवाले दो बालक। यद्यपि प्रकृति देवीके अपरिमेय गंभीर रूपको समझनेकी उम्र वह नहीं थी, किन्तु उसे मैं आज भी नहीं भूल सका हूँ। वायुहीन, निष्कम्प, निस्तब्ध, निःसंग निशीथिनीकी मानों वह एक विराट् काली मूर्ति थी। उसके निविड़ काले बालोंसे आकाश और पृथ्वी ढँक गई थी और उस सूची-भेद्य अन्धकारको विदीर्ण करके, कराल दाढ़ोंकी रेखाके समान, उस दिगन्त-विस्तृत तीव्र जलधारासे मानो एक तरहकी अद्भुत निश्चल द्युति, निष्ठुर दबी हुई हँसीके समान, बिखर रही थी। आसपास और सामने, कहीं तो जलकी उन्मत्त धारा तलदेशमें जाकर तथा ऊपरको उठकर फट पड़ती थी, कहीं परस्परके प्रतिकूल गति-संघातसे आवर्तोंकी रचना करती हुई चक्कर खाती थी, और कहीं अप्रतिहत जलप्रवाह पागलकी तरह दौड़ा जा रहा था।

हमारी डोंगी एक कोनेसे दूसरे कोनेकी ओर जा रही है, बस इतना ही मालूम हो रहा था। किन्तु उसपारके उस दुर्भेद्य अन्धकारमें, किस जगह लक्ष्य स्थिर करके, इन्द्र हालको पकड़े चुपचाप बैठा है, यह मैं कुछ न जानता था। इस उम्रमें वह कितना पक्का माझी बन गया था, इसकी मुझे उस समय कल्पना भी न थी। एकाएक वह बोला—

"क्यों रे श्रीकान्त, डर लगता है क्या?"

मैं बोला, "नहीं।"

इन्द्र खुश होकर बोला, "यही तो चाहिए। जब तैरना आता है तब फिर डर किस बातका?" प्रत्युत्तरमें मैंने एक छोटेसे निःश्वासको दबा दिया कि कहीं वह सुन न ले। किन्तु, ऐसी गहरी अँधेरी रातमें, ऐसी जल-राशि और ऐसे दुर्जन प्रवाहमें, तैरना जानने और न जाननेमें क्या अन्तर है, सो मेरी समझमें न आ सका। उसने भी और कोई बात नहीं कही। बहुत देरतक इसी तरह चलते रहनेके बाद कहींसे कुछ आवाज़-सी आई, जो कि अस्फुट और क्षीण थी, किन्तु नौका जैसे जैसे अग्रसर होने लगी वैसे ही वैसे वह आवाज़ भी स्पष्ट और प्रबल होने लगी।—मानों लोगोंका बहुत दूरसे

आता हुआ क्रुद्ध आह्वान हो—मानों कितने ही बाधा-विघ्नोंको लाँघकर, हटाकर, वह आह्वान हमारे कानोंतक आ पहुँचा हो।—वह आह्वान थका हुआ-सा था फिर भी न उसमें विराम था और न विच्छेद ही,—मानों उनका क्रोध न कम ही होता था न बढ़ता ही था और न थमना ही चाहता था। बीच बीचमें एकाध दफा 'झप् झप्' शब्द भी होता था। मैंने पूछा, "इन्द्र यह काहेकी आवाज़ सुन पड़ती है?" उसने नौकाका मुँह कुछ और सीधा करके कहा, "जलके प्रवाहसे उस पारके कगारे टूट-टूटकर गिर रहे हैं. उसीका यह शब्द है।"

मैंने पूछा, "कितने बड़े कगारे हैं! और कैसा प्रवाह है?"

"बड़ा भयानक प्रवाह है। ओः तभी तो—कल पानी बरस गया है,—आज उसके तलेसे न गया जायगा। कहीं एक भी कगारा गिर पड़ा तो नाव और हम सभी पिस जायँगे। अच्छा, तू तो डाँड़ चला सकता है न?"

"चला सकता हूँ।"

"तो चला।"

मैंने डाँड़ चलाना शुरू कर दिया। इन्द्रने कहा, "वही,—वही जो बाईं ओर काला काला दीख पड़ता है, वह चड़ा * है। उसके बीचमेंसे एक नहर-सी गई है, उसीमेंसे होकर निकल जाना होगा—परन्तु बहुत आहिस्ते। अगर कहीं धीवरोंको जरा भी पता लग गया, तो फिर लौटना न हो सकेगा। वे लग्गीकी मारसे सिर फोड़कर इसी कीचड़में गाड़ देंगे।"

यह क्या! मैंने डरते हुए कहा, "तो फिर उस नहरमें होकर मत चलो।" इन्द्रने शायद कुछ हँसकर कहा, "और तो कोई रास्ता ही नहीं है। उसके भीतर होकर तो जाना ही होगा। द्वीपके बाईं ओरकी रेहको ठेलकर तो जहाज भी नहीं जा सकता—फिर हम कैसे जायँगे? लौटतीमें वापिस आ सकते हैं किन्तु जा नहीं सकते।"

"तो फिर मछलियोंके चुरानेकी जरूरत नहीं है भइया," कहकर मैंने डाँड़ ऊपर उठा लिया। पलक मारते ही नाव चक्कर खाकर लौट चली। इन्द्र खीझ उठा। उसने आहिस्तेसे झिड़कते हुए कहा, "तो फिर आया क्यों? चल,—तुझे वापिस पहुँचा आऊँ। कायर कहींका!" उस समय मैंने चौदह पूरे करके पन्द्रहवेंमें पैर रक्खा था—मैं कायर?—झटसे डाँड़को पानीमें फेंककर प्राणप्रणसे खेने लगा। इन्द्र खुश होकर बोला, "यही तो

---

* नदीमें मैले जलकी मिट्टी जमकर जो द्वीप जैसे बन जाते हैं उन्हें 'चड़ा' कहते हैं।

चाहिए, किन्तु भाई, धीरे धीरे चलाओ,—साले बहुत पाजी हैं। मैं झाऊके वनके पाससे, मकईके खेतोंके भीतर होकर, उस तरह बचाकर ले चलूँगा कि सालोंको जरा भी पता न पड़ेगा!" फिर कुछ हँसकर बोला, "और यदि सालोंको पता लग भी गया तो क्या? पकड़ लेना क्या इतना सहज है? देख श्रीकान्त, कुछ भी डर नहीं है-यह ठीक है कि उन सालोंकी चार नावें हैं—किन्तु, यदि देखना कि घिर ही गये हैं, और भाग जानेकी कोई जुगत नहीं है, तो चटसे कूदकर डुबकी लगा जाना और जितनी दूर तक हो सके उतनी दूर जाकर निकलना, बस काम बन जायगा। इस अन्धकारमें देख सकनेका तो कोई उपाय ही नहीं है—उसके बाद मजेसे सतूयाके टीलेपर चढ़कर भोरके समय तैरकर इस पार आ जायँगे और गंगाके किनारे किनारे घर पहुँच जायँगे;-बस, फिर क्या करेंगे साले हमारा?"

यह नाम मैंने सुना था; कहा, "सतूयाका टीला तो 'घोर' नालेके सामने है, वह तो बहुत दूर है?"

इन्द्रने उपेक्षाके भावसे कहा, "कहाँ, बहुत दूर है! छः-सात कोस भी तो न होगा!—तैरते तैरते यदि हाथ भर आवें तो चित्त होकर सुस्ता लेना,—इसके सिवाय, मुर्दे जलानेके काम आये हुए बहुत-से बड़े बडे लक्कड़ भी तो बहते मिल जायँगे।"

आत्म-रक्षाका जो सरल रास्ता था सो उसने दिखा दिया, उसमें प्रतिवाद करनेकी कोई गुंजाइश नहीं थी। उस अँधेरी रातमें, जिसमें दिशाओंका कोई चिह्न नजर न आता था, और उस तेज जल-प्रवाहमें, जिसमें जगह जगह भयानक आवर्त्त पड़ रहे थे, सात कोस तक तैरते जाना और फिर भोर होनेकी प्रतीक्षा करते रहना! सवेरेसे पहले इस तरफके किनारेपर चढ़नेका कोई उपाय नहीं। दस-पन्द्रह हाथ ऊँचा खड़ा हुआ बालूका कगारा है, जो टूटकर सिरपर आ सकता है,—और इसी तरफ गंगाका प्रवाह भीषण टक्करें लेता हुआ अर्द्धवृत्ताकार दौड़ जा रहा है।

वस्तुस्थितिका अस्पष्ट आभास पाकर ही मेरा विस्तृत वीर-हृदय सिकुड़कर विंदु जैसा रह गया। कुछ देर तक डाँड़ा चलाकर मैं बोला, "किन्तु फिर हमारी नावका क्या होगा?"

इन्द्र बोला, "उस दिन भी मैं ठीक इसी तरह भागा था, और उसके दूसरे ही दिन आकर नाव निकाल ले गया था।—कह दिया था कि घाटपरसे डोंगी चोरी करके और कोई ले आया होगा—मैं नहीं लाया।"

तो यह सब इसकी कल्पना ही नहीं है,—बिल्कुल परीक्षा किया हुआ प्रत्यक्ष सत्य है! क्रमशः नौका खाड़ीके सामने आ पहुँची। देख पड़ा कि मछुओंकी नावें कतार बाँधकर खाड़ीके मुहानेपर खड़ी हैं और उनमें दीए भी टिमटिमा रहे हैं। दो टीलोंके बीचका वह जल-प्रवाह नहरकी तरह मालूम होता था। घूमकर हम लोग उस नहरके दूसरे किनारेपर जाकर उपस्थित हो गये। उस जगह जलके वेगसे अनेक मुहानेसे बन गये हैं और जंगली झाऊके पेड़ोंने परस्पर एक दूसरेको ओटमें कर रक्खा है। उनमेंसे एकके भीतर होकर कुछ दूर जानेसे ही हम नहरके भीतर जा पहुँचे। धीवरोंकी नावें वहाँसे दूरपर खड़ी हुई काली काली झाड़ियोंकी तरह दिखाई पड़ती थीं। और भी कुछ दूर जानेपर हम उद्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये।

धीवर देवताओंने, नहरका सिंहद्वार सुरक्षित है,—यह समझकर इस स्थानपर पहरा नहीं रक्खा था। इसे 'माया-जाल' कहते हैं। नहरमें जब पानी रहता तब इस किनारेसे लेकर उस किनारेतक ऊँचे ऊँचे लट्ठ मजबूतीसे गाड दिये जाते हैं और उनके बाहरी ओर जाल टाँग दिया जाता है। बादमें वर्षाके समय, जब जलके प्रवाहमें बडे बडे रोहू, कातला आदि मच्छ बहकर आते हैं, तब इन लट्ठोंसे बाधा पाकर वे कूदकर इस बाजू आ जाना चाहते हैं और डोरीके जालमें फँस जाते हैं।

दस-पन्द्रह-बीस सेरके पाँच-छह रोहू-कातला मच्छ दम-भरमें पकड़कर इन्द्रने नावपर रख लिये। विराट्काय मच्छराज अपनी पूछोंकी फटकारसे हमारी उस छोटी-सी नौकाको चूर्ण विचूर्ण करनेका उपक्रम करने लगे और उनका शब्द भी कुछ कम नहीं हुआ।

"इतनी मछलियोंका क्या होगा, भाई?"

"जरूरत है। बस, अब और नहीं, चलो भाग चलें।" कहकर उसने जाल छोड़ दिया। अब डाँड़ चलानेकी जरूरत नहीं रही। मैं चुपचाप बैठ रहा। उसी प्रकार छिपे छिपे उसी रास्तेसे बाहर होना था। अनुकूल बहावमें दो-तीन मिनट प्रखर गतिसे बहनेके उपरान्त, एकाएक एक स्थानपर मानों जरा धक्का खाकर, हमारी वह छोटी-डोंगी पासके मकईके खेतमें प्रवेश कर गई। उसके इस आकस्मिक गति-परिवर्तनसे मैंने चकित होकर पूछा, "क्यों? क्या हुआ?

इन्द्रने एक और धक्का देकर, उसे कुछ और भी अन्दर ले जाते हुए

कहा, "चुप, सालोंको मालूम हो गया है,—चार नावोंको खोलकर साले यहीं आ रहे हैं,—वह देखो।" इन्द्र ठीक कह रहा था। जोरके साथ जलको काटतीं और 'छप्-छप्' शब्द करतीं हुई तीन नौकाएँ हमें निगल जानेके लिए कृष्णकाय दैत्योंके समान दौड़ी आ रही थीं। उस तरफ तो जालसे रास्ता बन्द था;। और इस तरफसे ये लोग आ रहे थे,—भागकर छुटकारा पानेका जरा-सा भी अवकाश नहीं था। इस मकईके खेतके बीच अपने आपको छिपाया जा सकेगा, यह भी मुझे संभव नहीं जान पड़ा।

"क्या क्या होगा भाई?" कहते कहते ही अदम्य बाष्पोच्छ्वाससे मेरा कण्ठ रुद्ध हो गया। इस अन्धकारमें, इस पिंजरेके भीतर, अगर ये लोग हमारा खून करके भी इस खेतमें गाड़ दें, तो इन्हें कौन रोकेगा?

इसके पहले पाँच-छह बार इन्द्र 'चोरीकी विद्या बड़ी विद्या है' इस बातको सप्रमाण सिद्ध करके निर्विघ्न निकल गया था; इतने दिन, पीछा किये जानेपर भी हाथ नहीं आया था, किन्तु आज!

उसने मुखसे तो कहा कि, "डरकी कोई बात नहीं है" किन्तु मानों गला उसका काँप गया। किन्तु वह रुका नहीं, प्राण-पणसे लग्गी ठेलकर धीरे धीरे भीतर छिपनेकी चेष्टा करने लगा। समस्त टीला जलमय हो गया था। उसके ऊपर आठ-आठ दस-दस हाथ लम्बे मकई और ज्वारके पेड़ थे और भीतर हम दोनों चोर। कहीं तो पानी छातीतक था, कहीं कमरतक और कहीं घुटनोंसे अधिक नहीं। ऊपर निविड़ अन्धकार और आगे-पीछे दाएँ-बाएँ निर्भेद्य जंगल। लग्गी कीचड़में धँसने लगी और डोंगी अब एक हाथ भी आगे नहीं बढ़ती। पीछेसे धीवरोंकी अस्पष्ट बातचीत कानोंमें आने लगी। इस बातमें अब जरा भी संशय नहीं रहा कि कुछ संदेह करके ही वे लोग चले हैं और अब भी खोजते फिर रहे हैं।

सहसा डोंगी एक ओर कुछ झुककर सीधी हो गई। आँख उठाकर देखा कि, मैं अकेला ही रह गया हूँ, दूसरा व्यक्ति नहीं है। डरते हुए मैंने आवाज दी, "इन्द्र!" पाँच छः हाथ दूर वनके बीचसे आवाज आई, "मैं नीचे हूँ।"

"नीचे क्यों?"

"डोंगी खींचकर निकालनी होगी। मेरी कमरसे रस्सी बँधी है।"

"खींचकर कहाँ ले जाओगे?"

"उस गंगामें। थोड़ी ही दूर ले जानेपर बड़ी धारा मिल जायगी।"

सुनकर मैं चुप हो गया और क्रम-क्रमसे धीरे धीरे आगे बढने लगा। अकस्मात् कुछ दूरपर वनके बीच कनस्तर पीटने और फटे बाँसोंके फटाफट शब्दसे मैं चौंक उठा। डरते हुए मैंने पूछा, "वह क्या है भाई?" उसने उत्तर दिया, "खेतिहर लोग मचानपर बैठे हुए जंगली सुअरोंको भगा रहे हैं।"

"जंगली सुअर! कहाँ हैं वे?" इन्द्र नाव खींचते खींचते लापर्वाहीसे बोला, "मुझे क्या दीख पड़ते हैं जो बताऊँ? होंगे यहीं कहीं।" जवाब सुनकर मैं स्तब्ध हो रहा। सोचा, किसका मुँह देखा था आज सुबह! सरे-शाम ही तो आज घरके भीतर बाघके हाथ पड़ गया था, तब यदि इस जंगलमें बनैले सुअरोंके हाथ पड़ जाऊँ, तो इसमें विचित्र ही क्या है?— फिर भी मैं तो नावमें बैठा हूँ, किन्तु, यह आदमी, छाती तक कीचड़ और जलमें, इस जंगलके भीतर खड़ा है! एक कदम हिलने-डुलनेका उपाय भी तो इसके पास नहीं है! कोई पन्द्रह मिनट इसी तरह सोच-विचारमे निकल गये। और भी एक वस्तुपर मैं ध्यान दे रहा था। अक्सर देखता था कि पास ही किसी न किसी ज्वार या मकईके पेड़का अगला हिस्सा एकाएक हिलने लगता था और 'छप-छप' शब्द होता था। एक दफे तो मेरे हाथके पास ही हरकत हुई। सशङ्क होकर उस तरफ मैंने इन्द्रका ध्यान आकर्षित किया कि "बड़ा सुअर न सही, कोई बच्चा-कच्चा तो नहीं है?"

इन्द्रने अत्यन्त सहज भावसे उत्तर दिया, "वह, कुछ नहीं,—साँप लिपटे हैं; आहट पाकर जलमें कूद पड़ते हैं।"

'कुछ नहीं,—साँप!' काँपकर मैं नावके बीच सिकुड़कर बैठ गया। अस्फुट स्वरमें पूछा, "कैसे साँप भाई?"

इन्द्रने कहा, "सब किस्मके साँप है!—ढोंड़ा, बोड़ा, कौड़ियाल, काले आदि। पानीमे बहते बहते आये और झाड़ोंमें लिपट रहे,—कहीं भी तो सूखी जमीन नहीं है, देखते नहीं हो?"

"सो तो देखता हूँ।" भयके मारे मेरे तो पैरोंके नखसे लेकर सिरके बाल तक खड़े हो गये। परन्तु उस भले मानुसने भ्रूक्षेप तक न किया, अपना काम करते करते ही वह कहने लगा, "किन्तु ये काटते नहीं हैं। ये खुद ही बेचारे डरके मारे मरे जा रहे हैं,—दो-तीन तो मेरे ही शरीरको छूते हुए भाग गये हैं। कई एक तो खूब मोटे हैं,—मालूम पड़ता है कि वे ढोंड़ा बोड़ा होंगे। और यदि कदाचित् काट ही खायँ, तो क्या किया जाय,

मरना तो एक दिन होगा ही भाई !" इसी प्रकार वह और भी कुछ अपने मृदु स्वाभाविक कण्ठसे बोलता रहा, मेरे कानोंतक कुछ तो पहुँचा और कुछ नहीं पहुँचा। मैं निर्वाक् निष्पन्द काठके समान जड़ होकर एक ही स्थानपर एक ही भावसे बैठा रहा। श्वास छोड़नेमें भी मानों भय मालूम होने लगा।—'छप' से कहीं कोई मेरी नावमें ही न आ गिरे !

और चाहे जो हो, किन्तु वह क्या आदमी है !—मनुष्य, देवता, पिशाच,—वह क्या है ? किसके साथ मैं इस जंगलमें घूम रहा हूँ ? यदि मनुष्य है तो क्या वह नहीं जानता कि इस विश्व-संसारमें भय नामकी भी कोई चीज़ होती है ? हृदय क्या उसका पत्थरसे बना है ? क्या वह हमारी ही तरह सिकुड़ता फैलता नहीं है ? तो फिर उस दिन, खेलके मैदानमें, सबके भाग जानेपर, बिलकुल अपरिचित होते हुए भी, मुझ अकेलेको निर्विघ्न बाहर निकाल देनेके लिए जो वह शत्रुओंके मध्यमें घुस आया था, सो क्या वह दया माया भी इस पत्थरमें ही विनिहित थी ? और आज विपत्तिका सब हाल राई-राई, तिल-तिल, जानते सुनते हुए भी चुपचाप अकुंठित चित्तसे वह इस भयावह और अति भीषण मृत्युके मुखमें उतरकर खड़ा है। एक बार मुँहसे यह भी नहीं कहता कि 'श्रीकान्त भाई, एक बार तू नीचे उतर आ।' वह तो मुझे जबरन् नीचे उतारकर नौका खिंचवा सकता था ! यह केवल खेल तो है नहीं ! जीवन और मृत्युके आमने-सामने खड़े होकर, इस उम्रमें, ऐसा स्वार्थ-त्याग कितने आदमियोंने किया है ? बिना आडम्बरके कितने सहज भावसे उसने कह दिया कि, 'मरना तो एक दिन होगा ही भाई !' ऐसी सच बात कहते कितने लोग दिखाई देते हैं ? यह सच है कि इस विपत्तिमें वही मुझे खींच लाया है, फिर भी, उसके इतने बड़े स्वार्थ-त्यागको मनुष्यकी देह धारण करते हुए मैं किस तरह भूल जाऊँ भला ? किस तरह भूलूँ उसे,—जिसके हृदयके भीतरसे इतना बड़ा अयाचित दान इतनी सरलतासे बाहर आ गया ?—उस हृदयको किसने किस चीज़से गढ़ा होगा ?—उसके बाद कितने काल और कितने सुख-दुखोंमेंसे होकर मैं आज इस बुढ़ापेको प्राप्त हुआ हूँ।—कितने देश, कितने प्रान्त, कितने नद-नदी, पहाड़-पर्वत, वन-जंगल, घूमा फिरा हूँ,—कितने प्रकारके मनुष्य इन दो आँखोंके सामनेसे गुजर गये हैं,—किन्तु इतना बड़ा महाप्राण व्यक्ति तो और कभी देखनेको नहीं मिला ! परन्तु वह अब नहीं रहा, अकस्मात् एक दिन मानो बुद्बुद्की तरह शून्यमें मिल गया। आज

उसकी याद आते ही ये दोनों सूखी ऑखें जलसे भर आती हैं,—केवल एक निष्फल अभिमान हृदयके तल-देशको आलोढित करके ऊपरकी ओर फेनके माफिक तैर आता है। हे सृष्टिकर्त्ता! क्यों तूने उस अद्भुत, अपार्थिव वस्तुको सृष्ट करके भेजा था, और इस प्रकार व्यर्थ करके क्यों उसे वापिस बुला लिया! बड़ी ही व्यथामे मेरा यह असहिष्णु मन आज वारंवार यही प्रश्न करता है—भगवान! तुम्हें रुपया-पैसा, धन-दौलत, विद्या-बुद्धि तो अपने अखूट भांडारसे ढेरकी ढेर देते हुए देखता हूँ, किन्तु इतने बड़े महाप्राण व्यक्ति आज तक तुम कितने दे सके हो? खैर, जाने दो इस बातको। घोर जल-कल्लोल क्रमशः पासमें आता-जाता है इस बातको मैं जान रहा था; इस लिए और कोई सवाल किये बगैर मैंने समझ लिया कि इस जगलके बीचमें ही वह भीषण प्रवाह प्रधावित हो रहा है जिसको स्टीमर भी पार नहीं कर पाते। मैं खूब अनुभव कर रहा था कि पानीका वेग बढ़ रहा है और धूसर वर्णका फेन-पुञ्ज विस्तृत रेत-राशिका भ्रम उत्पन्न कर रहा है। इन्द्र नौकापर चढ आया और डॉड़को हाथमें लेकर सामनेके उद्दाम स्रोतका सामना करनेको तैयार हो बैठा। वह बोला, "अब कोई डर नहीं है, हम बड़ी गंगामें आ पहूँचे हैं।" मैंने मन ही मन कहा—अब, डर नहीं है तो अच्छा है। किन्तु डर तुम्हें काहेका है सो तो मैं समझा ही नहीं। क्षण-भर बाद ही नौका एक वार मानों सिरसे पैर तक कॉंप उठी और पलक मारनेके पहले ही मैंने देखा कि वह बड़ी गंगाके स्रोतमें पड़कर उल्काके वेगसे दौड़ी जा रही है।

उस समय छिन्न वादलोंकी आड़में मालूम हुआ, मानों चन्द्रमा उदय हो रहा है क्योंकि जैसे अंधकारमे हम अभी तक यात्रा करते आ रहे थे वैसा अन्धकार अब नहीं रहा था। अब बहुत दूरतक, चाहे साफ साफ भले ही न हो, दिखाई देने लगा था। मैंने देखा, जंगली झाऊ और मकई-जुआरवाला टीला दाहिनी ओर छोड़कर हमारी नाव सीधी चली जा रही है!

३

"बहुत ज़ोरसे नींद आ रही है इन्द्र, अब घर लौट चलो भाई!"

इन्द्रने कुछ हँसकर ठीक स्त्री सुलभ स्नेहार्द्र कोमल स्वरमें कहा, "नींद आनेकी तो बात ही है भइया, पर क्या किया जाय, श्रीकान्त!

आज तो कुछ देर होगी ही,—अभी बहुत-सा काम पड़ा है। अच्छा एक काम करो न, इसी जगह थोड़ा-सा लेट लो।"

दुबारा अनुरोधकी ज़रूरत ही नहीं हुई, मैं गुड़मुड़ होकर उसी स्थानपर लेट गया। परन्तु नींद नहीं आई। अधमुँदी आँखोंसे मैं चुपचाप आकाशमें बादलों और चाँदकी आँख-मिचौनी देखने लगा। यह डूबा, वह निकला, फिर डूबा, फिर हँसा। और कानमें आने लगी जल-प्रवाहकी वही सतत हुङ्कार। यह एक ही बात प्रायः मेरे मनमें आया करती है कि, मैं उस दिन, इस प्रकार सब-कुछ भूल-भालकर बादलों और चन्द्रमाके बीच कैसे डूब गया था? तन्मय होकर चाँद देखनेकी अवस्था तो मेरी उस समय थी नहीं। किन्तु बड़े-बूढ़े लोग पृथिवीके अनेक व्यापार देख-सुनकर कहा करते हैं कि यह बाहरी चाँद कुछ नहीं हैं, बादल भी कुछ नहीं हैं—सब माया है, मिथ्या है, दर असल कुछ चीज़ है तो यह अपना मन है। वह जब जिसे जो दिखाता है विभोर होकर तब वह केवल वही देखता है। मेरी भी यही दशा थी। इतने प्रकारकी भयङ्कर घटनाओंमेंसे, इस प्रकार सही-सलामत बाहर निकल आनेके उपरान्त, मेरा निर्जीव मन, उस समय, शायद, ऐसी ही किसी एक शान्त तसवीरके भीतर विश्राम लेना चाहता था।

इतनेमें घण्टे-दो-घण्टे निकल गये, जिनकी मुझे खबर ही नहीं हुई एकाएक मुझे मालूम हुआ कि मानों चाँद बादलोंके बीच एक लम्बी डुबकी लगा गया है, और एकाएक दाहिनी ओरसे बाईं ओर जाकर अपना मुँह बाहर निकाल रहा है। गर्दन कुछ ऊपर उठाकर देखा, नौका अब उसपार जानेकी तैयारीमें है। प्रश्न करने अथवा कुछ कहनेका उद्यम भी, शायद, उस समय मुझमें शेष नहीं था; इसलिए मैं फिर उसी तरह लेट गया। फिर वही आँखें भरकर चन्द्रमाका खेल और कान-भरकर प्रवाहका गर्जन-तर्जन देखने-सुनने लगा। शायद इस तरह एक घण्टा और भी बीत गया।

खस्—स्—रेतके टीलेपर नौका टकराई। व्यस्त होकर मैं उठकर बैठ गया। अरे, यह तो इसपार आ पहुँचे। परंतु यह जगह कौन-सी है? घर मेरा कितनी दूर है? रेतके ढेरके सिवाय और तो कहीं कुछ दिख ही नहीं रहा है?—सवाल करनेके पहले ही एकाएक कहीं पास ही कुत्तोंका भूँकना सुनकर मैं और भी सीधा होकर बैठ गया। निश्चय ही कहीं पासमें बस्ती है।

इन्द्र बोला, "तनिक ठहर, श्रीकान्त, मैं थोड़ा-सा घूमकर अभी लौट

आऊँगा—तुझे अब कुछ डर नहीं है। इस कगारेके उसपार ही धीवरोंके मकान हैं।"

साहसकी इतनी परीक्षाएँ पास करनेके उपरान्त अन्तमे यहाँ आकर फेल हो जानेकी मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी; और खास करके मनुष्यकी इस किशोर अवस्थामे, जिसके समान महा-विस्मयकारी वस्तु संसारमे शायद और कोई नहीं है। एक तो वैसे ही मनुष्यकी मानसिक गति-विधि बहुत ही दुर्जेय होती है; और फिर किशोर-किशोरीके मनका भाव तो, मैं समझता हूँ। बिलकुल ही अज्ञेय है। इसीलिए शायद, श्रीवृन्दावनके उन किशोर-किशोरीकी किशोर-लीला चिरकालसे ऐसे रहस्यसे आच्छादित चली आती है। बुद्धिके द्वारा ग्राह्य न कर सकनेके कारण किसीने उसे कहा 'अच्छी' किसीने कहा बुरी,'—किसीने 'नीति' की दुहाई दी, किसीने 'रुचि' की और किसीने कोई भी बात न सुनी,—वे तर्क-वितर्कके समस्त घेरोंका उल्लंघनकर बाहर हो गये। जो बाहर हो गये वे डूब गये, पागल हो गये; और नाचकर, रोकर, गाकर,—सब एकाकार करके संसारको उन्होने मानों एक पागल-खाना बना छोड़ा। तब, जिन लोगोंने 'बुरी' कह कर गालियाँ दी थीं उन्होंने भी कि—और चाहे जो हो किन्तु, ऐसा रसका झरना और कहीं नहीं है। जिनकी 'रुचि' के साथ इस लीलाका मेल नहीं मिलता था उन्होंने भी स्वीकार किया,—इस पागलोंके दलको छोड़कर हमने ऐसा गान और कहीं नहीं सुना। किन्तु यह घटना जिस आश्रयको लेकर घटित हुई, जो सदा पुरातन है, और साथ ही चिर-नूतन भी—वृन्दावनके वन वनमें होनेवाली किशोर-किशोरीकी उस सुन्दरतम लीलाका अन्त किसने कब खोज पाया है, जिसके निकट वेदान्त तुच्छ है और मुक्तिफल जिसकी तुलनामें वारीशके आगे वारि-बिन्दुके समान क्षुद्र है ! न किसीने पाया है और कोई कभी खोज पायगा। इसीलिए तो मैंनें कहा कि उस समय मेरी वही किशोर अवस्था थी। भले ही उस समय यौवनका तेज और दृढ़ता न आई हो, परन्तु फिर भी उसका दम्भ तो आकर हाजिर हो गया था ! आत्म-सम्मानकी आकाक्षा तो हृदयमें सजग हो गई थी ! उस समय अपने सखाके निकट अपनेको कौन डरपोक सिद्ध करना चाहेगा ? इसलिए मैंने उसी दम जवाब दिया, "मैं डरूँगा क्यों ? अच्छा तो है, जाओ।" इन्द्रने और दूसरा वाक्य खर्च न किया और वह जल्दी जल्दी पैर बढ़ाया हुआ अदृश्य हो गया।

ऊपर सिरपर अंधकार-प्रकाशकी वह आँख-मिचौनी हो रही थी, पीछे बहुत दूर तक अविश्रान्त सतत गर्जन-तर्जन हो रहा था और सामने वही रेतीका किनारा था। यह कौन स्थान है, सोच ही रहा था कि इन्द्र दौड़ता हुआ आकर खड़ा हो गया। बोला, "श्रीकान्त, तुझसे एक बात कहनेको लौट आया हूँ। यदि कोई मच्छ माँगने आवे तो खबरदार, देना नहीं,—कहे देता हूँ, खबरदार, हरगिज़ न देना। ठीक मेरे समान रूप बनाकर यदि कोई आवे, तो भी मत देना।—कहना,—तेरे मुँहपर धूल, इच्छा हो तो तू खुद ही उठा ले जा, खबरदार! हाथसे किसीको उठाकर न देना, भले ही मैं ही क्यों न होऊँ,—खबरदार!"

"क्यों भाई?"

"लौटनेपर बताऊँगा,—किन्तु खबरदार—" यह कहते कहते वह जैसे आया था वैसे ही दौड़ता हुआ चला गया।

इस दफे नखसे सिखतक मेरे सब रोंगटे खड़े हो गये। जान पड़ा कि मानों शरीरकी प्रत्येक शिरा उपशिरामेंसे बरफका गला हुआ पानी बह चला है। मैं बिल्कुल बच्चा तो था नहीं, जो उसके इशारेका मतलब बिलकुल न भाँप सकता। मेरे जीवनमें ऐसी अनेक घटनाएँ घट चुकी हैं जिनकी तुलनामें यह घटना समुद्रके आगे गौके खुरके गढ़ेमें भरे हुए पानीके समान थी। किन्तु फिर भी इस रात्रिकी यात्रामें जो भय मैंने अनुभव किया, उसे भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता। मालूम होता था कि भयके मारे होश-हवास गुम करनेकी अन्तिम सीढ़ीपर आकर ही मैंने पैर रख दिया है। प्रतिक्षण जान पड़ता था कि कगारके उस तरफसे मानो कोई झाँक झाँककर देख रहा है। जैसे ही मैं तिरछी दृष्टिसे देखता हूँ, वैसे ही मानों वह सिर नीचा करके छिप जाता है।

समय कटता नहीं था। मानों इन्द्र न जाने कितने युग हुए चला गया है,—और लौट नहीं रहा है।

ऐसा मालूम हुआ मानों किसी मनुष्यकी आवाज़ सुनी हो। जनेऊको अँगूठेमें सैकड़ों बार लपेटकर, मुख नीचा करके, कान खड़े करके सुनने लगा। गलेकी आवाज़ क्रमशः अधिक साफ़ होने लगी, अच्छी तरह मालूम पड़ने लगा कि दो तीन आदमी बातचीत करते हुए इसी तरफ आ रहे हैं। उनमेंसे एक तो इन्द्र है और बाकी दो हिन्दुस्थानी। वे हों चाहे जो, किन्तु उनके मुखकी ओर देखनेके पूर्व मैंने यह अच्छी तरह देख लिया कि

चाँदनीमें उनकी छाया जमीनपर पडी है या नहीं ! क्योंकि इस अविसंवादी सत्यको मैं छुटपनसे ही अच्छी तरह जानता था कि, 'उन लोगों' (भूतों) की छाया नहीं पड़ती ! '

आः, यह तो छाया है ! न सही साफ़, फिर भी छाया है ! ससारमे उस दिन किसी भी आदमीने, और किसी भी वस्तुको देखकर, क्या मेरे जैसी तृप्ती पाई होगी ! पाई हो या न पाई हो, परन्तु यह बात तो मैं बाजी लगाकर कह सकता हूँ कि दृष्टीका चरम आनन्द जिसे कहते हैं, वह यही था। जो लोग आये उन्होंने असाधारण तेजीसे उन बडे बडे मच्छोंको नावमेंसे उठाकर एक जाल जैसे वस्त्रके टुकड़ेमें बाँध लिया, और उसके बदलेमें उन्होंनें इन्द्रकी मुट्ठीमें जो कुछ थमा दिया उसने 'खन्' से एक मृदु-मधुर शब्द करके अपना परिचय भी मेरे आगे पूर्णतः गुप्त न रहने दिया।

इन्द्रनें नाव खोल दी परन्तु बहावमे नहीं छोड़ी। धारके पास पास, प्रवाहके प्रतिकूल, लग्गीसे ठेलते हुए वह धीरे धीरे अग्रसर होने लगा।

मैंनें कोई बात नहीं कही, क्योंकि मेरा मन उस समय उसके विरुद्ध घृणाके भावसे और एक प्रकारके क्षोभसे लबालब भर गया था। किन्तु यह क्या ! अभी अभी ही तो उसे चन्द्रमाके प्रकाशमें छाया डालते हुए, लौटते देखकर अधीर आनन्दसे दौड़कर छातीसे लगा लेनेके लिए उन्मुख हो उठा था !

हाँ, सो मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा है। तनिक-सा दोष देखते ही, कुछ क्षण पूर्वकी सभी बाते भूलते उसे कितनी-सी देर लगती है ? राम ! राम ! उसने इस तरह रुपये प्राप्त किये ! अब तक मछली चुरानेका यह व्यापार, मेरे मनमें, बहुत स्पष्ट तौरसे, चोरीके रूपमें शायद स्थान न पा सका था ! क्योंकि लड़कपनसे ही, रुपये-पैसोंकी चोरी ही मानों वास्तविक चोरी है— और सब, अनीति भले ही हो किन्तु, न जाने क्यों ठीक ठीक चोरी नहीं है,—इस तरहकी अद्भुत धारणा प्रायः सभी लड़कोंकी होती है। मेरी भी यही धारणा थी। ऐसा न होता तो इस 'खन्' शब्दके कानमे जाते ही इतने समयका इतना वीरत्व, इतना पौरुष, सब कुछ क्षण-भरमे इस प्रकार शुष्क तृणके समान न झड़ जाता। यदि उन मच्छोंको गंगामे फेक दिया जाता,—अथवा और कुछ किया जाता,—केवल रुपयोंके साथ उनका ससर्ग घटित न होता, फिर भी हमारी उस मत्स्य-संग्रहयात्राको कोई 'चोरी' कहकर पुकारता, तो शायद गुस्सेमें आकर मैं उसका सिर फोड देता और समझता

कि उसने वास्तवमें जो सजा मिलनी चाहिए वही पाई है।—किंतु राम! राम! यह क्या! यह काम तो जेल-खानेके कैदी किया करते हैं!

इन्द्रने बात शुरू की,—पूछा, "तुझे जरा भी डर न लगा, क्यों रे श्रीकान्त?"

मैंने संक्षेपमें जवाब दिया "नहीं!"

इन्द्र बोला, "किन्तु तेरे सिवाय वहाँ और कोई बैठा न रह सकता, यह जानता है तू? तुझे मैं खूब प्यार करता हूँ—मेरा ऐसा दोस्त और कोई नहीं है। मैं अब जब आऊँगा, सिर्फ तुझे ही लाऊँगा। क्यों?"

मैंने जवाब नहीं दिया। किन्तु इसी समय उसके मुखपर तुरतके मेघमुक्त चन्द्रमाका जो प्रकाश पड़ा, उससे उसके मुखपर जो कुछ दिखाई दिया, उससे एकाएक मैं अपना इतनी देरका सब क्रोध-क्षोभ भूल गया। मैंने पूछा, "अच्छा इन्द्र तुमने कभी 'उन सब *' को देखा है?"

"किन सबको?"

"वही जो मच्छ माँगने आते हैं?

"नहीं भाई, देखा तो नहीं है, लेकिन लोग जो कहते हैं वह सुना है!" *

"अच्छा तुम यहाँ अकेले आ सकते हो?"

इन्द्र हँसा, बोला, "मैं तो अकेला ही आया करता हूँ।"

"डर नहीं लगता?"

"नहीं, रामका नाम लेता हूँ, फिर वे किसी तरह नहीं आ सकते।"

कुछ देर रुककर फिर कहना शुरू किया, "राम-नाम क्या कोई साधारण चीज़ है रे? यदि तू रामका नाम लेते लेते साँपके मुँहमें भी चला जाय, तो तेरा कुछ न बिगड़ेगा। देखेगा, कि मारे डरके सभी रास्ता छोड़कर भाग गये हैं। किन्तु डरनेसे काम नहीं चलता। तब तो वे जान जाते हैं कि यह सिर्फ चालाकी कर रहा है,—वे सब अन्तर्यामी जो हैं!"

रेतीका किनारा खत्म होते ही कंकड़ोंका किनारा शुरू हो गया। उसपारकी अपेक्षा इस पार पानीका बहाव बहुत कम था। बल्कि यहाँ तो मालूम हुआ कि मानो बहाव उलटी तरफ जा रहा है। इन्द्रने लग्गी उठाकर कर्ण

---

* 'उन सब' से तात्पर्य भूतोंका है। बंगालमें प्रवाद है कि अकेलेमें भूत मछली माँगने आते हैं।

(पतवार) हाथमें लेते हुए कहा, " वह जो सामने वन सरीखा दीख पड़ता है, उसीमेंसे होकर हमें जाना है। यहाँ जरा मैं उतरूँगा। जाऊँगा और आ जाऊँगा। देर न लगेगी। क्यों उतर जाऊँ ? "

इच्छा न रहते भी मैंने कहा, ' अच्छा ' क्योंकि ' नहीं ' कहनेका रास्ता तो मैं एक प्रकारसे आप ही बन्द कर चुका था। और अब इन्द्र भी मेरी निर्भीकताके सम्बन्धमें शायद निश्चिन्त हो गया था। परतु बात मुझे अच्छी न लगी। यहाँसे वह जगह ऐसी जंगल सरीखी अँधेरी दीख पडती थी कि, अभी अभी राम नामका असाधारण माहात्म्य श्रवण करके भी, उस अंधकारमें, प्राचीन वट-वृक्षके नीचे, डोंगीके ऊपर अकेले बैठे रहकर, इतनी रातको राम-नामका शक्ति-सामर्थ्य जाच करनेकी मेरी जरा भी प्रवृत्ति नहीं हुई और शरीरमें कँपकँपी उठने लगी। यह ठीक है कि मछलियाँ और नहीं थीं, इसलिए मछली लेनेवालोंका शुभागमन न हो सकेगा, किन्तु उन सबका लोभ मछलियोंके ऊपर ही है यह भी कौन कह सकता है ? मनुष्यकी गर्दन मरोड़कर गुनगुना रक्त पीने और मास खानेका इतिहास भी तो सुना गया है !

बहावकी अनुकूलता और डॉडकी ताड़नासे डोंगी सर्राटेसे आगे बढ़ने लगी। और भी कुछ दूर जाते ही, दाहिनी बाजूका गर्दनतक डूबा हुआ, जंगली झाऊ और कॉसका वन माथा उठाकर हम दोनों असम-साहसी मानव-शिशुओंकी तरफ विस्मयसे स्तब्ध हो देखता रहा और उसमेंसे कोई कोई झाड़ तो सिर हिलाकर मानों अपना निषेध जताने लगा ! बाईं ओर भी उन्हींके आत्मीय - परिजन खूब ऊँचे ककरीले किनारोंपर फैले हुए थे; वे भी उसी भावसे देखते रहे और उसी तरह मना करने लगे। मैं अगर अकेला होता तो निश्चयसे उनका यह सकेत अमान्य नहीं करता परंतु मेरा कर्णधार जो था, उनके निकट ऐसा मालूम हुआ कि मानों एक राम-नामके जोरसे उनके समस्त आवेदन निवेदन एक बार ही व्यर्थ हो गये। उसने किसी तरफ भौंहेंतक न फिराई। दाहिनी ओरके टीलेके अधिक बिस्तारके कारण यह जगह एक छोटी-मोटी झीलके समान हो गई थी;—सिर्फ उत्तरकी ओरका मुँह खुला हुआ था। मैने पूछा, " अच्छा, नावको बॉधकर ऊपर जानेका घाट तो है नहीं, तुम जाओगे किस तरह ? "

इन्द्र बोला, " यह जो बड़का वृक्ष है, उसके पासमें ही एक छोटा-सा घाट है। "

कुछ देरसे न जाने कैसी दुर्गंध बीच बीचमें हवाके साथ नाकतक आ रही थी। एकाएक एक हवाके झोंकेके साथ वह दुर्गन्ध इतनी निकट होकर नाकमें लगी कि असह्य हो गई। जितना ही आगे बढ़ते थे, उतनी ही वह बढ़ती थी। नाकपर कपड़ा दबाते हुए मैं बोला,—"निश्चयसे कुछ सड़ गया है, इन्द्र।"

इन्द्र बोला, "मुर्दे सड़ गये हैं। आजकल भयानक कालेरा जो हो रहा है। सभी तो लाशोंको जला पाते नहीं, मुँहपर जरा आग छुआकर छोड़कर चले जाते हैं। सियार और कुत्ते उन्हें खाते हैं,—और वे सड़ती हैं। उन्हींकी तो यह इतनी गंध है।"

"लाशोंको किस जगह फेंक जाते हैं, भइया?"

"वहाँसे लेकर यहाँतक—सब ही तो श्मशान है। जहाँ चाहे फेंक देते हैं और इस बड़के नीचेके घाटपर स्नान करके घर चले जाते हैं।—अरे दुर! डर क्या है रे! वे सियार-सियार आपसमें लड़ रहे हैं।—अच्छा, आ आ, मेरे पास आकर बैठ।"

मेरे गलेसे आवाज़ न निकलती थी,—किसी तरह मैं घिसटकर उसकी गोदके निकट जाकर बैठ गया। पल-भरके लिए मुझे स्पर्श करके और हँसकर वह बोला, "डर क्या है श्रीकान्त! कितनी दफे रातको मैं इस रास्ते आया-गया हूँ। तीन दफे रामका नाम लेनेसे फिर किसकी ताकद है जो पासमें फटके?"

उसे स्पर्श करके मानों मेरी देहमें जरा चेतना आई। मैंने अस्फुट स्वरमें कहा, "नहीं भाई, तुम्हारे दोनों पैर पड़ता हूँ, यहाँपर कहीं मत उतरो—सीधे ही चले चलो।"

उसने फिर मेरे कंधेपर हाथ रखकर कहा, "नहीं श्रीकान्त, एक दफे जाना ही पड़ेगा। यह रुपये दिये बिना काम न चलेगा,—वे बैठे राह देख रहे होंगे,—मैं तीन दिनसे नहीं आ पाया।"

"रुपये कल न दे देना, भाई!"

"नहीं भाई, ऐसी बात न कर। मेरे साथ तू भी चल,—किन्तु किसीसे यह बात कहना मत।"

मैं धीरेसे 'ना' कहकर उसे उसी तरह स्पर्श किये हुए, पत्थरकी नाईं बैठा रहा। गला सूखकर काठ हो गया था। किन्तु हाथ बढ़ाकर पानी पी लूँ या हिलने-डोलनेकी कोई चेष्टा करूँ, यह शक्ति ही नहीं रही थी।

पेड़ोंकी छायाके बीचमें आ पड़नेसे पास ही वह घाट दीख पड़ा। जहा हमे नीचे उतरना था वह स्थान, ऊपर पेड़ वगैरह न होनेसे, म्लान ज्योत्स्नाके प्रकाशमें भी खूब प्रकाशमान् हो रहा था—यह देखकर इतने दुखमें भी मुझे आराम मिला। घाटके कंकड़ोंमे जाकर डोंगी धक्का न खा जाय, इसलिए इन्द्र पहलेसे ही उतरनेके लिए प्रस्तुत होकर डोंगीके मुँहके पास तक खिसक आया था। किनारे लगते न लगते वह उसपरसे फाँद पड़ा; पर फाँदते ही भयभीत स्वरसे 'उफ्' कर उठा। मैं उसके पीछे ही था, इसलिए दोनोंकी नजर उस वस्तुपर प्रायः एक ही साथ पड़ी। उस समय वह नीचे था और मै नौकाके ऊपर।

शायद मेरे जीवनमें 'अकाल मृत्यु' कभी उतने करुण रूपमें नजर नहीं आई थी। वह कितनी बड़ी व्यथाका कारण होती है, यह बात, उस तरह न देखी जाय तो, शायद, और तरहसे जानी ही नहीं जा सकती। गंभीर रात्रिमे चारों दिशाएँ निबिड़ स्तब्धतासे परिपूर्ण थीं। सिर्फ बीच बीचमें झाड़-झंखाड़ोंमेसे कहीं श्मशानचारी सियारोंका क्षुधार्त कलह-चीत्कार, कहीं वृक्षोंपर सोते हुए अर्धसुप्त बृहत्काय पक्षियोंके पंखोंकी फड़फड़ाहट और बहुत दूरसे आया हुआ तीव्र जलप्रवाहका 'हू—हू' आर्त्तनाद सुन पड़ता था। हम दोनों, इन सबके बीच, निर्वाक् निस्तब्ध होकर उस महा करुण दृश्यकी ओर देखते रहे। एक छह-सात वर्षका गौरवर्ण हृष्टपुष्ट बालक पड़ा हुआ दिखाई दिया, जिसका सर्वाङ्ग पानीमे डूबा हुआ था और सिर्फ सिर घाटके ऊपर था। शायद सियार हालमें ही उसे पानीसे बाहर निकाल रहे थे, और अब केवल हमारे आकस्मिक आगमनके कारण, कहीं पास ही खड़े हुए हमारे जानेकी राह देख रहे हैं। बहुत करके उसे मरे हुए तीन चार घण्टेसे अधिक नहीं हुए थे। मानों वह बेचारा विसूचिका (हैजा) की दारुण यातना भोगकर माता गंगाकी गोदमे ही सो गया था, और माँ मानों बड़ी सावधानीसे उसकी सुकुमार सुन्दर देहको अभी अभी अपनी गोदसे उतारकर बिछौनेपर सुला रही थीं। इस तरह कुछ जल और कुछ स्थलपर पड़ी हुई उस सोते हुए शिशुकी देहपर हमारी ऑखे जा पड़ीं।

मुँह ऊपर उठाया तो देखा कि इन्द्रकी दोनों ऑखोंसे अश्रुके बड़े बड़े बिन्दु झर रहे हैं। वह बोला, "तू जरा हटकर खड़ा हो जा श्रीकान्त, मैं इस बेचारेको, नौकामे रखकर टीलेके उस झांऊ-वनके भीतर रखे आता हूँ।"

यह सत्य है कि उसकी आँखोंमें आँसू देखते ही मेरी आँखोंमें भी आँसू आ गये, किन्तु इस छूने-ऊनेके प्रस्तावसे मैं एक बारगी संकुचित हो उठा। इस बातको मैं अस्वीकार नहीं करता कि दूसरेके दुःखमें दुःखी होकर आँखोंसे आँसू बहाना सहज नहीं है, किन्तु, इसी कारण, उस दुःखके बीच अपने दोनों हाथ बढ़ाकर जुट जाना—यह बहुत अधिक कठिन काम है। उस समय छोटी बड़ी न जाने कितनी जगहोंसे खिंचाव पड़ता है। अव्वल तो मैं इस पृथ्वीके शिरोभूत हिन्दू-घरमें वशिष्ट इत्यादिके पवित्र पूज्य रक्तका वंशधर होकर जनमा, इसलिए, जन्मगत संस्कारोंके वश, मैंने सीख रक्खा था कि मृतदेहको स्पर्श करना भी एक भीषण कठिन व्यापार है। दूसरे इसमें न जाने कितने शास्त्रीय विधि-निषेधोंकी बाधाएँ हैं और कितने तरह तरहके कर्म-काण्डोंका घटाटोप है। इसके सिवाय यह किस रोगसे मरा है, किसका लड़का है, किस जातिका है—आदि कुछ न जानते हुए, और मरनेके बाद यह ठीक तौरसे प्रायश्चित्त करके घरसे बाहर हुआ था या नहीं, इसका पता लगाये बिना ही इसे स्पर्श किस तरह किया जा सकता है?

कुण्ठित होकर जैसे ही मैंने पूछा, "किस जातिका मुर्दा है और क्या तुम इसे छुओगे?" कि इन्द्रने आगे बढ़कर एक हाथ उसकी गर्दनके नीचे और दूसरा हाथ घुटनोंके नीचे देकर उसे सूखे तिनकोंके समान उठा लिया और कहा, "नहीं तो बेचारेको सियार नोंच नोंचकर न खा जायँगे? अहा, इसके मुँहसे तो अभी तक ओषधिओंकी गन्ध आ रही है रे!" यह कहते कहते उसने नौकाके उसी तख्तेपर, जिसपर कि पहले मैं सोया था, उसे सुला दिया और नावको ठेलकर स्वयं भी चढ़ गया। बोला, "मुर्देकी क्या जात होती है रे?"

मैंने तर्क किया, "क्यों नहीं होती?"

इन्द्र बोला, "अरे यह तो मुर्दा है! मरे हुएकी जात क्या? यह तो वैसा ही है जैसे हमारी यह डोंगी—इसकी भला क्या जात है? आम या जामुन, जिस किसी भी काठकी यह बनी हो,—अब तो इसे 'डोंगी' छोड़, कोई भी नहीं कहेगा कि यह आम है या जामुन?—समझा कि नहीं? यह भी उसी तरह है।"

अब मालूम होता है कि यह दृष्टान्त निरे बच्चोंका-सा था,—किन्तु अन्तरमें यह भी तो अस्वीकार करते नहीं बनता कि यहीं कहीं, इसीके बीच, एक अति तीक्ष्ण सत्य अपने आपको छुपाये हुए बैठा है। बीच बीचमें ऐसी ही खरी बातें वह कह जाया करता था। इसीलिए, मैंने अनेक दफे सोचा है कि, इस उम्रमें, किसीके पास कुछ भी शिक्षा पाये बगैर, बल्कि प्रचलित शिक्षा-संस्कारोंको

अतिक्रम करके,—इन सब तत्त्वोंको उसने पाया कहाँ ? किन्तु अब ऐसा जान पड़ता है कि उम्र बढ़नेके साथ मानों मैंने इसका उत्तर भी पा लिया है। कपट तो मानों इन्द्रमें था ही नहीं। उद्देश्यको गुप्त रखकर तो वह कोई काम करना जानता ही न था। इसीलिए मैं समझता हूँ, उसके हृदयका वह व्यक्तिगत विच्छिन्न सत्य किसी अज्ञात नियमके वशवर्ती होकर, उस विश्व-व्यापी अविच्छिन्न निखिल सत्यका साक्षात् करके, अनायास ही, बहुत ही सहजमें, उसे अपने आपमे आकर्षित कर आत्मसात कर सकता था। उसकी शुद्ध सरल बुद्धि, पक्के उस्तादकी उम्मेदवारी किये वगैर ही, समस्त व्यापारको ठीक ठीक अच्छी तरह जान लेती थी। वास्तविक, अकपट सहज बुद्धी ही तो संसारमे परम और चरम बुद्धी है। इसके ऊपर और कुछ भी नहीं है। अच्छी तरहसे देखनेपर 'मिथ्या' नामकी किसी भी वस्तुका अस्तित्व इस विश्व-ब्रह्माण्डमें नजर नहीं पड़ता। 'मिथ्या' तो सिर्फ मनुष्यके माननेका और मनानेका फलमात्र है। सोनेको पीतल मानना भी मिथ्या है और मनाना भी,—यह मैं जानता हूँ। परंतु इससे सोनेका अथवा पीतलका क्या आता जाता है ? तुम्हारी जो इच्छा हो सो उसे मानो, वह तो जो कुछ है, सो ही रहेगा। सोना समझकर उसे सन्दूकमे वन्द करके रखनेसे उसके वास्तविक मूल्यमे वृद्धी नहीं होती, और पीतल कहकर बाहर फेंक देनेसे उसका मूल्य नहीं घटता। उस दिन भी वह पीतल था और आज भी पीतल है। तुम्हारे 'मिथ्या' के लिए तुम्हें छोड़कर न और कोई उत्तरदायी है, और न कोई भ्रूक्षेप ही करता है। इस विश्व ब्रह्माण्डका समस्त ही परिपूर्ण सत्य है। मिथ्या का अस्तित्व यदि कहीं है तो वह मनुष्यके मनको छोड़कर और कहीं नहीं है। इसलिए इन्द्रने इस असत्यको, अपने अन्तरमे जाने या अनजानेमें, किसी दिन जब स्थान नहीं दिया तब यदि उसकी विशुद्ध बुद्धि मंगल और सत्यको ही प्राप्त करती है, तो इसमे विचित्र ही क्या हुआ ?

किन्तु यह बात उसके लिए विचित्र न होनेपर भी, मैं यह नहीं कर रहा हूँ कि किसीके लिए भी विचित्र नहीं है। ठीक इसी बहाने, मैंने अपने जीवनमें ही जो इसका प्रमाण पाया है, उसे कह देनेका लोभ मैं यहाँ नहीं कर सकता।

उक्त घटनाके १०-१२ वर्ष बाद एकाएक एक दिन शामके वक्त यह संवाद मिला कि एक वृद्धा ब्राह्मणी उस मुहल्लेमे सुबहसे मरी पड़ी है,—किसी तरह भी उसके क्रिया-कर्मके लिए लोग नहीं जुटते। न जुटनेका हेतु यह कि वह काशी-यात्रासे लौटते समय रास्तेमें रोग-ग्रस्त हो गई, और उस शहरमें, रेलपरसे

उतरकर, सामान्य परिचर्यके सहारे जिनके घर आकर उसने आश्रय ग्रहण किया, और दो रात रहकर आज सुबह प्राण-त्याग किया, वे महाशय विलायतसे लौटे हुए थे और बिरादरीसे अलग थे। वृद्धाका यही अपराध था कि उसे नितान्त निरुपाय अवस्थामें इस 'बिरादरीसे खारिज' घरमें मरना पड़ा।

खैर, अग्निसंस्कार करके दूसरे दिन सुबह वापस आकर मैंने देखा कि हरएक घरके किवाड़ बन्द हो गये हैं। सुननेमें आया कि गत रात्रिको, ग्यारह बजे तक, हरिकेन लालटेन हाथमें लिये हुए, पञ्च लोगोंने घर-घर फिर कर स्थिर कर दिया है कि इस अत्यन्त शास्त्र-विरुद्ध अपकर्म (दाह) करनेके कारण इन कुलाङ्गारोंको सिर मुड़ाना होगा, अपराध स्वीकार करना होगा और एक ऐसी वस्तु (गोबर) खानी पड़ेगी जो कि सुपवित्र होते हुए भी खाद्य नहीं है। उन्होंने घर घर जाकर स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि इसमें उनका कोई भी हाथ नहीं है; क्योंकि, अपने जीते-जी, वे समाजमें किसी भी तरह यह अशास्त्रीय काम नहीं होने दे सकते। हम लोग, और कोई उपाय न रहनेपर, डाक्टर साहबके शरणमें गये। वे ही उस शहरमें सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक थे और बिना दक्षिणाके ही बंगालियोंकी चिकित्सा करते थे। हमारी कहानी सुनकर डाक्टर महाशय क्रोधसे सुलग उठे और बोले, "जो लोग इस तरह लोगोंको सताते हैं, उनके घरोंमें यदि कोई मेरी आँखोंके सामने बिना चिकित्साके भी मरता होगा तो मैं उस ओर आँख उठाकर नहीं देखूँगा।" न मालूम, किसने यह बात पंचोंके कानोंतक पहुँचा दी। बस, शाम होते न होते मैंने सुना कि सिर मुड़ानेकी जरूरत नहीं है, सिर्फ अपराध स्वीकार करके उस सुपवित्र पदार्थको खालेने मात्रसे काम चल जायगा! हमारे स्वीकार न करनेपर दूसरे दिन सुबह सुना गया, अपराध स्वीकार कर लेनेसे ही काम हो जायगा,—वह पदार्थ न खाना हो तो न सही! इसे भी न स्वीकार करनेपर सुना गया कि चूँकि यह हम लोगोंका प्रथम अपराध है इसलिए, उन्होंने उसे यों ही माफ कर दिया है, प्रायश्चित्तकी कोई जरूरत नहीं है! किन्तु, डाक्टर साहब बोले, "ठीक है कि प्रायश्चित्तकी कोई जरूरत नहीं परन्तु दो दिनतक इन्हें जो क्लेश दिया गया है, उसके लिए यदि प्रत्येक आदमी आकर क्षमा प्रार्थना न करेगा, तो फिर, जैसा कि वे पहले कह चुके हैं, वैसा ही करेंगे, अर्थात किसीके भी घर न जायँगे।" इसके बाद, उसी दिन संध्याके समयसे डाक्टर साहबके घर एक एक करके सभी वृद्ध पंचोंका शुभागमन होना शुरू हो गया। आशीर्वाद दे देकर उन्होंने

क्या क्या कहा उसे तो अवश्य ही मैं नहीं सुन पाया, किन्तु दूसरे दिन देखा कि डाक्टर साहबका क्रोध ठंडा हो गया है और हम लोगोंको भी प्रायश्चित्त करनेकी जरूरत नहीं रही है।

जाने दो, क्या कह रहा था और क्या बात बीचमे आ पडी। किन्तु, वह चाहे जो हो, मै निश्चयपूर्वक जानता हूँ कि जो लोग जानते हैं वे, इस नाम-धाम-हीन विवरणमेंसे, पूरा सत्य प्राप्त कर लेंगे। मेरे कहनेका मूल विषय यह है कि इन्द्रने इस उम्रमें अपने अंतरके मध्यमे जिस सत्यका साक्षात् कर लिया था, इतने बड़े बड़े पंच सरदार, इतनी बड़ी उम्र तक भी, उसका कोई तत्त्व न पा सके थे; और डाक्टर साहब यदि उस दिन इस प्रकार उनके शास्त्र-ज्ञानकी चिकित्सा न कर देते तो कभी उनकी यह व्याधि अच्छी होती या नहीं, सी जगदीश्वर ही जाने।

टीलेपर आकर, आधे डूबे हुए जंगली झाऊके अंधकारमे, जलके ऊपर उस अपरिचित शिशुकी देहको इन्द्रने, जब अपूर्व ममताके साथ, रख दिया तब रात्रि अधिक नहीं थी। कुछ देर तक वह उस शवकी ओर माथा झुकाए रहा और अन्तमें जब उसने मुँह उठाकर देखा, तब धुँधली चाँदनीमें उसका मुख जितना कुछ दिखाई दिया वह मलिन था और उसके सूखे मुँहपर ठीक वैसा ही भाव प्रकट हो रहा था जैसे कि कोई कान उठाकर किसीकी राह देख रहा हो।

मैं बोला, "इन्द्र, अब चलो।"

इन्द्र अन्यमनस्क भावसे बोला, "कहाँ?"

"अभी जहाँ चलनेके लिए तुमने कहा था।"

"रहने दो, आज नहीं जाऊँगा।"

मैं खुश होकर बोला, "ठीक, यही अच्छा है भाई,—चलो, घर चले।"

प्रत्युत्तरमें इन्द्र मेरे मुँहकी ओर देखकर बोला, "हाँ रे श्रीकान्त, मरने-पर मनुष्यका क्या होता है, जानता है?"

मैंने तुरन्त ही जवाब दिया, "नहीं भाई, नहीं जानता; अब तो तुम घर चलो।—वे सब स्वर्ग चले जाते हैं, भइया! तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, तुम मुझे मेरे घर पहुँचा आओ।"

इन्द्रने मानो सुना ही नहीं, और कहा, "सभी लोग तो स्वर्ग जा नहीं सकते। इसके सिवाय, कुछ समय तक तो सभीको यहाँ रहना पड़ता है। देखो, मैंने जब उसको जलके ऊपर सुला दिया था, तब उसने धीरेसे साफ साफ कहा था, 'भइया'।" मैं काँपते हुए स्वरसे रोते हुए बोल उठा,

"क्यों मुझे डराते हो, भाई, मैं बेहोश हो जाऊँगा।" इन्द्रने न तो कुछ कहा और न अभय दिया—धीरेसे डाँड़को हाथमें लेकर उसने नावको झाऊ-वन-मेंसे बाहर कर लिया और फिर सीधा चलाने लगा। मिनट-दो-मिनट चुप रहकर उसने गंभीर मृदु स्वरसे कहा, "श्रीकान्त, मन ही मन 'राम' का नाम ले, 'वह' नौका छोड़कर नहीं गया है,—हमारे पीछे ही बैठा है!"

उसके बाद मैं उसी जगह मुँह ढँककर औंधा हो गया था। फिर मुझे कुछ खबर नहीं रही। जब आँखें खोलीं तब अन्धकार नहीं था,—नाव किनारे लगी हुई थी। इन्द्र मेरे पैरोंके पास बैठा था; बोला, "अब थोड़ा चलना होगा, श्रीकान्त, उठ बैठ।"

४

पैर उठते ही न थे, फिर भी किसी तरह गंगाके किनारे किनारे चलकर सबेरे लाल आँखें और अत्यन्त सूखा म्लान मुँह लेकर घर पहुँचा। मानों एक समारोह-सा हो उठा। "यह आया! यह आया!" कहकर सबके सब एक साथ एक स्वरमें इस तरह अभ्यर्थना कर उठे कि मेरा हृत्पिण्ड थम जानेकी तयारी करने लगा।

जतीन करीब करीब मेरी ही उम्रका था। इसलिए आनन्द भी उसका सबसे प्रचण्ड था। वह कहींसे दौड़ता हुआ आया और "आ गया श्रीकान्त,—यह आ गया, मझले भइया!" इस प्रकारके उन्मत्त चीत्कारसे घरको फाड़ता हुआ मेरे आनेकी बात घोषित करने लगा और मुहूर्त-भरका भी विलम्ब किये वगैर, उसने परम आदरसे मेरा हाथ पकड़कर खींचते हुए मुझे बैठक-खानेके पायंदाजपर ला खड़ा किया।

वहाँपर मझले भइया गहरा मन लगाए परीक्षा पास करनेका पाठ पढ़ रहे थे। मुँह उठाकर थोड़ी-सी देर मेरे मुँहकी ओर देखकर उन्होंने फिर पढ़नेमें अपना मन लगा दिया अर्थात् बाघ, शिकारको अपने अधिकारमें कर लेनेके उपरान्त, निरापद स्थानमें बैठकर, जिस तरह दूसरी तरफ अवहेलाभरी दृष्टिसे देखता है, ठीक उसी तरह उनका भाव था। दण्ड देनेका इतना बड़ा माहेन्द्र योग उनके भाग्यमें पहले और कभी जुटा था या नहीं, इसमें सन्देह है।

मिनट-भर वे चुप रहे। सारी रात बाहर बितानेके कारण दोनों कानों और गालोंपर जो घटना घटेगी सो मैं जानता था। किन्तु, अब और अधिक देर

खड़ा भी न रह सकता था और उधर ' कर्म-कर्ता ' को भी तो फुरसत नहीं थी। वे भी तो परीक्षा पास करनेकी तैयारीमे लगे थे!

हमारी इन मझले भइयाको आप शायद इतने जल्दी भूले न होंगे। ये वही हैं जिनकी कठोर देख-रेखमे कल शामको हम सब पाठाभ्यास कर रहे थे और क्षण-भर बाद ही, जिनके सुगभीर ' ओं–ओं ' शब्द और चिराग-दान उलटा देनेकी चोटसे गत रात्रिकी उस ' दि रॉयल बैंगाल ' को भी दिग्भ्रमित होकर एक दफा अनारके वृक्षका आश्रय लेना पड़ा था।

" पंचाग तो देख रे सतीश, आज इस बेला बैंगन खाना अच्छा है या नहीं—" कहती हुई पासके द्वारको खोलकर बुआजीने जैसे ही घरमें पैर रक्खा वैसे ही मुझे देखकर वे अवाक् हो गईं।—" कब आया रे? कहॉ चला गया था? धन्य है लडके तुझे,—सारी रात नींद नहीं आई,—सोच सोचकर मर गई,—उस इन्द्रके साथ चुपके-से जो बाहर गया, सो फिर दिखाई ही नहीं दिया। न खाना, न पीना; कहॉ था, बोल तो रे अभागे? मुख स्याह हो गया है, ऑखें लाल छलछला रही है—कहती हूॅ, ज्वर तो नहीं चढ आया है? जरा पासमें तो आ, देखूॅ तो ऑग—" एक साथ इतने बहुतसे प्रश्न करनेके उपरान्त बुआ, स्वय ही आगे बढकर, मेरे सिरपर हाथ देकर बोल उठीं, " जो सोचा था आखिर वही हुआ न! ऑग खूब गरम है। ऐसे लड़कोंके तो हाथ-पैर बॉधकर जल-बिछुआ लगा दिया जाय, तभी जी शान्त हो! तुझे घरसे बिल्कुल बिदा करके ही अब और कुछ करूँगी। चल, भीतर चलकर सो जा,—पाजी!" वे बैंगन-खानेके प्रश्नको बिल्कुल ही भूल गईं। उन्होंने हाथ पकड़कर मुझे अपनी गोदमें खींच लिया।

मझले भइयाने बादलोंके समान गम्भीर कण्ठसे संक्षेपमे कहा, " अभी वह न जा सकेगा।"

" क्यों, यहॉ क्या करेगा? नहीं, नहीं, इस समय, अब इसका पढना-लिखना न होगा। पहले दो कौर खाकर थोडा सो ले। आ मेरे साथ—" कहकर बुआजी मुझको लेकर चलने लगीं।

किन्तु शिकार जो हाथसे निकला जाता था! मझले भइया स्थान-काल भूल गये, जोरसे चिल्ला उठे और धमकाकर बोले, " खबरदार, कहता हूॅ, यहॉसे मत जा, श्रीकान्त!" बुआ तब कुछ चौंक उठीं। इसके बाद मुॅह फेर मॅझले भइयाकी ओर देखकर केवल इतना ही बोलीं, " सतीऽऽ!"

बुआजी गंभीर प्रकृतिकी औरत थीं। सारा घर उनसे डरता था। मझले भइया तो बस उस एक तीखी नजरसे ही भयके मारे सिटपिटा गये। और फिर, पासहीके कमरेमें बड़े भाई भी बैठे थे। बात कहीं उनके कान तक गई तो फिर खैर नहीं थी।

बुआजीका एक स्वभाव हम लोग हमेशासे देखते आ रहे थे। कभी किसी भी कारण वे शोर-गुल करके लोगोंको इकट्ठा करना पसंद नहीं करती थीं। हजार गुस्सा होनेपर भी वे कभी जोरसे नहीं बोलती थीं। वे बोलीं, "जान पड़ता है, तेरे ही डरसे यह यहाँ खड़ा है। देख सतीश, जब तब सुना करती हूँ कि तू बच्चोंको मारता-पीटता है। आजसे यदि कभी किसीको हाथ भी लगाया, और मुझे मालूम हो गया, तो इसी खम्भेसे बँधवाकर नौकरके हाथ तुझे बेत लगवाऊँगी। बेहया खुद तो हरसाल फेल हुआ करता है,—और फिर दूसरोंपर रुआब गाँठता है! कोई पढ़े चाहे न पढ़े, आगेसे तू किसीसे भी कुछ पूछ न सकेगा!"

इतना कहकर, जिस रास्ते आई थीं उसी रास्ते, मुझे लेकर, वे चलीं गईं। मझले भइया अपना-सा मुँह लिये बैठे रहे। यह बात मझले भइया भली भाँति जानते थे कि इस आदेशकी अवहेलना करना किसीके वशकी बात नहीं है।

मुझे अपने साथ ले बुआ अपने कमरेमें आईं, मेरे कपड़े बदलवाये, पेट भरकर गरम गरम जलेबियाँ खिलाईं, बिस्तरपर सुला दिया और यह बात अच्छी तरह जताकर, बाहरसे सॉंकल लगाकर, चली गईं कि मैं मर जाऊं तो उनके हाड़ जुड़ा जावें!

पाँचेक मिनटके बाद खुट-से साँकल खोलकर छोटा भाई हाँफता हाँफता आया और मेरे बिछौनेपर आकर पट पड़ गया। आनन्दके अतिरेकसे पहले तो वह बात भी न कर सका, फिर थोड़ा 'दम' लेकर फुसफुसाकर बोला, "मझले भइयाको माँने क्या हुक्म दिया है, जानते हो? हम लोगोंके किसी भी काममें पड़नेकी उन्हें अब जरूरत नहीं है। अब तुम और मैं दोनों एक कमरेमें पढ़ेंगे,—मझले भइयाकी हम जरा भी 'केयर' (पर्वाह) न करेंगे।" इतना कहकर उसने अपने दोनों हाथोंके अँगूठे एकत्र करके जोरसे नचा दिये।

जतीन भी पीछे पीछे आकर हाजिर हो गया। यह अपनी कारगुजारीकी उत्तेजनामें एकबारगी अधीर हो रहा था और छोटे भाईको यह सुसमाचार देकर यहाँ खींच लाया था। पहले तो वह कुछ देरतक खूब हँसता रहा। फिर हँसना बन्द करके अपनी छाती बारंबार ठोककर बोला, "मैं! मैं!!"

मेरे ही सबबसे यह सब हुआ है, सो क्या तुम नहीं जानते ? मैं यदि इसे (मुझे) मझले भइयाके सामने न ले गया होता तो क्या माँ ऐसा हुक्म देतीं ?—पर छोटे भइया, तुम्हें अपना कलदार लट्टू मुझे देना होगा सो कहे देता हूँ। ” “ अच्छा, दिया। ले आ, जा, मेरे डेस्कमेंसे। ” छोटे भाईने उसी क्षण हुक्म दे डाला। किन्तु उसी लट्टूको घण्टेभर पहले शायद वह पृथ्वीकी सारी संपत्तिके बदले भी न दे सकता।

ऐसा ही मूल्य होता है, मनुष्यकी स्वाधीनताका। व्यक्तिगत न्याय्य अधिकारोंको प्राप्त करनेका ऐसा ही आनंद होता है। आज मुझे बार बार खयाल आता है कि बच्चोंके निकट भी उसकी अमूल्यता बिन्दु-भर भी कम नहीं है। मझले भइया, बड़े होनेके कारण, स्वेच्छाचारसे, अपनेसे छोटोंके जिन समस्त अधिकारोंको ग्रास कर बैठे थे, उन्हें फिरसे प्राप्त करनेके सौभाग्य-लाभसे छोटे भाईने अपनी प्राणोंसे भी प्रिय वस्तु विना सकोचके दे डाली। दर असल मझले भइयाके अत्याचारोंकी सीमा न थी। रविवारको, कड़ी दुपहरीमें एक मीलका रास्ता नापकर, उनके तास खेलनेवाले दोस्तोंको बुलाने जाना पड़ता था। गर्मीकी छुट्टियोंमें, दिनमें जब तक वे सोते रहते थे तब तक पंखा झलना पड़ता था। सर्दीके दिनोमें, जब वे लिहाफके भीतर हाथ-पैर छिपाकर कछुएकी तरह बैठे किताब पढते थे, तब हमें बैठे बैठे उनकी किताबके पन्ने पलट देने होते थे।—यही सब उनके अत्याचार थे ! और फिर ‘ न ’ कहनेका भी कोई उपाय नहीं था। किसीसे निकट शिकायत करनेकी भी ताब नहीं थी। घुणाक्षर-न्यायसे भी यदि वे जान पाते तो हुक्म दे बैठते, ‘ केशव, जा तो अपनी जाग्रफी ले आ, देखूँ तुझे पुराना सबक याद है कि नहीं। जतीन, जा तो एक अच्छी-सी झाऊकी छड़ी तोड ला। ”— अर्थात् पिटना अनिवार्य था। अतएव आनन्दकी मात्रामें भी इन लोगोंमें यदि प्रतिस्पर्धा हो रही थी तो, इसमें अचरजकी बात ही क्या थी !

किन्तु आनन्द कितना ही क्यों न हो, अन्तमें उसे स्थगित रखना आवश्यक हो गया; क्योंकि स्कूलका समय हो रहा था। मुझे तो ज्वर था, इसलिए कहीं जाना न था।

याद आता है कि, उस रातको बुखार तेज हो गया और फिर, ७-८ दिन तक खाटमें ही पड़े रहना पड़ा।

इसके कितने दिनों बाद स्कूल गया और फिर कितने दिनों बाद इन्द्रसे

भेंट हुई सो याद नहीं है; परंतु इतना जरूर याद है कि बहुत दिनों बाद हुई। शनिवारका दिन था, जल्दी बंद हो जानेके कारण मैं जल्दी ही स्कूलसे लौट आया था। उन दिनों गंगामें पानी उतरना शुरू हो गया था और गंगासे लगे हुए एक नालेके किनारे मैं बंसी डालकर मछली पकड़ने बैठा था। वहाँ और भी बहुतसे आदमी मछली पकड़ रहे थे। एकाएक मैंने देखा कि एक आदमी, पासमें ही सरकीके झुण्डकी आड़में, बैठकर टपाटप मछलियाँ पकड़ रहा है। आड़में होनेके कारण वह तो अच्छी तरह दिखाई न देता था। परंतु उसका मछली पकड़ना दिखाई पड़ता था। बहुत देरसे मुझे अपनी जगह पसन्द नहीं आ रही थी। मनमें सोचा कि चलो, मैं भी उसीके निकट जा बैठूँ। बंसी हाथमें लेकर मेरे एकबार घूमकर खड़े होते ही वह बोला, "मेरे दाहिनी ओर आकर बैठ जा। अच्छा तो है, श्रीकान्त ?" छाती धक् कर उठी। यद्यपि मैं उसका मुँह न देख पाया था तो भी पहचान गया कि इन्द्र है। शरीरके भीतरसे बिजलीका तीव्र प्रवाह बह जानेसे, जो जहाँ है वह, एक मुहूर्तमें, जैसे सजग हो उठता है, उसके कण्ठ-स्वरसे भी मेरी वही दशा हुई। पलक मारते मारते सर्वाङ्गका रक्त चंचल हो उठा और उद्दाम होकर छातीपर मानों जोर जोरसे पछाड़ खाने लगा। किसी तरह भी मुँहसे जरा-सा जवाब न निकला। यह बात मैं लिख तो जरूर गया हूँ किन्तु, उस वस्तुको भाषामें व्यक्त करनेकी बात तो दूर, उसे समझना भी मेरे लिए, अत्यन्त कठिन ही नहीं, शायद, असाध्य था। क्योंकि बोलनेके लिए यही बहु-व्यवहृत साधारण वाक्य-राशि—जैसे, हृदयका रक्त आलोड़ित हो रहा था,—उद्दाम या चंचल हो रहा था,—बिजलीके प्रवाहके समान बह रहा था,—आदिके उपयोगके सिवाय और तो कोई रास्ता है नहीं। किन्तु इससे कितना-सा व्यक्त किया जा सकता है ? जो जानता नहीं उसके आगे मेरे मनकी बात कितनी-सी प्रकाशित हुई ? जिसने अपने जीवनमें एक दिनके लिए भी यह अनुभव नहीं किया, मैं ही उसे यह किस तरह जताऊँ और वही इसे किस तरह जाने ? जिसकी कि मैं प्रतिसमय याद करता रहता था,—कामना करता रहता था, आकांक्षा करता रहता था और फिर भी, कहीं उससे किसी रूपमें मुलाकात न हो जाय इस भयके मारे दिन-ब-दिन सूखकर काँटा हुआ जाता था,—उसीने, इस प्रकार अकस्मात्, इतने अभावनीय रूपमें, मेरी आँखोंके सामने, मुझे अपने पार्श्वमें आकर बैठनेका अनुरोध किया ! उसके पास जाकर बैठ भी गया; परंतु फिर भी कुछ कह न सका।

इन्द्र बोला, " उस दिन वापिस आकर तूने बडी मार खाई,—क्यों न श्रीकान्त ? तुझे ले जाकर मैंने अच्छा काम नहीं किया। उसके लिए रोज मुझे बड़ा दुःख होता है।" मैंने सिर हिलाकर कहा, "मार नहीं खाई।" इन्द्र खुश होकर बोला, " नहीं खाई ? सुन रे श्रीकांत, तेरे जानेके बाद मैंने काली माताको अनेक दफे पुकारा था जिससे तुझे कोई मारे नहीं। काली माता बड़ी जाग्रत देव हैं रे! उन्हें मन लगाकर पुकारनेसे कभी कोई मार नहीं सकता। माता आकर इस प्रकार भुला देती हैं कि कोई कुछ भी नहीं कर सकता।" ऐसा कहकर उसने बंसीको रख दिया और हाथ जोडकर कपालमें लगा लिये, मानों उन्हींको मन-ही-मन प्रणाम किया हो। फिर बंसीमे चारा लगाकर उसे जलमें डालते हुए वह बोला, " मुझे तो खयाल न था कि तुझे ज्वर आ जायगा, यदि होता तो मैं वह भी न आने देता।"

मैंने आहिस्तेसे प्रश्न किया, " क्या करते तुम ?" इन्द्र बोला, " कुछ नहीं, सिर्फ जवा-फूल (गुड़हर) लाकर माताके पैरोंपर चढा देता। उन्हे जवा फूल बड़े प्यारे हैं। जो जैसी कामनासे उन्हें चढ़ाता है उसका वैसा ही फल होता है। यह तो सभी जानते हैं, क्या तू नहीं जानता ?" मैंने पूछा, " तुम्हारी तबीयत तो नहीं बिगड़ी थी ?" इन्द्रने आश्चर्यसे कहा, " मेरी ?—मेरी तबीयत कभी खराब नहीं होती। कभी कुछ नहीं होता ?" वह एकाएक उदीप्त होकर बोला, " देख श्रीकान्त, मैं तुझे एक चीज़ सिखाये देता हूँ। यदि तू दोनों बेला खूब मन लगाकर देवीका नाम लिया करेगा, तो वे सामने आकर खड़ी हो जायँगी,—तू उन्हें स्पष्ट देख सकेगा। और फिर वे कभी तेरा बुरा न होने देगी। तेरा कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा,—तू स्वयं जान जायगा,—फिर मेरी तरह मन चाहे वहाँ जाना,—खुशी पड़े सो करना, फिर कोई चिन्ता नहीं। समझमे आया ?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "ठीक है।" फिर बंसीमें चारा लगाकर और उसे पानीमें डालकर मृदु-कण्ठसे पूछा, "अब तुम किसे साथ लेकर वहाँ जाते हो ?"

" कहाँ ?"

" उसपार मछली पकड़ने।"

" इन्द्र बंसीको उठाकर और सावधानीसे पासमे रखकर बोला, " अब मैं नहीं जाता।" उसकी बात सुनकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। पूछा, " उसके बाद क्या तुम एक दिन भी नहीं गये ?"

"नहीं, एक दिन भी नहीं,—मुझे सिरकी कसम खाकर—" बातको पूरा किये बगैर ही कुछ सिट-पिटाकर इन्द्र चुप हो गया।

उसके सम्बन्धमें यह बात मुझे रह रह काँटे जैसी चुभती रही है। किसी तरह भी उस दिनकी वह मछली बेचनेकी बात भूल न सका था। इसलिए यद्यपि वह चुप हो रहा पर मैं न रह सका। मैंने पूछा, "किसने तुम्हें सिरकी कसम खाई भाई ? तुम्हारी माँने ?"

"नहीं, माँने नहीं," कहकर इन्द्र फिर चुप हो रहा। फिर बंसीमें धीरे-धीरे सूत लपेटता हुआ बोला, "श्रीकान्त, अपनी उस रातकी बात घरमें तूने किसीसे कही तो नहीं ?"

"नहीं, किंतु यह सभी जानते हैं कि मैं तुम्हारे साथ चला गया था।"

इन्द्रने और कोई प्रश्न न किया। मैंने सोचा था कि अब यह उठेगा। किंतु वह नहीं उठा, चुप बैठा रहा। उसके मुँहपर हमेशा हँसीका-सा भाव रहता था, परंतु इस समय वह नहीं था। मानों, वह कुछ मुझसे कहना चाहता हो और किसी कारण, कुछ कह न सकता हो तथा, साथही, बिना कुछ कहे रहा भी न जाता हो,—बैठे बैठे भी मानों वह आकुलताका अनुभव कर रहा हो। आप लोग शायद यह कह बैठेंगे कि, "यह तो बाबू, तुम्हारी बिल्कुल मिथ्या बात है, इतना मनस्तत्त्व आविष्कार करनेकी उम्र तो वह तुम्हारी नहीं थी।" मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ। किन्तु, आप लोग भी इस बातको भूले जाते हैं कि मैं इन्द्रको प्यार करता था। एक आदमी दूसरेके मनकी बातको जान सकता है तो केवल सहानुभूति और प्यारसे,—उम्र और बुद्धिसे नहीं। संसारमें जिसने जितना प्यार किया है दूसरेके मनकी भाषा उसके आगे उतनी ही व्यक्त हो उठी है। यह अत्यन्त कठिन अन्तर्दृष्टि सिर्फ प्रेमके ज़ोरसे ही प्राप्त की जा सकती है, और किसी तरह नहीं। उसका प्रमाण देता हूँ।

इन्द्रने मुँह उठाकर मानों कुछ बोलना चाहा परन्तु बोल न सकनेसे उसका समस्त मुख अकारण ही रँग गया। चटसे सरकीका एक सोंटा उसने तोड़ लिया, और वह उसे नीचा मुँह किये, पानीपर पटकने लगा; फिर बोला, "श्रीकान्त !"

"क्या है भइया ?"

"तेरे,—तेरे पास रुपये हैं ?"

"कितने रुपये ?"

" कितने ?—अरे यही चार-पाँच रुपये—"

" हैं। तुम लोगे ?" कहकर मैंने बड़ी प्रसन्नतासे उसके मुखकी ओर देखा। ये थोड़ेसे रुपये ही मेरे पास थे। इन्द्रके काममें आनेकी अपेक्षा और अधिक सद्व्यवहारकी मैं कल्पना भी न कर सकता था। किंतु कहाँ, इन्द्र तो कुछ खुश न हुआ। उसका मुँह तो मानों और भी अधिक लज्जाके कारण कुछ विचित्र किस्मका हो गया। कुछ देर चुप रहनेके उपरान्त वह बोला, " किन्तु मैं इन रुपयोंको तुम्हें लौटा न सकूँगा। "

" मैं इन्हें लौटाना चाहता भी नहीं," यह कहकर गर्वके साथ मैं उसकी ओर देखने लगा।

और भी थोड़ी देरतक नीचा मुँह किये रहनेके उपरान्त वह धीरेसे बोला, " रुपये मैं स्वयं अपने लिए नहीं चाहता। एक आदमीको देने होंगे; इसीसे मैंने माँगे हैं। वे लोग बेचारे बड़े दुखी हैं,—उन्हें खानेको भी नहीं मिलता। क्या तू वहाँ चलेगा ?" निमेष-मात्रमें ही मुझे उस रातकी बात याद आ गई। बोला, " वही न, जिनको रुपया देनेके लिए उस दिन तुम नावपरसे उतरे जा रहे थे ?" इन्द्रने अन्यमनस्क भावसे सिर हिलाकर कहा, "हाँ, वही। रुपया तो मैं खुद ही बहुत-से दे सकता था; परंतु जीजी तो किसी तरह लेना ही नहीं चाहतीं। तुझे भी साथ चलना होगा श्रीकान्त, नहीं तो इन रुपयोंको वे न लेंगीं; सोचेंगी कि मैं माँके बाक्समेंसे चोरी करके लाया हूँ। चलेगा श्रीकान्त ?"

" मालूम होता है वे तुम्हारी जीजी होती हैं ?"

इन्द्रने कुछ हँसकर कहा " नहीं; जीजी होती नहीं हैं,—जीजी कहता हूँ। चलेगा न ?" मुझे चुप देखकर वह बोला, " दिनको जानेमें वहाँ कुछ भय नहीं है। कल रविवार है, तू खा-पीकर यहाँ आ जाना, मैं तुझे ले चलूँगा; तुरत ही लौट आवेंगे। चलेगा न भाई ?" इतना कहकर वह जिस प्रकार मेरा हाथ पकड़कर मेरे मुँहकी ओर देखने लगा, उससे मेरा 'नहीं' कहना संभव नहीं रहा, मैं दुबारा उसकी नौकामें जानेका वचन देकर घर लौट आया।

वचन तो सचमुच ही दे आया, किन्तु वहाँ जाना कितना बड़ा दुःसाहस है, यह तो मुझसे बढ़कर कोई न जानता था। उसी समयसे मेरा मन भारी हो गया और नींदके समयमें भी प्रगाढ अशान्तिका भाव मेरे सर्वाङ्गमें विचरण करता रहा। सुबह उठते ही, पहले यही मनमें आया कि आज जिस जगह जानेके लिए वचनबद्ध हुआ हूँ, उस जगह जानेसे किसी भी तरह मेरा भला

न होगा। किसी सूत्रसे यदि कोई जान जायगा, तो वापिस लौटनेपर जो सजा भुगतनी पड़ेगी, उसकी चाहना तो शायद मझले भइयाके लिए भी छोटे भइया न कर सकेंगे। अन्तमें खा पीकर, पाँच रुपये छिपाकर, जब मैं घरसे बाहर निकला तब यह बात भी अनेक बार मनमें आई कि, जानेकी जरूरत नहीं है। बलासे, न रखा अपने वचनको, और इससे मेरा आता-जाता ही क्या है?

यथास्थान पहुँचकर देखा कि, सरकीके झुंडके नीचे, उसी छोटी-सी नावके ऊपर, इन्द्र सिर ऊपर उठाये मेरी राह देख रहा है। आँखसे आँख मिलते ही उसने इस तरह हँसकर मुझे बुलाया कि न जानेकी बात अपने मुँहसे मैं निकाल ही न सका। सावधानीसे, धीरे धीरे उतरकर, चुपचाप, मैं नावपर चढ़ गया। इन्द्रने नाव खोल दी।

आज मैं सोचता हूँ कि बहुत जन्मके पुण्योंका फल था जो उस दिन मैं भयके मारे लौट न आया। उस दिनको उपलक्ष्य करके जो चीज़ मैं देख आया, उसे देखना, सारे जीवन सारी पृथिवी छान डालनेपर भी कितनेसे लोगोंके भाग्यमें होता है? स्वयं मैं भी वैसी वस्तु और कहाँ देख सका हूँ? जीवनमें ऐसा शुभ मुहूर्त अनेक बार नहीं आता। यदि कभी आता भी है तो, वह समस्त चेतनापर ऐसी गंभीर छाप मार जाता है कि, बादका सारा जीवन मानों उसी साँचेमें ढल जाता है। मैं समझता हूँ कि इसीलिए मैं स्त्री-जातिको कभी तुच्छ रूपमें नहीं देख सका। इसीलिए बुद्धिसे मैं इस प्रकारके चाहे जितने तर्क क्यों न करूं कि संसारमें क्या पिशाचियाँ नहीं हैं? यदि नहीं, तो राह घाटमें इतनी पाप-मूर्तियाँ किनकी दीख पड़ती हैं? सब ही यदि इन्द्रकी जीजी हैं, तो इतने प्रकारके दुःखोंके स्रोत कौन बहाती हैं?—तो भी, न जाने क्यों, मनमें आता है कि यह सब उनके बाह्य आवरण हैं, जिन्हें कि वे जब चाहे तब दूर फेंककर ठीक उन्हींके (दीदीके) समान उच्च आसनपर जाकर विराज सकती हैं। मित्र लोग कहते हैं कि यह मेरा अति जघन्य शोचनीय भ्रम है। मैं इसका भी प्रतिवाद नहीं करता, सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि, यह मेरी युक्ति नहीं है, संस्कार है। इस संस्कारके मूलमें जो है, नहीं मालूम, वह, पुण्यवती आज भी जीवित है या नहीं। यदि हो भी तो वह कैसे, कहाँपर है, इसकी खोज खबर लेनेकी चेष्टा भी मैंने नहीं की है। किन्तु फिर भी, मन ही मन मैंने उन्हें कितनी बार प्रणाम किया है, इसे भगवान् ही जानते हैं।

श्मशानके उसी सकरे घाटके पास, बड़के वृक्षकी जड़ोंसे, नावको बाँधकर

जब हम दोनों रवाना हुए तब बहुत दिन बाकी था। कुछ दूर चलनेपर, दाहिनी तरफ, वनके भीतर अच्छी तरह देखनेसे एक रास्ता सा दिखाई दिया। उसीसे होकर इन्द्रने अन्दर प्रवेश किया। करीब दस मिनट चलनेके बाद एक पर्णकुटी दिखाई दी। नजदीक जाकर देखा कि भीतर जानेका रास्ता एक बेंड़ेसे बन्द है। इन्द्रने सावधानीसे, उसका बंधन खोलकर, प्रवेश किया; और मुझे अन्दर लेकर फिर उसे उसी तरह बाँध दिया। मैंने वैसा वास-स्थान अपने जीवनमें कभी नहीं देखा। एक तो चारों तरफ निबिड़ जंगल, दूसरे सिरके ऊपर एक प्रकाण्ड इमली और पाकरके वृक्षने सारी जगहको मानों अन्धकारमय कर रक्खा था। हमारी आवाज पाकर मुर्गियाँ और उनके बच्चे चीत्कार कर उठे। एक तरफ बँधी हुई दो बकरियाँ मिमिया उठीं। ध्यानसे सामने देखा तो,—अरे बाबा!—एक बड़ा भारी अजगर, टेढ़ा-मेढ़ा होकर, करीब करीब सारे आँगनको व्याप्त करके पड़ा है! पल-भरमें एक अस्फुट चीत्कार करके, मुर्गियोंको और भी भयभीत करता हुआ, मैं एकदम उस बेंड़ेपर चढ गया। इन्द्र खिल-खिलाकर हँस पड़ा, बोला, "यह किसीसे नहीं बोलता है रे, बड़ा भला साँप है,—इसका नाम है रहीम।" इतना कहकर वह उसके पास गया और उसने उसे, पेट पकड़कर, आँगनके दूसरी ओर, खींचकर सरका दिया। तब मैंने बेंड़ेपरसे उतरकर दाहिनी ओर देखा। उस पर्णकुटीके बरामदेमे बहुत-सी फटी चटाइयों और फटी कथरियोंके बिछौनोंपर बैठा हुआ एक दीर्घकाय दुबला-पतला मनुष्य प्रबल खाँसीके मारे हाँफ रहा है। उसके सिरकी जटाएँ ऊँची बँधी हुई थीं और गलेमें विविध प्रकारकी छोटी-बडी मालाएँ पडी थीं। शरीरके कपड़े अत्यंत मैले और एक प्रकारके हल्दीके रंगमें रँगे हुए थे। उसकी लम्बी दाढ़ी कपड़ेकी एक चिन्दीसे जटाके साथ बँधी हुई थी। पहले तो मैं उसे पहचान नहीं सका; परन्तु, पासमे आते ही पहचान गया कि वह सँपेरा है। पाँच-छः महीने पहले मैं उसे करीब करीब सभी जगह देखा करता था। हमारे घर भी वह कई दफे साँपका खेल दिखाने आया है। इन्द्रने उसे 'शाहजी' कहकर सम्बोधन किया। उसने हमें बैठनेका इशारा किया और हाथ उठाकर इन्द्रको गाजेका साज सरंजाम और चिलम दिखा दी। इन्द्रने कुछ कहे बगैर ही उसके आदेशका पालन करना शुरू कर दिया। जब चिलम तयार हुई तब शाहजी, खाँसीसे बेदम होनेपर भी, मानों 'चाहे मरूँ—

चाहे बचूँ ' का प्रण करके, दम खींचने लगा और रत्तीभर भी धुआँ कहींसे बाहर न निकल जाय, इस आशंकाके मारे उसने अपनी बाईं हथेलीसे नाक और मुँह अच्छी तरह दबा लिया; फिर सिरके एक झटकेसे साथ उसने चिलम इन्द्रके हाथमें दे दी और कहा, " पियो। "

इन्द्रने चिलम पी नहीं। धीरेसे उसे नीचे रखते हुए कहा, " नहीं।" शाहजीने अत्यंत विस्मित होकर कारण पूछा, किन्तु उत्तरके लिए एक क्षणकी भी प्रतीक्षा नहीं की। फिर स्वयं ही उसे उठा लिया और खींच खींचकर निःशेष करके उलटकर रख दिया। इसके बाद दोनोंके बीच कोमल स्वरमें बातचीत शुरू हुई जिसमेंसे अधिकांशको न तो मैं सुन सका और न समझ ही सका। किन्तु एक बातको मैंने लक्ष्य किया कि शाहजी हिन्दी बोलते रहे और इन्द्रने बंगला छोड़ और किसी भाषाका व्यवहार न किया।

शाहजीका कंठ स्वर क्रम क्रमसे गर्म हो उठा और देखते ही देखते वह पागलोंकी-सी चिल्लाहटमें परिणत हो गया। इन्द्रको उद्देश्य करके वह जो गाली-गलौज करने लगा वह ऐसी थी कि न सुनी जा सकती है और न कही। इन्द्रने तो उसे सह लिया परन्तु मैं कभी नहीं सहता। इसके बाद वह बेड़के सहारे बैठ गया और दम-भर बाद ही गर्दन झुका करके सो गया। दोनों जनोंके, कुछ देरतक, वैसे ही चुपचाप बैठे रहनेके कारण मैं ऊब उठा और बोला, " समय जा रहा है, तुम्हें क्या वहाँ नहीं जाना है ? "

" कहाँ श्रीकान्त ? "

" अपनी जीजीके यहाँ, रुपया देने नहीं जाना है। "

" जीजीके लिए ही तो मैं बैठा हूँ। यही तो उनका घर है। "

" यही क्या तुम्हारी जीजीका घर है ? यह तो सँपेरे,—मुसलमान,—हैं ! " इन्द्र कुछ कहनेको उद्यत हुआ,—पर फिर उसे दबा गया और चुप रहकर मेरी ओर ताकने लगा। उसकी दृष्टि बड़ी भारी व्यथासे मानों म्लान हो गई। वह कुछ ठहरकर बोला, " एक दिन तुझे सब कहूँगा। साँप खिलाना देखेगा श्रीकान्त ? "

उसकी बात सुनकर मैं अवाक् हो गया। " क्या साँपको खिलाओगे तुम ? यदि काट खाय तो ? "

इन्द्र उठकर घरके अन्दर गया और एक छोटी-सी पिटारी और सँपेरेकी तूँबी (बाजा) ले आया। उसने उसे सामने रक्खा, पिटारीका ढकन

खोला और तूँबी बजाई। मैं डरके मारे काठ हो गया, "पिटारी मत खोलो भाई भीतर यदि गोखरू साँप हुआ तो?" इन्द्रने इसका जवाब देनेकी भी जरूरत नहीं समझी, केवल इशारेसे बता दिया कि मैं गोखरू साँपको भी खिला सकता हूँ। दूसरे ही क्षण सिर हिला हिलाकर तूँबी बजाते हुए उसने ढक्कनको अलग कर दिया। बस फिर क्या था, एक बड़ा भारी गोखरू साँप एक हाथ ऊँचा होकर फन फैलाकर खडा हो गया। मुहूर्त मात्रका भी विलम्ब किये बगैर इन्द्रके हाथके ढक्कनमें उसने जोरसे मुँह मारा और पिटारीमेंसे बाहर निकल पड़ा!

"अरे बापरे!" कहकर इन्द्र आँगनमे उछल पड़ा। मैं बेंड़ेपर चढ़ गया। क्रुद्ध सर्पराज, तूँबीपर और एक आघात करके, घरके भीतर घुस गये। इन्द्रका मुँह काला हो गया। उसने कहा, "यह तो एकदम जंगली है। जिसे मैं खिलाया करता था वह यह नहीं है!" भय, झुँझलाहट और खीझसे मुझे करीब करीब रुलाई आ गई। मैं बोला, "क्यों ऐसा काम किया? उसने जाकर कहीं शाहजीको काट खाया तो?" इन्द्र असीम शर्मके मारे गड़ा जा रहा था। बोला, "घरका अर्गल लगा आऊँ? किन्तु यदि पासमे ही छिपा हुआ तो?" मैं बोला, "तो फिर, निकलते ही उसे काट खायगा।" निरुपाय भावसे इधर उधर देखकर इन्द्र बोला, "काटने दो बच्चूको, जंगली साँप रख छोड़ा है जो,—साले गँजेड़ीको इतनी भी अक्ल नहीं है।—यह लो वह जीजी आ गईं। आना मत! आना मत! वहीं खड़ी रहो—" मैंने सिर घुमाकर इन्द्रकी जीजीको देखा। मानों राखसे ढँकी हुई आग हों। जैसे यूग-युगान्तरव्यापी कठोर तपस्या समाप्त करके अभी आसनसे ही उठकर आई हों। बाईं ओर कमरपर रस्सीसे बँधी हुई थोडी-सी सूखी लकड़ियाँ थीं और दाहिने हाथमे फूलोंकी डलियोंके समान एक टोकनीमे कुछ शाक-सब्जी थी। पहिनावेमे हिन्दुस्तानी मुसलमानिनके समान कपड़े थे, जो गेरुए रंगमे रंगे हुए थे परंतु मैले नहीं थे। हाथमे लाखकी दो चूड़ियाँ थीं। माँग हिन्दुस्तानियोंके समान सिंदूरसे भरी थी। उन्होंने लकड़ीका बोझा नीचे रख दिया और बेडा खोलते खोलते कहा, "क्या है?" इन्द्र बहुत ही व्यस्त होकर बोला, "खोलो मत जीजी, तुम्हारे पैर पड़ता हूँ,—एक बड़ा भारी साँप घरमे घुस गया है।" उन्होंने मेरे मुँहकी ओर देखकर मानो कुछ सोचा। इसके बाद थोड़ा-सा हँसकर कहा, "वही तो। सँपेरेके घरमें साँप

घुसा है, यह तो बड़े अचरजकी बात है! है न, श्रीकान्त ?" मैं अनिमेष दृष्टिसे केवल उन्हींके मुँहकी ओर देखता रहा। "किन्तु, यह तो कहो इन्द्रनाथ, वह अन्दर किस तरह गया ?" इन्द्र बोला, "पिटारीके भीतरसे निकल पड़ा है। एकदम जंगली साँप है।"

"शायद वे अंदर सो रहे हैं, क्यों ?" इंद्रने गुस्सेसे कहा, "गाँजा पीकर एकदम बेहोश पड़े हैं। चिल्ला चिल्लाकर मर जानेपर भी न उठेंगे।" उन्होंने फिर हँसकर कहा, "और यही सुयोग पाकर तुम श्रीकान्तको साँपका खिलाना दिखाने चले थे, क्यों न ? अच्छा, आओ, मैं पकड़े देती हूँ।"

"तुम मत जाना जीजी, तुम्हें काट खायगा। शाहजीको उठा दो,—मैं तुम्हें न जाने दूँगा। यह कहकर और दोनों हाथ पसारकर वह रास्ता रोककर खड़ा हो गया। उसके इस व्याकुल कण्ठ-स्वरमें जो प्रेम प्रकाशित हो उठा, उसे उन्होंने खूब ही अनुभव किया। मुहूर्त-भरके लिए उनकी दोनों आँखें छलछला उठीं। किन्तु उन्हें छिपाकर वे हँसकर बोलीं, "अरे पागल, इतना पुण्य तेरी इस जीजीने नहीं किया। मुझे वह नहीं काटेगा, अभी पकड़े देती हूँ देख—" कहकर बाँसके मंचपरसे एक किरासनकी डिबिया उठाकर और जलाकर वे घरमें गईं। एक मिनट-भरमें ही साँपको पकड़ लाईं और उसे पिटारीमें बंद कर दिया। इन्द्रने चटसे उनको पैरोंपर गिरकर नमस्कार किया और पैरोंकी धूल सिरपर लगाकर कहा, "जीजी, यदि तुम कहीं मेरी जीजी होतीं!" उन्होंने दाहिना हाथ बढ़ाकर इन्द्रका चिबुक स्पर्श किया और उस अंगुलीको चूम लिया। फिर मुँह फेरकर अलक्ष्यमें मानों उन्होंने अपनी दोनों आँखें पोंछ डालीं।

५

सारी घटना सुनते सुनते इन्द्रकी जीजी हठात् दो एक बार इस तरह सिहर उठीं कि यदि इन्द्रका उस तरफ तनिक भी ध्यान होता, तो उसे बड़ा आश्चर्य होता। वह तो न देख पाया परंतु मैंने देख लिया। वे कुछ देर तक चुपचाप उसकी ओर देखकर स्नेहभरे तिरस्कारसे बोलीं, "छिः भइया, ऐसा कार्य अब और कभी मत करना। इन सब भयानक जानवरोंसे क्या खिलवाड़ किया जाता है ? भाग्यसे तुम्हारे हाथकी पिटारीके ढक्कनपर ही उसने फन मारा, नहीं तो आज कैसा अनर्थ हो जाता, बोल तो ?"

"मैं क्या ऐसा बेवकूफ हूँ जीजी!" इतना कहकर उसने अपनी धोतीका छोर खींचकर कमरमें सूतसे बँधी हुई एक सूखी जड़ी दिखाकर कहा, "यह देख जीजी, पूरी सावधानीके साथ बाँध रक्खी है। यदि यह न होती तो क्या आज वह मुझे काटे बिना छोड देता! शाहजीके पाससे इसे प्राप्त करनेमें क्या मुझे कम कष्ट उठाने पडे हैं? इसके होते हुए तो मुझे कोई भी नहीं काट सकता, और यदि काट भी लेता,—तो भी क्या बिगड़ता!—शाहजीको तुरत ही जगाकर उनसे जहर-मोहरा लेकर कटी जगहपर रख देता। अच्छा, जीजी, यह जहर-मोहरा कितनी देरमें सब विष खींच लेता है!—आध घण्टेमें!—एक घण्टेमें!—नहीं, इतनी देर न लगती होगी, क्यों जीजी!"

जीजी, किन्तु, उसी तरह, चुपचाप देखती रहीं। इन्द्र उत्तेजित हो गया था, बोला, "आज दो न जीजी मुझे एक जहर मोहरा,—तुम्हारे पास तो दो-तीन पड़े हैं,—कितने दिनोंसे मैं माँग रहा हूँ। " फिर उत्तरके लिए प्रतीक्षा किये वगैर ही वह क्षुब्ध अभिमानके स्वरमें उसी क्षण बोल उठा, "मुझसे तो तुम लोग जो भी कहते हो मैं वही कर देता हूँ,—पर तुम लोग मुझे हमेशा झाँसा देकर कहते हो, आज नहीं कल, कल नहीं परसों,—यदि नहीं देना है तो साफ क्यों नहीं कह देते! मैं फिर नहीं आऊँगा,—जाओ।"

इन्द्रने लक्ष्य नहीं किया, किंतु, मैंने जीजीके तरफ देखते हुए खूब अनुभव किया कि उनका मुख, किसी असीम व्यथा और लज्जाके कारण, मानो एकदम काला हो गया है। किंतु दूसरे ही क्षण कुछ हँसीका भाव अपने सूखे होठोंपर जबर्दस्ती लाकर उन्होंने कहा, "हाँ रे इन्द्र, क्या तू अपनी जीजीके यहाँ सिर्फ साँपके मंत्र और जहर-मोहराके लिए ही आया करता है!"

इन्द्र निःसंकोच होकर बोल उठा, "और नहीं तो क्या।" फिर निद्रित शाहजीकी ओर तिरछी नजरसे देखकर बोला, "किन्तु वह मुझे हमेशा झाँसा ही देते रहते हैं—इस तिथिको नहीं, उस तिथिको नहीं—केवल वह एक झाड़नेका मन्त्र दिया था, बस और कुछ देना ही नहीं चाहते। किंतु, आज मुझे खूब मालूम हो गया है जीजी, कि तुम भी कुछ कम नहीं हो,—तुम भी सब जानती हो। अब और उनकी खुशामद नहीं करूँगा जीजी, तुम्हारे पाससे ही सब मंत्र सीख लूँगा।" इतना कहकर उसने मेरी ओर देखा और फिर सहसा एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर शाहजीको लक्ष्य करके उनके प्रति आदरका भाव प्रकट करते हुए कहा, "शाहजी गाँजा वाँजा जरूर पीते

हैं श्रीकान्त, किंतु तीन दिनके मरे हुए मुर्देको आध घण्टेके भीतर ही उठाकर खड़ा कर सकते हैं,—इतने बड़े उस्ताद है ये ! हाँ जीजी, तुम भी तो मुर्देको जिला सकती हो ! "

जीजी कुछ देर चुपचाप देखती रहीं और फिर एकाएक खिलखिलाकर हँस पड़ीं। वह कितना मधुर हास था ! इस तरह मैंने बहुत ही थोड़े लोगोंको हँसते देखा है। किन्तु वह हास, मानो निबिड़ मेघोंसे भरे हुए आकाशकी बिजलीकी चमककी तरह, दूसरे ही क्षण अंधकारमें विलीन हो गया।

किन्तु इन्द्रसे उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया, वह एकदम जीजीके गले पड़ गया और बोला, " मैं जानता हूँ कि तुम्हें सब मालूम है। परंतु मैं कहे देता हूँ कि एक एक करके तुम्हें अपनी सब विद्याएँ देनी होंगी। जितने दिन जीऊँगा उतने दिन तुम्हारा पूरा गुलाम होकर रहूँगा। तुमने कितने मुर्दे जिलाए हैं जीजी ? "

जीजी बोलीं, " मैं तो मुर्दे जिलाना जानती नहीं, इंद्रनाथ ! "

इंद्रने पूछा, " तुम्हें शाहजीने यह मंत्र नहीं दिया ? " जीजीने सिर हिलाकर कहा, " नहीं।" इंद्र, मिनट-भर तक उनके मुँहकी ओर देखते रहनेके उपरान्त, स्वयं भी अपना सिर हिलाते हिलाते बोला, " यह विद्या क्या कोई शीघ्र देना चाहता है जीजी ? अच्छा, कौड़ी चलाना तो तुमने निश्चय ही सीख लिया होगा ? "

जीजी बोली, " कौड़ी चलाना किसे कहते हैं, सो भी तो मैं नहीं जानती भाई ! "

इन्द्रको विश्वास नहीं हुआ। वह बोला, " हश्, जानतीं कैसे नहीं ! नहीं दूँगी, यही कह दो न ! " फिर मेरी ओर देखकर बोला, " कौड़ी चलाना कभी देखा है श्रीकान्त ? दो कौड़ियाँ मंत्र पढ़कर छोड़ दी जाती हैं, वे जहाँ साँप होता है वहाँ जाकर उसके सिरपर जा चिपटती हैं और उसे दश दिन तकके रास्तेसे खींच लाकर हाजिर कर देती हैं। ऐसा ही मंत्रका जोर है ! अच्छा जीजी, घर बाँधना, देह-बाँधना, धूल पढ़ना—यह सब तो तुम जानती हो न ? यदि जानती न होतीं, तो इस तरह साँपको कैसे पकड़ लेतीं ? " इतना कहकर वह जिज्ञासु-दृष्टिसे जीजीके मुँहकी ओर देखने लगा।

जीजीने बहुत देरतक सिर झुकाए हुए चुपचाप मन ही मन मानों कुछ सोच लिया और फिर मुँह उठाकर धीरेसे कहा, " इन्द्र, तेरी जीजीके पास

ये सब विद्याएँ कानी-कौड़ीकी भी नहीं हैं, किन्तु, क्यों नहीं है, सो यदि तू विश्वास करे भाई, तो आज तेरे आगे सब बातें खोलकर अपनी छातीका बोझ हलका कर डालूँ। बोलो, तुम लोग आज मेरी सब बातोंपर विश्वास करोगे ?" बोलते बोलते ही उनके पिछले शब्द एक तरहसे कुछ भारी-से हो उठे।

अभी तक मैं प्रायःकुछ भी न बोला था। इस दफे, सबसे आगे, जोरसे बोल उठा, "मैं तुम्हारी सब बातोंपर विश्वास करूँगा, जीजी! सबपर— जो तुम कहोगी, सब पर। एक भी बातपर अविश्वास न करूँगा।"

मेरी ओर देखकर वे कुछ हँसी और बोलीं, "विश्वास क्यों न करोगे भाई! तुम भले घरोंके लड़के जो ठहरे! इतर (छोटे) लोग ही अनजान अपरिचित लोगोंकी बातोंमें सन्देह करते और भयसे पीछे हट जाते हैं। सिवाय इसके मैंने तो कभी झूठ बोला नहीं भाई!" इतना कहकर उन्होंने एक दफे फिर हमारी ओर देखकर म्लान भावसे थोड़ा-सा हँस दिया।

उस समय, संध्याकी धुंध दूर होकर, आकाशमें चन्द्रमाका उदय हो रहा था और उसकी धुँधली-सी किरण-रेखाएँ, वृक्षोंकी घनी शाखाओं और पत्तोंमेंसे छनकर नीचेके गहरे अँधकारमें पड़ रही थीं।

कुछ देर चुप रहकर जीजी एकाएक बोल उठीं, "इन्द्रनाथ, सोचा था कि आज ही अपनी सब कहानी तुम्हें सुना दूँ। किन्तु सोचकर देखा कि नहीं, अभी वह समय नहीं आया है। परन्तु मेरी इस बातपर अवश्य विश्वास कर लो कि हम लोगोंकी सारी करामात शुरूसे आखिरतक प्रवंचना ही है। इसलिए अब तुम झूठी आशासे शाहजीके पीछे पीछे चक्कर मत काटो। हम लोग मंत्र-तंत्र कुछ नहीं जानते, मुर्देको भी नहीं जिला सकते; कौड़ी फेंककर साँपको भी पकड़कर नहीं ला सकते। और कोई कर सकता है या नहीं, सो तो मैं नहीं जानती परन्तु, हम लोगोंमें ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है।"

न मालूम क्यों इस अत्यल्प कालके परिचयसे ही मैंने उनके प्रत्येक शब्दपर असंशय विश्वास कर लिया; किन्तु, इतने दिनोंके घनिष्ठ परिचयके होते हुए भी इन्द्र विश्वास न कर सका। वह क्रुद्ध होकर बोला, "यदि शक्ति नहीं है तो तुमने साँपको पकड़ लिया किस तरह ?"

जीजी बोलीं, "यह तो सिर्फ हाथका कौशल-भर है इन्द्र, किसी मन्त्रका जोर नहीं। साँपका मन्त्र हम लोग नहीं जानते।"

इन्द्र बोला, "यदि नहीं जानते; तो तुम दोनोंने धूर्ततासे मुझसे इतने रुपये क्यों ठग लिये ?"

जीजी तत्काल जवाब न दे सकीं; शायद अपनेको कुछ सँभालने लगीं। इन्द्रने फिर कर्कश कण्ठसे कहा, "तुम सब ठग, धूर्त, चोट्टे हो,—अच्छा दिखाता हूँ तुम लोगोंको इसका मजा।"

पासमें ही एक किरासिनकी डिबिया जल रही थी। मैंने उसीके प्रकाशमें देखा, जीजीका मुँह मुर्देके समान सफेद हो गया है। वे भय और संकोचके साथ बोलीं, "हम लोग मदारी जो हैं भाई—ठगना ही तो हमारा व्यवसाय है—"

"तुम्हारा व्यवसाय मैं अभी सब बाहर निकाले देता हूँ—चल रे श्रीकान्त, इन साले धूर्तोंकी छायासे भी बचना चाहिए। हरामजादे, बदजात, धूर्त, बदमाश!" यह कहकर इन्द्र सहसा मेरा हाथ पकड़कर और जोरसे एक झटका देकर खड़ा हो गया और जरा भी विलम्ब किये बिना मुझे खींच ले गया।

इन्द्रको दोष नहीं दिया जा सकता; क्योंकि उसकी बहुत दिनोंकी बहुत बड़ी बड़ी आशाएँ, मानों पलक मारते ही, भूमिसात् हो गई थी। किन्तु मैं अपनी दोनों आँखोंको जीजीकी उन आँखोंकी ओर फिर न लौटा सका मैं बलपूर्वक इन्द्रसे अपना हाथ छुड़ाकर पाँच रुपये सामने रखते हुए बोला, "तुम्हारे लिए लाया था जीजी,—इन्हें ले लो।"

इन्द्रने झपटकर उन्हें उठा लिया और कहा, "अब और रुपये! धूर्ततासे इन्होंने मुझसे कितने रुपये लिये हैं, सो क्या तुझे मालूम है श्रीकान्त? मैं तो अब यही चाहता हूँ कि ये लोग बिना खाये पीये सूखकर मर जायँ।"

मैंने उसका हाथ दबाकर कहा, "नहीं इन्द्र, दे देने दो,—मैं ये जीजीके लिए ही लाया हूँ।"

"ओः—बड़ी आई तेरी जीजी!" कहकर वह मुझे खींचकर बेंड़ेके पास घसीट लाया।

इतनेमें इस गोलमालसे शाहजीका नशा उचट गया। "क्या हुआ! क्या हुआ!" कहते हुए वह उठ बैठा।

इन्द्र मुझे छोड़कर उसकी ओर बढ़ गया और बोला, "डाकू साले! कभी रास्तेमें देख पाया तो चाबुकसे तेरी पीठका चमड़ा उधेड़ दूँगा।—'क्या

हुआ !' बदमाश, साला, जानता कुछ भी नहीं, फिर भी कहता फिरता है, मन्त्रके जोरसे मुर्दे जिलाता हूँ ! यदि कभी रास्तेपर दिखाई दिया तो अबकी बार अच्छी तरह 'देखूँगा' तुझे !" इतना कहकर उसने एक ऐसा अशिष्ट इशारा किया जिससे कि शाहजी चौंक उठा !

एक तो नशेकी खुमारी, फिर अकस्मात् यह अचिन्त काण्ड।—इससे वह, 'किंकर्तव्य-विमूढ' हो गया और उसी भावसे टुकुर टुकुर देखने लगा।

इन्द्र मुझे लेकर जबतक द्वारके बाहर आया, तबतक शायद वह कुछ होशमें आकर शुद्ध बंगलामे पुकार उठा, "सुन इन्द्रनाथ, क्या हुआ है बोल तो ?" यह पहले ही पहल मैंने उसे बंगालमे बोलते सुना।

इन्द्र लौटकर बोला "जंत्र-मंत्र तुम कुछ नहीं जानते, फिर क्यों झूठमूठ मुझे धोका देकर इतने दिनोंतक रुपया ऐंठते रहे ? इसका जबाब दो !"

वह बोला, "'नहीं जानता,' यह तुमसे किसने कहा ?"

इन्द्रने उसी क्षण उस स्तब्ध नतमुखी जीजीकी ओर हाथ बढ़ाकर कहा, "इन्होंने कहा कि तुम्हारे पास कानी कौड़ीकी भी विद्या नहीं है। विद्या है सिर्फ धूर्तताकी और लोगोंको ठगनेकी। यही तुम लोगोंका व्यवसाय है। मिथ्यावादी चोर !"

शाहजीकी आँखें भकसे जल उठी। वह कैसी भीषण प्रकृतिका आदमी है, इसका परिचय मुझे तबतक भी नहीं था। उसकी केवल उस दृष्टिसे ही मेरे शरीरमें मानों काँटे उठ आये। वह अपनी बिखरी हुई जटाओंके बाँधते बाँधते उठ खड़ा हुआ और सामने आकर बोला, "कहा है, तूने !"

जीजी उसी तरह नीचा मुँह किये निरुत्तर बैठी रहीं। इन्द्रने मुझे एक धक्का देकर कहा, "रात हो गई—चल न।" मैंने कहा, "रात अवश्य हो रही है, परंतु मेरे पैर तो जैसे अपनी जगहसे हिलते ही नहीं हैं।" किन्तु इन्द्रने उस ओर भ्रूक्षेप भी न किया। वह मुझे प्रायः जबर्दस्ती ही खींच ले चला।

कुछ कदम आगे बढ़ते ही शाहजीका कंठ-स्वर फिर सुनाई दिया, "क्यों कहा तूने !"

प्रश्न तो जरूर सुना किन्तु प्रत्युत्तर न सुन सका। थोड़े कदम और अग्रसर होते ही अकस्मात् चारों ओरके उस निबिड़ अंधकारकी छातीको चीरता हुआ एक तीव्र आर्त्त-स्वर पीछेकी अँधेरी झोंपड़ीमेंसे हमारे कानोंको बेधता हुआ निकल गया; और आँखकी पलक गिरते न गिरते इन्द्र उस

शब्दका अनुसरण करके अदृश्य हो गया। किन्तु मेरे भाग्यमें कुछ और ही था। सामने ही एक बड़ी कँटीली झाड़ी थी। मैं जोरसे उसीपर जा गिरा और काँटोंसे मेरा सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। यह जो हुआ, सो हुआ किन्तु अपनेको काँटोंसे छुड़ानेमें ही मुझे करीब दस मिनट लग गये। इस काँटेको छुड़ाओ तो किसी अन्य काँटेमें कपड़ा बिंध जाता और उसे छुड़ाओ तो किसी तीसरेमें जा अटकता। इस प्रकार अनेक कष्ट और विलम्बके उपरान्त जब मैं शाहजीके घरके आँगनके किनारे पहुँचा, तब देखा कि उस आँगनके एक हिस्सेमें जीजी मूर्छित पड़ी हुई हैं और दूसरे हिस्सेमें दोनों गुरु-शिष्यका बाकायदा मल्ल-युद्ध हो रहा है। पासमें ही एक तेजधारवाली बर्छी पड़ी हुई है।

शाहजी शरीरसे अत्यंत बलवान् था, किन्तु उसे पता न था कि इन्द्र उससे भी कितना अधिक बली है। यदि होता तो शायद वह इतने बड़े दु:साहसका परिचय न देता। देखते ही देखते इन्द्र उसे चित करके उसकी छातीपर चढ़ बैठा और उसकी गर्दनको जोरसे दबोचने लगा। वह ऐसा दबोचना था कि, यदि मैं बाधा न देता तो, शायद, शाहजीका मदारी-जीवन उसी समय समाप्त हो जाता।

बहुत खींच-तानके बाद जब मैंने दोनोंको पृथक् किया तब इन्द्रकी अवस्था देखकर मैं डरके मारे एकदम रो दिया। पहले मैं अंधकारमें देख न सका था कि उसके सब कपड़े खूनसे तरबतर हो रहे हैं। इन्द्र हाँफते हाँफते बोला, "साले गँजेड़ीने मुझे साँप मारनेका बर्छा मारा है,—यह देख!" कुरतेकी आस्तीन उठाकर उसने बताया, भुजामें करीब दो तीन इंच गहरा घाव हो गया, है,—और उसमेंसे लगातार खून बह रहा है।

इन्द्र बोला, "रो मत, इस कपड़ेसे मेरे घावको खूब खींचकर बाँध दे—अरे खबरदार! ठीक ऐसा ही बैठा रह, उठा तो गलेपर पैर रखकर तेरी जीभ खींचकर बाहर निकाल लूँगा, हरामजादे सुअर!—ले इन्द्र, तू खींचकर बाँध, देरी न कर।" इतना कहकर उसने चर्र चर्र अपनी धोतीके छोरका एक अंश फाड़ डाला। मैं कापते हुए हाथोंसे घावको बाँधने लगा और शाहजी निकट ही, आसनमृत्यु विषैले सर्पकी तरह, बैठा हुआ, चुपचाप देखने लगा।

इन्द्र बोला, "नहीं, तेरा विश्वास नहीं है, तू खून कर डालेगा मैं तेरे

हाथ बाँधूँगा।" यह कहकर उसने उसीकी गेरुए रंगकी पगड़ीसे खींच-खींच कर उसके दोनों हाथ खूब कस करके बाँध दिये। उसने कोई बाधा नहीं दी, प्रतिवाद नहीं किया, जरा-सी चूँ-चपड़ भी नहीं की।

जिस लाठीके प्रहारसे जीजी बेहोश हो गई थीं उसे उठाकर एक तरफ रखते हुए इन्द्र बोला, "कैसा नमकहराम शैतान है यह साला! मैंने इसे अपने पिताके न जाने कितने रुपये चुराकर दिये हैं, और यदि जीजीने सिरकी कसम खाकर रोका न होता तो और भी देता! इतनेपर भी यह मुझे बर्छा मार बैठा! श्रीकान्त, इसपर नज़र रख जिससे यह उठ न बैठे,—मैं जीजीकी आँखों और चेहरेपर जलके छींटे देता हूँ।"

पानीके छींटे देकर हवा करते हुए वह बोला, "जिस दिन जीजीने कहा कि 'इन्द्रनाथ, तेरे कमाये हुए पैसे होते तो मैं ले लेती—किन्तु इन्हे लेकर मैं अपना इहलोक-परलोक मिट्टी नकरूँगी।' उस दिनसे अबतक इस शैतानके बच्चेसे उन्हें कितनी मार मारी है, इसका कोई हिसाब नहीं। इतनेपर भी जीजी लकड़ी ढोकर, कण्डे बेचकर किसी तरह इसे खिलाती पिलाती हैं, गाँजेके लिए पैसे देती हैं,—फिर भी यह उनका अपना न हुआ! किन्तु, अब मैं इसे पुलिसके हाथमे दूँगा, तब छोड़ूँगा,—नहीं तो यह जीजीका खून कर डालेगा, यह खून कर सकता है!"

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानों वह मनुष्य इस बातसे सिहर उठा और सिर उठाकर उसे तुरत नीचा कर लिया। यह सब निमेप-भरमें ही हो गया। किन्तु अपराधीकी निबिड़ आशङ्का मैंने उसके चेहरेपर इस प्रकार परिस्फुट होती हुई देखी कि उसका उस समयका वह चेहरा मुझे आज भी साफ-साफ याद आ जाता है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि इस कहानीको, जिसे कि आज मैं लिख रहा हूँ, इतना ही नहीं कि सत्य मानकर ग्रहण करनेमे लोग दुविधा करेंगे परन्तु इसे विचित्र कल्पना कहकर उपहास करनेमें भी शायद सकोच न करेंगे। फिर भी, यह सब कुछ जानते हुए भी, मैंने इसे लिखा है और यही मेरी अभिज्ञताका सच्चा मूल्य है। क्योंकि, सत्यके ऊपर खड़े हुए बगैर, किसी भी तरह यह सब कथा मुँहसे बाहर नहीं निकाली जा सकती। पग-पग-पर डर लगता है कि लोग इसे हँसीमें न उड़ा दे। जगत्‌मे वास्तविक घटनाएँ कल्पनाको भी बहुत दूर पीछे छोड़ जाती है,—यह कैफियत, स्वयं

उसे लेखबद्ध करनेमें, किसी तरहकी मदद नहीं करती, बल्कि हाथकी कलमको बार बार खींचकर रोकती है।

पर जाने दो इस बातको। जी जी जब आँखें खोलकर उठ बैठीं तब शायद आधी रात हो गई थी। उनकी विह्वलता दूर होते और भी एक घण्टा बीत गया इसके बाद हमारे मुँहसे समस्त वृत्तान्त सुनकर वे उठकर धीरे धीरे खड़ी हो गई और शाहजीको बंधन-मुक्त करके बोलीं, "जाओ; अब सो रहो।"

उसके चले जानेके उपरान्त उन्होंने इन्द्रको पास बुलाकर और उसका दाहिना हाथ अपने सिरपर रखकर कहा, "इन्द्र, मेरे इस सिरपर हाथ रखकर शपथ तो कर भाई, कि अब फिर कभी तू इस घरमें न आयगा। हमारा जो होना हो सो हो, तू अब हमारी कोई खबर न लेना।"

इन्द्र पहले तो अवाक् हो रहा परन्तु दूसरे ही क्षण आगकी तरह जल उठा और बोला, "ठीक ही तो है! मेरा खून किये डालता था, सो तो कुछ भी नहीं। और मैंने जो उसे थोड़ी देरके लिए बाँध दिया, सो इसपर तुम्हारा इतना गुस्सा! ऐसा न हो तो फिर यह कलियुग ही क्यों कहलावे! परन्तु तुम दोनों कितने नमकहराम हो! आ रे श्रीकान्त, चलें, बस हो चुका।"

जीजी चुप हो रहीं—उन्होंने इस अभियोगका जरा भी प्रतिवाद नहीं किया। क्यों नहीं किया सो, पीछे मैंने चाहे जितना क्यों न समझा हो, परन्तु उस समय बिलकुल न समझ सका। तथापि, मैं अलक्ष्य रूपसे चुपचाप वे पाँच रुपये वहीं खंबेके पास रखकर इन्द्रके पीछे पीछे चल दिया आँगनके बाहर आकर इन्द्र चिल्लाकर बोला, "हिंदूकी लड़की होकर जो एक मुसलमानके साथ भाग आती है, उसका धर्म कर्म ही क्या! चूल्हेमें चली जाय, अब मैं न कोई खोज ही करूँगा और न खबर ही लूँगा।—हरामजादा, नीच कहींका!" यह कहकर वह तेजीसे उस वन-पथको लाँघकर चल दिया।

हम दोनों नावमें आकर बैठ गये, इंद्र चुपचाप नाव खेने लगा और बीच बीचमें हाथ उठा-उठाकर आँखें पोंछने लगा। यह साफ साफ समझकर कि वह रो रहा है, मैंने भी और कोई प्रश्न नहीं किया।

श्मशानके उसी रास्तेसे मैं लौट आया और उसी रास्ते अब भी चला जा रहा हूँ, परंतु, न मालूम क्यों, आज मेरे मनमें भयकी कोई बात ही नहीं आती। मालूम होता है, शायद, उस समय मन इतना विह्वल

और इतना ढँका हुआ था कि इतनी रातको किस तरह घरमें घुसूँगा और घुसनेपर क्या दशा होगी, इसकी चिन्ता भी उसमें स्थान न पा सके।

प्रायः पिछली रातको नाव घाटपर आ लगी। मुझे उतारकर इन्द्र बोला, "घर चला जा श्रीकान्त, तू बड़ा अपशकुनिया है। तुझे साथ लेनेसे एक न एक फसाद उठ खड़ा हो जाता है। आजसे अब तुझे किसी भी कार्यके लिए न बुलाऊँगा,—और तू भी अब मेरे सामने न आना। जा, चला जा।" इतना कहकर वह गहरे पानीमें नौका ठेलकर देखते ही देखते घुमावकी तरफ अदृश्य हो गया। विस्मित, व्यथित और स्तब्ध होकर मैं निर्जन नदीके तीरपर अकेला खड़ा रह गया।

६

निस्तब्ध गंभीर रातमें माता गंगाके किनारे बिल्कुल अकारण ही, जब इन्द्र मुझे बिल्कुल अकेला छोड़कर चला गया, तब मैं रुलाईको और न सँभाल सका। उसे मैं प्यार करता हूँ, इसका उसने कोई मूल्य ही नहीं समझा। दूसरेके घरमें रहते हुए कठोर शासन-जालकी उपेक्षा करके, उसके साथ गया, इसकी भी उसने कोई कद्र नहीं की। सिवाय इसके, मुझे अपशकुनिया अकर्मण्य कहकर और अकेले असहाय अवस्थामें बिदा करके, बेपरवाहीसे चला गया। उसकी वह निष्ठुरता मुझे कितनी अधिक चुभी कि उसको बतानेकी चेष्टा करने भी निरर्थक है। इसके बाद, बहुत दिनोंतक न उसने मुझे खोजा और न मैंने ही उसे। दैवात् यदि कभी राह-घाटमें मिल भी जाता तो मैं इस तरह मुँह मोड़कर चला जाता मानों उसे देखा ही न हो। किन्तु मेरा यह 'मानों,' मुझे ही हमेशा तुषकी आगकी तरह जलाया करता, उसकी जरा-सी भी हानि न कर सकता! लड़कोंके दलमें उसका बड़ा सम्मान था। फुटबाल-क्रिकेटका वह दलपति था, जिमनास्टिक अखाड़ेका मास्टर था। उसके कितने ही अनुचर थे, और कितने ही भक्त। मैं तो उनकी तुलनामें कुछ भी न था। फिर,—क्यों वह दो ही दिनके परिचयमें मुझे 'मित्र' कहने लगा और फिर क्यों उसने त्याग दिया? परंतु जब उसने त्याग दिया तब मैं भी जबर्दस्ती करके उससे सम्बन्ध जोड़ने नहीं गया।

मुझे खूब याद है कि मेरे सङ्गी-साथी जब इन्द्रका उल्लेख करके उसके सम्बन्धमें तरह तरहकी अद्भुत अचरज-भरी बातें कहना शुरू कर देते, तब मैं

चुपचाप उन्हें सुनता रहता। छोटी-सी बात कहकर भी मैंने कभी यह जाहिर नहीं किया कि वह मुझे जानता है अथवा उसके सम्बन्धमें मैं कुछ जानता हूँ। न जाने कैसे मैं उस उम्रमें ही यह जान गया था कि 'बड़े' और 'छोटे' की दोस्तीका परिणाम प्रायः ऐसा ही होता है। भविष्य जीवनमें मैं भाग्यवश अनेक 'बड़े' मित्रोंके संसर्गमें आऊँगा इसलिए, शायद, भगवानने दया करके यह सहज-ज्ञान मुझे दे दिया था जिससे कि मैं कभी किसी भी कारणसे अपनी अवस्थाका अतिक्रम करके अर्थात् अपनी योग्यताका खयाल किये विना मित्रताका मूल्य आँकने न जाऊं। नहीं तो देखते देखते 'मित्र' प्रभु बन जाता है, और साधकी 'मित्रता' का पाश दासत्वको बेड़ी बनकर 'छोटे' के पैरोंको जकड़ लेता है। यह दिव्यज्ञान इतने सहजमें और इस तरह सत्य रूपमें मुझे प्राप्त हो गया था कि इसमें मैं हमेशाके लिए अपमान और लांछनाओंसे छुटकारा पा गया हूँ।

तीन-चार महीने कट गये। दोनोंने ही दोनोंको त्याग दिया,—भले ही इसकी वेदना किसी पक्षके लिए कितनी ही निदारुण क्यों न हो;—किसीने किसीकी भी खोज खबर नहीं ली।

दत्त-परिवारके घरमें काली-पूजाके उपलक्ष्यमें उस मुहल्लेका शौकिया नाटक-स्टेज तैयार हो रहा था। 'मेघनादवध'का अभिनय होनेवाला था। इसके पहले देहातमें यात्रा * तो अनेक बार देखी थी किन्तु नाटक अधिक नहीं देखे थे। मैंने सारे दिन न नहाया, न खाया और न विश्राम ही किया। स्टेज बनानेमें सहायता कर सकनेसे ही मैं मानों बिल्कुल कृतार्थ हो गया था! इतना ही नहीं, जो सज्जन रामका अभिनय करनेवाले थे उन्होंने स्वयं मुझसे उस दिन एक रस्सी पकड़े रहनेके लिए कहा था। इसलिए मुझे बड़ी आशा थी कि रात्रिमें जब लड़के कनातके छेदोंमेंसे अन्दर ग्रीन-रूममें झूँकेंगे और मार तथा लाठीके हूले खायँगे, तब मैं 'श्रीराम'की कृपासे बच जाऊँगा। शायद, वे मुझे देखकर भीतर भीने एकाध वार जा दें। किन्तु हायरे दुर्भाग्य! सारे दिन जी जान लगाकर जो परिश्रम किया, संध्याके बाद उसका कुछ भी पुरस्कार नहीं मिला। घण्टों ग्रीन-रूमके द्वारपर खड़ा रहा 'रामचन्द्र'

* बंगालमें जो दृश्यपट-हीन अभिनय होते हैं, उन्हें 'यात्रा' कहते हैं, जैसे कि यहाँपर रामलीलाय होती हैं।

कितने ही बार आये और गये; किन्तु, उन्होंने मुझे न पहिचाना। एक बार पूछा भी नहीं कि मैं इस तरह खड़ा क्यों हूँ। हायरे अकृतज्ञ राम! क्या रस्सी पकड़वानेका मतलब भी तुम्हारा एकबारगी समाप्त हो गया?

रात्रिके दस बजे नाटककी पहली घण्टी बजी। नितान्त खिन्न चित्तसे, सारे व्यापारके प्रति श्रद्धाहीन होकर, परदेके सामने ही एक जगहपर मैंने दखल जमाया और वहीं बैठ गया। किन्तु थोड़ी ही देरमें सारा रूठना भूल गया। कैसा सुंदर नाटक था! जीवनमें मैंने बहुत-से नाटक देखे हैं, किन्तु वैसा कभी नहीं देखा। मेघनाद स्वयं एक अद्भुत तमाशा था। उसकी छह हाथ ऊँची देह और चार साढे चार हाथ पेटका घेरा था। सभी कहते थे कि यदि यह मर गया तो बैलगाड़ीपर ले जानेके सिवाय और कोई उपाय नहीं। बहुत दिनोंकी बात हो गई। मुझे सारी घटनाका स्मरण नहीं है। किन्तु इतना स्मरण है, कि उसने उस दिन जो विक्रम दिखाया, वह हमारे देशके हारान पलसाई भीमके अभिनयमें सागौनकी डाल कंधेपर रखकर और दाँत किड़मिड़ाकर भी नहीं दिखा सकते।

ड्रॉप सीन उठा। जान पड़ा,—वे लक्ष्मण ही होंगे,—थोड़ा बहुत वीरत्व प्रकाश कर रहे हैं। इसी समय वही मेघनाद कहींसे एक छलाग मारकर सामने आ धमका। सारा स्टेज चरामराकर काँप उठा,—फूट-लाइटके पाँच छः गोले उलटकर बुझ गये,—और साथ ही साथ उसका खुदका पेट बाँधनेका जरीका कमरपट्टा भी तड़ाकसे टूट गया! एक हलचल-सी मच गई। उसे बैठ जानेके लिए कई लोग भयभीत चीत्कार कर उठे, कई लोग सीन ड्राप कर देनेके लिए चिल्ला उठे,—परन्तु बहादुर मेघनाद, किसीकी भी किसी बातसे, विचलित नहीं हुआ। बाएँ हाथके धनुषको फेंककर उसने पाटलूनको थाम लिया और दाहिने हाथसे केवल तीरोंसे ही युद्ध करने लगा।

धन्य वीर! धन्य वीरत्व! मानता हूँ कि मैंने तरह तरहके युद्ध देखे हैं किन्तु हाथमें धनुष नहीं, बाएँ हाथकी अवस्था भी युद्ध-क्षेत्रके लिए अनुकूल नहीं,—फिर भी केवल दाहिने दाथ और सिर्फ तीरोंसे लगातार लड़ाई क्या कभी किसीने देखी है! अन्तमें उसीकी जीत हुई। शत्रुको भागकर आत्म-रक्षा करनी पड़ी।

आनन्दकी सीमा नहीं थी,—मग्न होकर देख रहा था और मन ही मन इस

विचित्र लड़ाईके लिए उसकी शत-कोटि प्रशंसा कर रहा था। ऐसे ही समय पीठके ऊपर एक ऊँगलीका दबाव पड़ा। मुँह घुमाकर देखा तो इन्द्र।

वह धीरेसे बोला, "बाहर आ श्रीकान्त,—जीजी तुझे बुलाती हैं।" बिजलीके द्वारा छू जानेके समान मैं सीधा खड़ा हो गया और बोला "कहाँ हैं वे?"

"बाहर तो आ, कहता हूँ।" रास्तेपर आनेपर वह वह, सिर्फ 'मेरे साथ चल' कहकर, चलने लगा।

गंगाके घाटपर पहुँचकर देखा, उसकी नाव बँधी हुई है—चुपचाप हम दोनों उसपर जा बैठे, इन्द्रने बंधन खोल दिया।

फिर उसी अंधकार-पूर्ण जंगलके रास्तेसे होते हुए दोनों जनें शाहजीकी कुटीमें जा पहुँचे। उस समय, शायद रात्रि अधिक बाकी नहीं थी।

किरासिनका एक दीपक जलाये जीजी बैठी हुई थीं। उनकी गोदमें शाहजीका सिर रक्खा हुआ था और उनके पैरोंके पास एक बड़ा लम्बा काला साँप पड़ा था।

जीजीने कोमल स्वरमें सारी घटना संक्षेपमें कह सुनाई। आज दोपहरको किसीके घरसे साँप पकड़नेका बुलावा आया था। वहाँ इस साँपको पकड़नेमें जो इनाम मिला उससे उसने ताड़ी लेकर पीली और चढ़े नसेमें संध्याके कुछ पहले घर लौटा आया। फिर जीजीके बार बार मना करनेपर भी वह उस साँपको खिलानेके लिए उद्यत हुआ और देरतक खिलाता भी रहा। परन्तु अंतमें, खेलको समाप्त करनेके पहले, जब वह उसे पूँछ पकड़कर हंडीमें बन्द करने लगा तब नशेकी झोकमें आकर ज्यों ही उसके मुखको अपने मुखके पास लाकर, चुम्बन करके, अपना प्यार प्रकट करने गया, त्यों ही उसने भी अपना प्यार व्यक्त करनेको शाहजीके गलेपर तीव्र चुम्बन अंकित कर दिया।

जीजीने अपने मैले आँचलके छोरसे अपनी आँखें पोंछते हुए मुझे लक्ष्य करके कह, " श्रीकान्त, उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ कि अब समय अधिक नहीं है। तब उन्होंने यह कहकर कि " आ रे, अब हम दोनों इस दुनियासे एक साथ ही कूच करें " साँपके सिरको पैरके नीचे दबा लिया और दोनों हाथोंसे उसकी पूँछ खींचकर इतना लम्बा करके फेंक दिया। इसके बाद दोनोंका ही 'खेल' समाप्त हो गया!" इतना कहकर, उन्होंने, हाथसे अत्यंत वेदनाके साथ, शाहजीके मुखके ऊपरका कपड़ा दूर कर दिया और

बहुत सावधानीसे उसके नीले होठोंको अपने हाथसे स्पर्श करके कहा, "जाने दो, अच्छा ही हुआ इन्द्रनाथ, भगवानको मैं तनिक भी दोष नहीं देती।"

हम दोनोंमेंसे किसीसे भी बोलते न बन पड़ा। उस कण्ठ-स्वरमेंसे जो मर्मान्तिक वेदना, जो प्रार्थना, और जो घना अभिमान प्रकाशित हुआ, उसे, जिसने सुना उसके लिए, भूल जाना इस जीवनमें कभी सम्भव नहीं, किन्तु किसके लिए था यह अभिमान! और प्रार्थना भी किसके लिए?

कुछ देर स्थिर रहकर वे बोलीं, "तुम लोग अभी बच्चे हो, किन्तु, दोनोंको छोड़कर मेरा तो कोई और है नहीं भाई; इसीलिए तुमसे भिक्षा माँगती हूँ कि इनका कुछ उपाय कर जाओ।" फिर अंगुलीसे कुटीके दक्षिण ओरके जङ्गलको बताकर कहा, "वहाँपर एक जगह है। इन्द्रनाथ, बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि यदि मैं मर जाऊँ उसी जगह जा सोऊँ। सुबह होते ही उसी जगह ले जाकर इन्हें सुला देना। इस जीवनमें इन्होंने अनेक कष्ट भोगे हैं,—वहाँ कुछ शान्ति पावेंगे।"

इन्द्रने पूछा, "शाहजी क्या कबरमें दफनाये जायँगे।"

जीजी बोलीं, "मुसलमान जब हैं तब कबरमें ही तो दफनाना होगा भाई!"

इन्द्रने पुनः पूछा, "जीजी, क्या तुम भी मुसलमान हो?"

जीजी बोली, "हाँ, मुसलमान नहीं तो और क्या हूँ!"

उत्तर सुनकर इन्द्र भी मानों कुछ संकुचित और कुण्ठित हो उठा। उसके चेहरेके भावसे अच्छी तरह देख पड़ता था कि इस जवाबकी उसने आशा नहीं की थी। जीजीको वह दर असल चाहता था। इसीलिए मन ही मन वह एक गुप्त आशा पोषण कर रहा था कि उसकी जीजी उसीके समाजकी एक स्त्री है। परन्तु मुझे उसके कहनेपर विश्वास नहीं हुआ। खुद उनके मुँहसे स्वीकारोक्ति सुनकर भी मेरे मनमें यह बात न बैठी कि वे हिन्दू-कन्या नहीं हैं।

बाकी रात भी कट गई। इन्द्र निर्दिष्ट स्थानमें जाकर कबर खोद आया और हम तीनों जनोंने ले जाकर शाहजीकी मृत देहको समाहित कर दिया। गंगाजीके ठीक ऊपर, कंकरोंका एक कगारा टूटकर, मानो किसीके ठीक अन्तिम शय्याके लिए ही अपने आप यह जगह बन गई थी। २०–२५ हाथ नीचे ही जाह्नवी मैयाकी धारा थी,—और सिरसे ऊपर वन्य-लताओंका आच्छादन। किसी प्रिय वस्तुको सावधानीसे लुका रखनेके ही लिए मानों यह स्थान बनाया गया था। बड़े ही भाराक्रान्त हृदयसे हम तीनों जने पास ही

पास बैठे,—और एक जन हमारी गोदके ही पास मिट्टीके नीचे चिर-निद्रामें अभिभूत होकर सो गया। तब भी सूर्योदय नहीं हुआ था,—नीचेसे मन्द-स्रोता भागीरथीका कलकल शब्द कानोंमें आने लगा,—सिरके ऊपर, आसपास, वनके पक्षी प्रभाती गाने लगे। कल जो था आज वह नहीं है। कल सुबह क्या यह सोचा था कि आज रात इस तरह बीतेगी ? कौन जानता था कि एक मनुष्यका शेष मुहूर्त इतने निकट आ पहुँचा है !

हठात् जीजी उसकी कबरपर लोट गईं और विदीर्ण कण्ठसे चिल्लाकर रो पड़ीं, "मा गङ्गा, मुझे भी अपने चरणोंमें स्थान दो, मेरे लिए अब और कहीं जगह नहीं है।" उनकी वह प्रार्थना, वह निवेदन, कितना मर्मान्तिक सत्य था यह उस दिन मैं उतनी तीव्रतासे अनुभव नहीं कर सका था जितना कि उसके दो दिन बाद कर सका। इन्द्रने एक बार मेरी ओर आँखें उठाकर देखा, इसके बाद उस आर्त्त नारीके भूलुण्ठित मस्तकको अपनी गोदमें उठा लिया और उसीकी तरह आर्त्त-स्वरमें कहा, "जीजी, तुम मेरे यहाँ चलो,—मेरी माँ अब भी जीती हैं, वे तुम्हें फेंकेंगी नहीं, अपनी गोदमें उठा लेंगी। वे प्रेम-मूर्ति हैं, एक बार चलकर तुम सिर्फ उनके सामने खड़ी भर हो जाना। चलो, तुम हिन्दूहीकी लड़की हो जीजी, मुसलमानिन किसी तरह भी नहीं !"

जीजी कुछ बोलीं नहीं कुछ देर उसी तरह मूर्छिता सी पड़ी रहीं और अन्तमें उठ बैठीं। इसके बाद उठकर हम तीनोंने गङ्गा स्नान किया। जीजीने हाथकी चूड़ियाँ और सुहागकी कण्ठी तोड़कर गंगामें बहा दी। मिट्टीसे मस्तकका सिंदूर पोंछकर, सद्य-विधवाके वेषमें सूर्योदयके साथ ही साथ वे कुटीमें लौट आईं।

इतने दिनों बाद पहले पहल आज उन्होंने कहा कि शाहजी उनका पति था। किन्तु, इन्द्रके मनमें यह बात अच्छी तरह जमकर बैठती ही नहीं थी। संदिग्ध स्वरसे उसने प्रश्न किया, "किन्तु तुम तो हिन्दूकी लड़की हो जीजी ?"

जीजी बोलीं, "हाँ, ब्राह्मणकी लड़की हूँ, और वे भी ब्राह्मण थे।"

इन्द्र कुछ देर अवाक् हो रहा, फिर बोला, "उन्होंने अपनी जात क्यों छोड़ दी ?"

जीजी बोली, "सो बात मैं अच्छी तरह नहीं जानती भाई। किंतु जब उन्होंने अपनी जात खो दी, तो उसके साथ मेरी भी खो गई। स्त्री सह-धर्मिणी जो है ! नहीं तो वैसे मैंने अपने हाथों अपनी जाति भी नहीं छोड़ी,—और किसी दिन किसी तरहका अनाचार भी नहीं किया।"

इन्द्र गाढ़े स्वरमें बोला, "सो तो मैं देखता हूँ जीजी! इसीलिए तो जबतब मेरे मनमें यही बात आती रही है, मुझे माफ करना जीजी!—तुम कैसे यहाँ आ पड़ी, तुम्हारी किस तरह ऐसी दुर्बुद्धि हुई। परंतु अब मैं तुम्हारी कोई बात नहीं मानूँगा, मेरे घर तुम्हें चलना ही पड़ेगा। चलो, इसी वक्त चलो।"

जीजी देरतक चुपचाप मानों कुछ सोचती रहीं, फिर मुँह उठाकर धीरे धीरे बोलीं, "अभी मैं कहीं भी जा नहीं सकूँगी, इन्द्रनाथ।"

"क्यों नहीं जा सकोगी जीजी?"

जीजी बोलीं "मुझे मालूम है कि वे कुछ 'देना' कर गये हैं जबतक उसे चुका न दूँ, तबतक मैं कहीं हिल नहीं सकती।"

इन्द्र हठात् क्रुद्ध हो उठा, बोला, "सो तो मैं भी जानता हूँ। ताड़ीकी दूकानका, गाँजेकी दूकानका ज़रूर कुछ देना होगा; किन्तु उससे तुम्हें क्या? किसकी ताकत है कि तुमसे रुपया माँगे? चलो तुम मेरे साथ, देखूँ कौन रोकता है तुम्हें!"

इतने दुःखमें भी जीजीको कुछ हँसी आ गई। बोलीं, "अरे पागल, मुझे रोकनेवाला मेरा खुदका ही धर्म है। पतिका ऋण मेरा खुदका ही ऋण है और उन लेनेवालोंको तुम किस तरह रोक सकोगे भाई? यह नहीं हो सकता। आज तुम लोग घर जाओ,—मेरे पास जो कुछ थोड़ा-बहुत है, उसे बेच-बाचकर कर्ज चुकानेकी कोशिश करूँगी।—कल परसों फिर किसी दिन आना।"

इतनी देर मैं चुप ही था इस बार बोला, "जीजी, मेरे पास घरमें और भी चार-पाँच रुपये पड़े हैं,—ले आऊँ क्या?" बात पूरी भी न होने पाई थी कि वे उठकर खड़ी हो गईं और छोटे बच्चेकी तरह मुझे अपने छातीसे लगाकर, मेरे मस्तकपर अपने होठ छुआकर, मेरे मुँहकी ओर प्रेमसे देखती हुई बोलीं, "नहीं भइया, और लानेकी जरूरत नहीं है। उस दिन तुम पाँच रुपये रख गये थे, तुम्हारी वह दया मैं मरनेतक याद रखूँगी, भइया! आशीर्वाद दिये जाती हूँ कि भगवान् सदा तुम्हारे हृदयके भीतर बसें और इसी तरह दुखियोंके लिए आँसू बहाते रहें।" बोलते बोलते ही उनकी आँखोंसे झर झर नीर झरने लगा।

करीब आठ नौ बजे हम घर जानेको तैयार हुए। उस दिन वे साथ साथ रास्तेतक पहुँचाने आईं। जाते समय इन्द्रका एक हाथ पकड़कर बोलीं, "इन्द्रनाथ, श्रीकान्तको तो आशीर्वाद दे दिया, किन्तु तुम्हें आशीर्वाद

देनेका साहस मुझमें नहीं है। तुम मनुष्यके आशीर्वादके परे हो। इसलिए मैंने आज मन ही मन तुम्हें भगवान्‌के श्रीचरणोंमें सौंप दिया है। वे तुम्हें अपना लें।"

इन्द्रको उन्होंने पहिचान लिया था। रोकते हुए भी इन्द्रने उनके पैरोंकी धूलि सिरपर लेकर प्रणाम किया और रोते रोते कहा "जीजी, इस जङ्गलमें तुम्हें अकेली छोड़ जानेको मेरा किसी तरह साहस नहीं होता। मनमें न जाने क्यों, ऐसा लगता है कि मैं तुम्हें और न देख पाऊँगा!"

जीजीने इसका कुछ जवाब नहीं दिया, सहसा मुँह फेरकर आँखें पोंछती हुई वे उसी वन-पथसे अपनी शोकसे ढँकी हुई उस शून्य कुटीमें लौट गई। जहाँ तक दिखाई देती रहीं वहाँतक मैं उनकी ओर देखता रहा। किन्तु उन्होंने एकबार भी लौटकर नहीं देखा,—उसी तरह, मस्तक नीचा किये, एक ही भावसे चलती हुई वे दृष्टिसे ओझल हो गई और तब, उन्होंने लौटकर क्यों नहीं देखा, इसे मन ही मन हम दोनों ही जनोंने अनुभव किया।

तीन दिन बाद स्कूलकी छुट्टी होते ही बाहर आकर देखा कि इन्द्रनाथ फाटकके बाहर खड़ा है उसका मुँह अत्यन्त शुष्क हो रहा था, पैरोंमें जूते नहीं थे और वे घुटनोंतक धूलमें भरे हुए थे। उस अत्यन्त दीन चेहरेको देख कर मैं भयभीत हो गया। बड़े आदमीका लड़का था और साधारणतया बाहरसे कुछ शौकीन भी था। ऐसी अवस्था मैंने उसकी कभी नहीं देखा था और मैं समझता हूँ कि और किसीने भी न देखा होगा। इशारा करके मुझे मैदानकी ओर ले जाकर उसने कहा,—"जीजी नहीं हैं,—कहीं चली गई। मेरे मुँहकी ओर आँख उठाकर भी उसने नहीं देखा। बोला, "कलसे कितनी ही जगह जाकर मैं खोज आया हूँ, परन्तु कहीं वे नहीं दिखाई दीं। तेरे लिए वे एक चिट्ठी लिखकर रख गई हैं; यह ले।" इतना कहकर एक मुड़ा हुआ पीला कागज़ मेरे हाथमें थमाकर वह जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ दूसरी ओर चल दिया। जान पड़ा कि हृदय उसका इतना पीड़ित, इतना शोकातुर हो रहा था कि किसीके भी साथ आलोचना करना उसके लिए असाध्य था।

उसी जगह मैं धमसे बैठ गया और घड़ी खोलकर उस कागजको मैंने अपनी आँखोंके सामने रखा। उसमें जो कुछ लिखा था, इतने समय बाद, यद्यपि वह सब याद नहीं रहा है फिर भी बहुत-सी बातें याद कर सकता हूँ।—लिखा था, "श्रीकान्त, जाते समय मैं तुम लोगोंको आशीर्वाद दिये जाती

हूँ। केवल आज ही नहीं, जितने दिन जीऊँगी तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी। किन्तु मेरे लिए तुम दुख मत करना। इन्द्रनाथ मुझे ढूँढ़ता फिरेगा, यह मैं जानती हूँ; किन्तु तुम उसे समझाकर रोकना। मेरी सब बातें तुम आज ही नहीं समझ सकोगे; किन्तु, बड़े होनेपर एक दिन अवश्य समझोगे इस आशासे यह पत्र लिखे जा रही हूँ। अपनी कहानी अपने ही मुँहसे तुमसे कह जा सकती थी, परन्तु न जाने क्यों, नहीं कह सकी;—कहूँ कहूँ सोचते हुए भी न जाने क्यों चुप रह गई। परन्तु, यदि आज न कह सकी तो फिर कभी कहनेका मौका न मिलेगा।

"मेरी कहानी सिर्फ मेरी कहानी नहीं है भाई,—मेरे स्वामीकी कहानी है। और फिर, वह भी कुछ अच्छी कहानी नहीं है। मेरे इस जन्मके पाप कितने हैं, सो तो मैं नहीं जानती; किन्तु पूर्व-जन्मके संचित पापोंकी कोई सीमा परिसीमा नहीं, इसमें जरा भी संदेह नहीं। इसीलिए, जब जब मैंने कहना चाहा है, तब तब मेरे मनमें यही आया है कि, स्त्री होकर, अपने मुँहसे, पतिकी निन्दा करके, उस पापके बोझेको और भी भाराक्रान्त नहीं करूँगी। किन्तु, अब वे परलोक चले गये। और परलोक चले गये इसलिए उसके कहनेमें कोई दोष नहीं है, यह मैं नहीं मानती। फिर भी, न जाने क्यों, अपनी इस अन्तविहीन दुःख-कथाको तुम्हें जनाए बगैर, मैं किसी तरह भी बिदा लेनेमें समर्थ नहीं हो रही हूँ।

"श्रीकान्त, तुम्हारी इस दुःखिनी जीजीका नाम अन्नदा है। पतिका नाम क्यों छिपा रही हूँ, इसका कारण, इस लेखको, शेषपर्यन्त पढ़नेके बाद, मालूम होगा।

"मेरे पिता बड़े आदमी हैं। उनके कोई लड़का नहीं है। हम सिर्फ दो बहिनें थीं। इसीलिए, मेरे पिताने मेरे पतिको एक दरिद्रके घरसे लाकर, अपने पासमें रखकर, पढ़ा-लिखाकर 'आदमी' बनाना चाहा था। वे उन्हें पढ़ा-लिखा तो अवश्य सके, किंतु, 'आदमी' नहीं बना सके। मेरी बड़ी बहिन विधवा होकर घर ही रहती थीं;—उसीकी हत्या करके वे एक दिन लापता हो गये। यह दुष्ट कर्म उन्होंने क्यों किया, इसका हेतु, तुम अभी बच्चे हो, इस लिए न समझ सकोगे, फिर भी किसी दिन जान लोगे। पर कहो तो श्रीकान्त, यह दुःख कितना बड़ा है? यह लज्जा कितनी मर्मान्तिक है? फिर भी तुम्हारी जीजीने सब कुछ सह लिया। किंतु, पति बनकर जिस

अपमानकी अग्निको उन्होंने अपनी स्त्रीके हृदयमें जला दिया था उस ज्वालाको तुम्हारी जीजी आजतक भी बुझा नहीं सकी। पर जाने दो उस बातको!—

"उक्त घटनाके सात वर्ष बाद मैं उन्हें फिर देख पाई। जिस वेशमें तुमने उन्हें देखा था उसी वेशमें वे हमारे घरके सामने साँपका खेल दिखा रहे थे। उन्हें और कोई तो नहीं पहिचान सका, किन्तु मैंने पहिचान लिया। मेरी आँखोंको वे धोखा नहीं दे सके। सुना है कि यह दुःसाहस उन्होंने मेरे लिए ही किया था। परन्तु यह झूठ है। फिर भी, एक दिन गहरी रातमें, खिड़कीका द्वार खोलकर मैंने पतिके लिए ही गृह-त्याग कर दिया। किन्तु सबने यही सुना, यही जाना कि अन्नदा कुलको कलंक लगाकर घरसे निकल गई।

"यह कलङ्कका बोझा मुझे हमेशा ही अपने ऊपर लादे फिरना होगा। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि, पतिके जीवित रहते तो अपने आपको प्रकट नहीं कर सकी,—पिताको पहिचानती थी; वे कभी, किसी तरह भी, अपनी संतानकी हत्या करनेवालेको क्षमा नहीं कर सकते। किन्तु आज यद्यपि वह भय नहीं है,—आज जाकर यह सब हाल उनसे कह सकती हूँ, किन्तु, इसपर, इतने दिनों बाद, कौन विश्वास करेगा? इसलिए पितृ-गृहमें मेरे लिए अब कोई स्थान नहीं है। और फिर, अब मैं मुसलमानिन हूँ।

"यहाँपर पतिका जो कर्ज था वह सब चुक गया है। मैंने अपने पास सोनेकी दो बालियाँ छिपाकर रख छोड़ी थीं, उन्हें आज बेच दिया है। तुम जो पाँच रुपये एक दिन रख गये थे उन्हें मैंने खर्च नहीं किया। बड़े रास्तेके मोड़पर जो मोदीकी दूकान है, उसके मालिकके पास उन्हें रख दिया है,—माँगते ही वे तुम्हें मिल जायँगे। मनमें दुःख मत करना भइया! वे रुपये तो अवश्य मैंने लौटा दिये हैं, किन्तु, तुम्हारे उस कच्चे कोमल छोटेसे हृदयको मैं अपने हृदयमें रक्खे लिये जाती हूँ। और तुम्हारी जीजीका यह एक आदेश है श्रीकान्त, कि तुम लोग मेरी याद करके अपना मन खराब न करना। समझ लेना कि तुम्हारी जीजी जहाँ कहीं भी रहेगी अच्छी ही रहेगी। क्योंकि, दुःख सहन करते करते उसकी यह दशा हो गई है, कि उसके शरीरपर अब किसी भी दुःखका असर नहीं होता। किसी तरह भी उसे व्यथा नहीं पहुँच सकती। मेरे दोनों भाइयो, तुम्हें मैं क्या कहकर आशीर्वाद दूँ, सो मैं ढूँढ़कर भी नहीं पा सकती हूँ। इसीलिए, केवल यही

कहे जाती हूँ कि, भगवान,—यदि पतिव्रता स्त्रीकी बात रखते हैं तो, वे तुम लोगोंकी मैत्री चिर-कालके लिए अक्षय करेंगे।

—तुम्हारी जीजी अन्नदा ”

७

आज मैं अकेला जाकर मोदीके यहाँ खड़ा हो गया। परिचय पाकर मोदीने एक छोटा-सा पुराना चिथड़ा बाहर निकाला और गाँठ खोलकर उसमेंसे दो सोनेकी बालियाँ और पाँच रुपये निकाले। उन्हें मेरे हाथमें देकर वह बोला, “ बहू ये दो बालियाँ मुझे इकतीस रुपयेमें बेचकर शाहजीका समस्त ऋण चुका कर, चली गई हैं। किंतु, कहाँ गई हैं सो नहीं मालूम।” इतना कहकर वह किसका कितना ऋण था इसका हिसाब बतलाकर बोला, “ जाते समय बहूके हाथमें कुछ साढे पाँच आने पैसे थे।” अर्थात् बाईस पैसे लेकर उस निरुपाय निराश्रय स्त्रीने संसारके सुदुर्गम पथमे अकेले यात्रा कर दी है! पीछेसे, उसके ये दोनों प्यारे बालक, कहीं उसे आश्रय देनेके व्यर्थ प्रयासमे, उपायहीन वेदनासे व्यथित न हों, इस भयसे, विना कुछ कहे ही वे विना किसी लक्ष्यके घरसे बाहर चली गई हैं;—कहाँ, सो भी किसीको उन्होंने जानने नहीं दिया। नहीं दिया—इतना ही नहीं, किन्तु मेरे पाँच रुपये भी नहीं स्वीकार किये। फिर भी, मनमें यह समझ कर कि वे उन्होंने ले लिए हैं, मैं आनंद और गर्वसे, न जाने कितने दिनों तक, न जाने कितने आकाश-कुसुमोंकी सृष्टि करता रहा था। पर वे मेरे सब कुसुम शून्यमे मिल गये। अभिमानके मारे आँखोंमें जल छलछला आया, जिसे उस बुड्ढेसे छिपानेके लिए मैं तेजीसे बाहर चल दिया। बार बार मन ही मन कहने लगा कि इन्द्रसे तो उन्होंने कितने ही रुपये लिये, किंतु, मुझसे कुछ भी नहीं लिया,—जाते समय ‘ नहीं ’ कहकर वापिस करके चली गईं!

किंतु अब मेरे मनमे वह अभिमान नहीं है। सयाना होनेपर, अब मैंने समझा है कि मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जो उन्हें दान दे सकता! उस जलती अग्नि-शिखामे जो भी मैं देता वह जलकर खाक हो जाता—इसीलिए, जीजीने मेरा दान वापिस कर दिया। किंतु इंद्र?—इंद्र और मैं क्या एक ही धातुके बने हुए हैं जो जहाँ वह दान करे वहाँ ढीठतासे मैं भी अपना हाथ बढा दूँ? इसके सिवाय, यह भी तो मैं समझ सकता हूँ कि

आखिर किसका मुँह देखकर उन्होंने इन्द्रके आगे हाथ फैलाया था।—खैर जाने दो इन बातोंको।

इसके बाद अनेकों जगह मैं घूमा-फिरा हूँ; किन्तु इन जली आँखोंसे मैं कहीं भी उन्हें नहीं देख पाया। मुझे वे फिर नहीं दिखाई दीं, किन्तु हृदयमें वह हँसता हुआ मुँह हमेशा वैसा ही दीख पड़ता है। उनके चरित्रकी कहानीका स्मरण करके जब कभी, मैं मस्तक झुकाकर मन ही मन उन्हें प्रणाम करता हूँ, तब केवल यही बात मेरे मनमें आती है कि, भगवान्, यह तुम्हारा कैसा न्याय है? हमारे इस सती-सावित्रीके देशमें, तुमने पतिके कारण सहधर्मिणीको अपरिसीम दुःख देकर, सतीके माहात्म्यको उज्ज्वलसे उज्ज्वलतर करके संसारको दिखाया है. यह मैं जानता हूँ। उनके समस्त दुःख दैन्यको चिरस्मरणीय कीर्तिके रूपमें रूपान्तरित करके, जगत्की सम्पूर्ण नारी जातिको कर्तव्यके ध्रुव-पथपर आकर्षित करनेकी तुम्हारी इच्छा है, इसको भी मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ किंतु हमारी ऐसी जीजीके भाग्यमें इतनी बड़ी विडम्बना और अपयश क्यों लिख दिया? किसलिए तुमने ऐसी सतीके मुँहपर असतीकी गहरी काली छाप मारकर उसे हमेशाके लिए संसारसे निर्वासित कर दिया? उनका तुमने क्या नहीं छुड़ा लिया? उनकी जाति छुड़ाई, धर्म छुड़ाया;—समाज, संसार, प्रतिष्ठा, सभी कुछ तो छुड़ा लिया। और जो अपरिमित दुःख तुमने दिया है, उसका तो मैं आज भी साक्षी हूँ।—इसका भी मुझे दुःख नहीं है जगदीश्वर! किंतु जिनका आसन सीता, सावित्री, आदि सतियोंके समीप है, उन्हें उनके मा-बाप, कुटुम्बी, शत्रु-मित्र आदिने किस रूपमें जाना? कुलटा रूपमें, वेश्या रूपमें! —इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ? और संसारको भी क्या मिला?

हाय रे, कहाँ हैं उनके वे सब आत्मीय स्वजन और भाई-बन्धु? यदि एक दफे भी मैं जान सकता, वह देश फिर कितनी ही दूर क्यों न होता, इस देशसे बाहर ही क्यों न होता, तो भी, मैंने वहाँ जाकर अवश्य कहा होता, —यही हैं तुम्हारी अन्नदा और यही उनकी अक्षय कहानी! तुमने अपनी जिस लड़कीको कुल-कलंकिनी मान लिया है, उसका नाम यदि सुबह एक दफे भी ले लिया करोगे तो, अनेक पापोंसे छुट्टी पा जाओगे!

इस घटनासे मैंने एक सत्यको प्राप्त किया है। पहले भी मैं एक दफे कह चुका हूँ कि नारीके कलङ्ककी बातपर मैं सहज ही विश्वास नहीं कर सकता

क्योंकि मुझे जीजी याद आ जाती हैं। यदि उनके भाग्यमे भी इतनी बड़ी बदनामी हो सकती है, तो फिर संसारमे और क्या नहीं हो सकता? एक मैं हूँ, और एक वे हैं जो सर्व कालके सर्व पाप-पुण्यके साक्षी हैं,—इनको छोड़कर दुनियामें ऐसा और कौन है, जो अन्नदाका जरासे स्नेहके साथ भी स्मरण करे! इसीलिए, सोचता हूँ कि न जानते हुए नारीके कलङ्ककी बातपर अविश्वास करके संसारमें ठगा जाना भला है, किन्तु विश्वास करके पापका भागी होना अच्छा नहीं।

उसके बाद बहुत दिनोंतक इन्द्रको नहीं देखा। गंगाके तीर घूमने जाता था तो देखता था कि उसकी नाव किनारे बँधी हुई है। वह पानीमें भीग रही है और धूपमें फट रही है। सिर्फ एक दफे और हम दोनों उस नावपर बैठे थे। उस नौकापर वही हमारी अन्तिम यात्रा थी। इसके बाद न वही उस नावपर चढ़ा और न मैं ही। वह दिन मुझे खूब याद है। सिर्फ इसीलिए नहीं कि वह हमारी नौका-यात्राका समाप्ति-दिवस था, किन्तु, इसलिए कि उस दिन अखण्ड स्वार्थपरताका जो उत्कट दृष्टान्त देखा था, उसे मैं सहजमें नहीं भूल सका। वह कथा भी कहे देता हूँ।

वह कड़ाकेके शीत-कालकी संध्या थी। पिछले दिन पानीका एक अच्छा झला पड़ चुका था, इसलिए जाड़ा सूईकी तरह शरीरमें चुमता था। आकाशमें पूरा चन्द्रमा उगा था। चारों तरफ चाँदनी मानों तैर रही थी। एकाएक इन्द्र आ टपका; बोला, "थिएटर देखने चलेगा?" थिएटरके नामसे मैं एक बारगी उछल पड़ा। इन्द्र बोला, "तो फिर कपड़े पहिनकर शीघ्र हमारे घर आ जा।" पाँच मिनटमे एक रैपर लेकर बाहर निकल पड़ा। उस स्थानको ट्रेनपर जाना होता था। सोचा, घरमे गाड़ी करके स्टेशनपर जाना होगा—इसलिए इतनी जल्दी है।

इन्द्र बोला, "ऐसा नहीं, हम लोग नावपर चलेंगे। मैं निरुत्साहित हो गया, क्योंकि, गङ्गामे नावको उस ओर खेकर ले जाना पड़ेगा, और इसलिए बहुत देरी हो जानेकी सभावना थी। शायद समयपर पहुँचा भी न जा सके। इन्द्र बोला, "हवा तेज है, देर न होगी। हमारे नवीन भइया कलकत्तेसे आये हैं, वे गङ्गासे ही जाना चाहते हैं।"

खैर, डाँड़ लेकर, पाल तानकर ठीक तरह हम लोग नावमे बैठ गये—बहुत देर करके नवीन भइया घाटपर पहुँचे। चन्द्रमाके आलोकमें उन्हें देख

कर मैं तो डर गया। कलकत्तेके भयङ्कर बाबू! रेशमके मोजे, चमचमाते पम्प शू, ऊपरसे नीचेतक ओवरकोटमें लिपटे हुए, गलेमें गुलू-बन्द, हाथमें दस्ताने, सिरपर टोपी,—शीतके विरुद्ध उनकी सावधानीका अन्त नहीं था। हमारी उस साधकी डोंगीको उन्होंने अत्यन्त 'रद्दी' कहकर अपना कठोर मत जाहिर कर दिया; और इन्द्रके कंधेपर भार देकर तथा मेरा हाथ पकड़कर, बड़ी मुश्किलसे, बड़ी सावधानीसे, वे नावके बीचमें जाकर सुशोभित हो गये।

"तेरा नाम क्या है रे?"

डरते डरते मैंने कहा, "श्रीकान्त।"

उन्होंने आक्षेपके साथ मुँह बनाकर कहा, "श्री—कान्त,—सिर्फ 'कान्त' ही काफी है। जा हुक्का तो भर ला। अरे इन्द्र, हुक्का-चिलम कहाँ है? इस छोकरेको दे, तमाखू भर दे!"

—अरे बापरे! कोई अपने नौकरको भी इस तरहकी विकट भाव-भंगीसे आदेश नहीं देता। इन्द्र अप्रतिभ होकर बोला, "श्रीकान्त, तू आकर कुछ देर डाँड़ पकड़ रख। मैं हुक्का भरे देता हूँ।"

उसका जवाब न देकर मैं खुद ही हुक्का भरने लगा। क्योंकि वे इन्द्रके मौसेरे भाई थे, कलकत्तेके रहने वाले थे और हालहीमें उन्होंने एल० ए० पास किया था। परंतु मन मेरा बिगड़ उठा। तमाखू भरकर हुक्का हाथमें देते ही उन्होंने प्रसन्न मुखसे पीते पीते पूछा, "तू कहाँ रहता है रे कान्त? तेरे शरीरपर वह काला काला-सा क्या है रे? रैपर है? अहः रैपरकी क्या ही शोभा है! इसके तेलकी बाससे तो भूत भी भाग जावें! छोकरे,—फैलाकर बिछा तो दे यहाँ उसे, बैठें उसपर।"

"मैं देता हूँ, नवीन भइया, मुझे ठंड नहीं लगती। यह लो," कहकर इन्द्रने अपने शरीरपरकी अलवान चटसे उतारकर फेंक दी। वह उसे मजेसे बिछाकर बैठ गया और आरामसे तमाखू पीने लगा।

शीत ऋतुकी गंगा अधिक चौड़ी नहीं थी,—आध घण्टेमें ही डोंगी उस किनारेसे जा भिड़ी। साथ ही साथ हवा बन्द हो गई।

इन्द्र व्याकुल हो बोला, "नूतन भइया, यह तो बड़ी मुश्किल हुई,—हवा बन्द हो गई। अब तो पाल चलेगा नहीं।"

नूतन भइया बोले, "इस छोकरेके हाथमें दे न, डाँड़ खींचे।"

कलकत्तावासी नूतन भइयाकी जानकारीपर कुछ मलिन हँसी हँसकर इन्द्र

बोला, " डॉइ ! कोई नहीं ले जा सकता नूतन भइया, इस रेतको ठेलकर जाना किसीके लिए भी संभव नहीं। हमें लौटना पड़ेगा। "

प्रस्ताव सुनकर नूतन भइया मुहूर्त-भरके लिए अग्निशर्मा हो उठे, " तो फिर ले क्यों आया हतभागे ? जैसे हो, तुझे वहाँ पहुँचाना ही होगा। मुझे थिएटरमे हारमोनियन बजाना ही होगा,—उनका विशेष आग्रह है। " इन्द्र बोला, " उनके पास बजानेवाले आदमी हैं नूतन भइया, तुम्हारे न जानेसे वे अटके न रहेंगे। "

" अटके न रहेंगे ? इस गँवार देशके छोकरे बजावेंगे हारमोनियम ! चल, जैसे बने वैसे ले चल। " इतना कहकर उन्होंने जिस तरहका मुँह बनाया उससे मेरा सारा शरीर जल उठा। उनका हारमोनियम बजाना भी हमने बादमें सुना, किन्तु वह कैसा था सो बतानेकी जरूरत नहीं।

इन्द्रका संकट अनुभव करके मैं धीरे-से बोला, " इन्द्र क्या रस्सीसे खींचकर ले चलनेसे काम न चलेगा ? " बात पूरी होते न होते मैं चौंक उठा। वे इस तरह दाँत किटकिटा उठे, कि उनका वह मुँह आज भी मुझे याद आ जाता है। बोले, " तो फिर जा न, खींचता क्यों नहीं ज़ानवरकी तरह बैठा क्यों है ? '

इसके बाद एक दफे इन्द्र और एक दफे मैं रस्सी खींचते हुए आगे बढ़ने लगे। कहीं ऊँचे किनारेके ऊपरसे, कहीं नीचे उतरकर, और बीच बीचमें उस बरफ सरीखे ठंडे जलकी धारामें घुसकर, हमें अत्यंत कष्टसे नाव ले चलना पड़ा। और फिर बीच बीचमे बाबूके हुक्केको भरनेके लिए भी नावको रोकना पड़ा। परन्तु बाबू वैसे ही जमकर बैठे रहे,—जरा भी सहायता उन्होंने नहीं की। इन्द्रने एक वार उनसे ' कर्ण ' पकड़नेको कहा तो जवाब दिया कि " मैं दस्ताने खोल कर ऐसी ठण्डमें निमोनिया बुलानेको तैयार नहीं हूँ। " इन्द्रने कहना चाहा " उन्हे खोले बगैर ही... "

" हाँ, कीमती दस्तानोंको मिट्टी कर डालूँ, यही न ! ले—जा, जो करना हो कर। "

वास्तवमें मैंने ऐसे स्वार्थपर असज्जन व्यक्ति जीवनमें थोड़े ही देखे हैं। उनके एक वाहियात शौकको चरितार्थ करनेके लिए हम लोगोंको, जो उनसे उम्रमें बहुत ही छोटे थे, इतना सब क्लेश सहते हुए अपनी आँखों देखकर भी वे जरा विचलित न हुए। कहींसे जरा-सी ठंड लगकर उन्हें बीमार न

कर दे, एक छींटा जल पड़ जानेसे उनका कीमती ओवरकोट खराब न हो जाय, हिलने चलनेमें किसी तरहका व्याघात न हो,—इसी भयसे वे जड़ होकर बैठे रहे और, चिल्लाचिल्लाकर हुक्मोंकी झड़ी लगाते रहे।

और भी एक आफत आई,—गङ्गाकी रुचिकर हवामें बाबू साहबकी भूख भड़क उठी और, देखते ही देखते, अविश्राम बक-झककी चोटोंसे, और भी भीषण हो उठी। इधर चलते चलते रातके दस बज गये हैं,—थिएटर पहुँचते पहुँचते रातके दो बज जायँगे, यह सुनकर बाबूसाहब प्रायः पागल हो उठे। रातके जब ग्यारह बजे तब, कलकत्तेके बाबू बेकाबू होकर बोले "हाँ रे इन्द्र, पासमें कहीं हिंदुस्थानियोंकी कोई बस्ती-अस्ती है कि नहीं? चिउड़ा इउड़ा कुछ मिलेगा?"

इन्द्र बोला, "सामने ही एक खूब बड़ी बस्ती है नूतन भइया, सब चीज़ें मिलती हैं।"

"तो फिर चला चल,—अरे छोकरे,—जरा खींच न जोरसे,—क्या खानेको नहीं पाता? इन्द्र, बोल न तेरे इस साथीसे, थोड़ा और जोर करके खींच ले चले।"

इन्द्रने अथवा मैंने किसीने इसका जवाब नहीं दिया। जिस तरह चल रहे थे उसी तरह चलते हुए हम थोड़ी देरमें एक गाँवके पास जा पहुँचे। यहाँपर किनारा ढालू और विस्तृत होता हुआ जलमें मिल गया था। नावको बलपूर्वक धक्का देकर, उथले पानीमें करके, हम दोनोंने एक आरामकी साँस ली।

बाबू साहब बोले, "हाथ-पैर कुछ सीधे करना होगा। उतरना चाहता हूँ।" अतएव इन्द्रने उन्हें कंधेपर उठाकर नीचे उतार दिया। वे ज्योत्स्नाके आलोकमें गंगाकी शुभ्र रेतीपर चहलकदमी करने लगे।

हम दोनों जनें उनकी क्षुधा-शांतिके उद्देशसे गाँवके भीतर घुसे। यद्यपि हम लोग जानते थे कि इतनी रातको इस दरिद्र खेड़ेमें आहार-संग्रह करना सहज काम नहीं है तथापि चेष्टा किये बगैर भी निस्तार नहीं था। इसपर, अकेले रहनेकी भी उनकी इच्छा नहीं थी। इस इच्छाके प्रकाशित होते ही इन्द्र उसी दम आह्वान करके बोला, "नवीन भइया, अकेले तुम्हें डर लगेगा,—हमारे साथ थोड़ा घूमना भी हो जायगा। यहाँ कोई चोर-ओर नहीं है, नाव कोई नहीं ले जायगा। चले न चलो?"

नवीन भइया अपने मुँहको कुछ विकृत करके बोले, " डर! हम लोग दर्जी-पाड़के लड़के हैं,—यमराजसे भी नहीं डरते—यह जानते हो? फिर भी नीच लोगोंकी डर्टी (गंदी) बस्तीमें हम नहीं जाते। सालोंके शरीरकी बू यदि नाकमें चली जाय तो हमारी तबीयत खराब हो जाय।" वास्तवमें उनका मनोगत अभिप्राय यह था कि मैं उनके पहरेपर नियुक्त होकर उनका हुक्का भरता रहूँ।

किन्तु उनके व्यवहारसे मन ही मन मैं इतना नाराज हो गया था कि, इन्द्रके इशारा करनेपर भी, मैं किसी तरह, इस आदमीके संसर्गमे, अकेले रहनेको राजी नहीं हुआ। इन्द्रके साथ ही चल दिया।

दर्जीपाड़के बाबू साहबने हाथ-ताली देते हुए गाना शुरू कर दिया।

हम लोगोंको बहुत दूरतक नाकके स्वरकी उनकी जनानी तान सुनाई देती रही। इन्द्र खुद भी मन ही मन अपने भाईके व्यवहारसे अतिशय लज्जित और क्षुब्ध हो गया था। धीरेसे बोला, " ये कलकत्तेके आदमी ठहरे, हमारी तरह हवा-पानी सहन नहीं कर सकते,—समझे न श्रीकान्त?"

मैं बोला " हूँ।"

तब इन्द्र उनकी असाधारण विद्या बुद्धिका परिचय, शायद मेरी श्रद्धा आकर्षित करनेके लिए ही, देते हुए चलने लगा। बातचीतमें यह भी उसने कहा कि वे थोड़े ही दिनोंमें बी० ए० पास करके डिप्टी हो जायँगे। जो हो, अब इतने दिनोंके बाद भी इस समय वे कहाँके डिप्टी हैं अथवा उन्हें वह पद प्राप्त हुआ या नहीं, मुझे नहीं मालूम। परन्तु, जान पड़ता है कि वे डिप्टी अवश्य हो गये होंगे, नहीं तो बीच बीचमे बंगाली डिप्टियोंकी इतनी सुख्याति कैसे सुन पड़ती? उस समय उनका प्रथम यौवन था। सुनते हैं, जीवनके इस कालमें हृदयकी प्रशस्तता, समवेदनाकी व्यापकता, जितनी बढ़ती है उतनी और किसी समय नहीं। लेकिन, इन कुछ घण्टोंके संसर्गमें ही जो नमूना उन्होंने दिखाया इतने समयके अन्तरके बाद भी वह भुलाया नहीं जा सका। फिर भी, भाग्यसे ऐसे नमूने कभी कभी दिखाई पड़ते हैं;—नहीं तो, बहुत पहले ही यह संसार बाकायदा पुलिस थानेके रूपमें परिणत हो जाता। पर रहने दो अब इस बातको।

परन्तु, पाठकोंको यह खबर देना आवश्यक है कि भगवान् भी उनपर क्रुद्ध हो गये थे। इस तरफके राह-घाट, दूकान-हाट, सब इन्द्रके जाने हुए थे। वह जाकर मोदीकी दूकानपर उपस्थित हुआ। परन्तु, दूकान बन्द थी और

दूकानदार ठंडके भयसे दरवाजे-खिड़कियाँ बन्द करके गहरी निद्रामें मग्न था। नींदकी वह गहराई कितनी अथाह होती है, सो उन लोगोंको लिखकर नहीं बताई जा सकती जिन्हें खुद इसका अनुभव न हो। ये लोग न तो अम्ल-रोगी निष्कर्मा जमींदार हैं और न बहुत भारसे दबे हुए, कन्याके दहेजकी फिक्रसे ग्रस्त बङ्गाली गृहस्थ। इसलिए सोना जानते हैं। दिनभर घोर परिश्रम करनेके उपरांत, रातको ज्यों ही उन्होंने चारपाई ग्रहण की कि फिर, घरमें आग लगाये बगैर, सिर्फ चिल्लाकर या दरवाजा खटखटाकर उन्हें जगा दूँगा,—ऐसी प्रतिज्ञा यदि स्वयं सत्यवादी अर्जुन भी, जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञाके बदले, कर बैठते तो, यह बात कसम खाके कही जा सकती है कि, उन्हें भी मिथ्याप्रतिज्ञाके पापसे दग्ध होकर मर जाना पड़ता।

हम दोनों जनें बाहर खड़े होकर तीव्र कण्ठसे चीत्कार करके, तथा जितने भी कूट-कौशल मनुष्यके दिमागमें आ सकते हैं उन सबको एक एक करके आजमा करके, आध घण्टे बाद खाली हाथ लौट आये। परन्तु, घाटपर आकर देखा तो वह जन-शून्य है। चाँदनीमें जहाँतक नज़र दौड़ती थी वहाँ तक कोई भी नहीं दिखता। 'दर्जीपाड़े' का कहीं कोई निशान भी नहीं। नाव जैसी थी वैसी ही पड़ी हुई है।—फिर बाबू साहब गये कहाँ? हम दोनों प्राणपणसे चीत्कार कर उठे,—'नवीन भइया!' किन्तु कहीं कोई नहीं। हम लोगोंकी व्याकुल पुकार, बाईं ओर दाहिनी बाजूके खूब ऊँचे कगारोंसे टकराकर, अस्पष्ट होती हुई, बार बार लौटने लगी। आसपासके उस प्रदेशमें, शीतकालमें, बीच बीचमें बाघोंके आनेकी बात भी सुनी जाती थी। गृहस्थ किसान इन दलबद्ध बाघोंकी विपत्तिसे व्यस्त रहते थे। सहसा इन्द्र इसी बातको कह बैठा,—"कहीं बाघ तो नहीं उठा ले गया रे!" भयके मारे मेरे रोंगटे खड़े हो गये—यह क्या कहते हो? इसके पहले उनके निरतिशय अभद्र व्यवहारसे मैं नाराज तो सचमुच ही हो उठा था परन्तु, इतना बड़ा अभिशाप तो मैंने उन्हें नहीं दिया था!

सहसा दोनों जनोंकी नजर पड़ी कि कुछ दूर बालूके ऊपर कोई वस्तु चांदनीमें चमचमा रही है। पासमें जाकर देखा तो उन्हींके बहुमूल्य पम्प शूकी एक फर्द है! इन्द्र भीगी बालूपर लोट गया—"हाय श्रीकान्त! साथमें मेरी मौसी भी तो आई हैं! अब मैं घर लौटकर न जाऊँगा!" तब धीरे धीरे सब बात स्पष्ट होने लगी। जिस समय हम लोग मोदीकी दुकानपर

जाकर उसे जगानेका व्यर्थ प्रयास कर रहे थे, उसी समय, इस तरफ कुत्तोंका झुण्ड इकट्ठा होकर आर्त्तचीत्कार करके इस दुर्घटनाकी खबर हमारे कर्ण-गोचकर करनेके लिए व्यर्थ मेहनत उठा रहा था, यह बात अब जलकी तरह हमारी आँखोंके आगे स्पष्ट हो गई। अब भी हमें दूरपर कुत्तोंका भूँकना सुन पड़ता था। अतएव जरा भी संशय नहीं रहा कि बाघ उन्हे खींच ले जाकर जिस जगह भोजन कर रहे हैं, वहीं आसपास खड़े होकर ये कुत्ते भी अब तक भूँक रहे हैं।

अकस्मात् इन्द्र सीधा होकर खड़ा हो गया और बोला "मैं वहाँ जाऊँगा।" मैंने डरकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "पागल हो गये हो भइया!" इन्द्रने इसका कुछ जवाब नहीं दिया। नावपर जाकर उसने कंधेपर लग्गी रख ली, एक बडी लम्बी छुरी खीसेमेसे निकालकर बायें हाथमें ले ली और कहा—"तू यहीं रह श्रीकान्त, मै न आऊँ तो लौटकर मेरे घर खबर लगा देना—मैं चलता हूँ।"

उसका मुँह बिल्कुल सफेद पड़ गया था, किन्तु दोनों आँखे जल रही थीं मैं उसे अच्छी तरह चीन्हता था। यह उसकी निरर्थक, खाली उछलकूद नहीं थी कि हाथ पकड़ कर दो-चार भयकी बातें कहनेसे ही, मिथ्या दम्भ मिथ्यामें मिल जायगा। मैं निश्चयसे जानता था कि किसी तरह भी वह रोका नहीं जा सकता,—वह जरूर जायगा। भयसे जो चिर अपरिचित हो, उसे किस तरह और क्या कहकर रोका जाता? जब वह बिल्कुल जाने ही लगा तो मैं भी न ठहर सका; मैं भी, जो कुछ मिला, हाथमे लेकर उसके पीछे पीछे चल दिया। इस बार इन्द्रने मुख फेरकर मेरा एक हाथ पकड़ लिया और कहा, "तू पागल हो गया है श्रीकान्त? तेरा क्या दोष है? तू क्यों जायगा?"

उसका कण्ठ-स्वर सुनकर मेरी आँखोंमे एक मुहूर्तमे ही जल भर आया। किसी तरह उसे छिपा कर बोला, तुम्हारा ही भला, क्या दोष है इन्द्र? तुम ही क्यों जाते हो?"

जवाबमें इन्द्रने मेरे हाथसे बाँस छीनकर नावमें फेंक दिया और कहा, "मेरा भी कुछ दोष नहीं है भाई, मैं भी नवीन भइयाको लाना नहीं चाहता था। परंतु, अब अकेले लौटा भी नहीं जा सकता, मुझे तो जाना ही होगा।"

परतु मुझे भी तो जाना चाहिए। क्योंकि, पहले ही एक दफे कह चुका हूँ कि मैं स्वयं भी बिल्कुल डरपोंक न था। अतएव बाँसको फिर उठाकर

मैं खड़ा हो गया और वाद-विवाद किये बगैर ही हम दोनों आगे चल दिये। इन्द्र बोला, बालूपर दौड़ा नहीं जा सकता,—खबरदार, दौड़नेकी कोशिश न करना। नहीं तो, पानीमें जा गिरेगा।"

सामने ही एक बालूका टीला था। उसे पार करते ही दीख पड़ा, बहुत दूरपर पानीके किनारे छह सात कुत्ते खड़े भूंक रहे हैं। जहाँ तक नजर गई वहाँ तक थोड़ेसे कुत्तोंको छोड़कर, बाघ तो क्या, कोई शृगाल भी नहीं दिखाई दिया। सावधानीसे कुछ देर और अग्रसर होते ही जान पड़ा कि कोई एक काली-सी वस्तु पानीमें पड़ी है और वे उसका पहरा दे रहे हैं। इन्द्र चिल्ला उठा, "नूतन भइया!"

नूतन भइया गलेतक पानीमें खड़े हुए अस्पष्ट स्वरसे रो पड़े—"यहाँ हूँ मैं!"

हम दोनों प्राणपणसे दौड़ पड़े, कुत्ते हटकर खड़े हो गये, और इन्द्र झपसे कूदकर गलेतक डूबे हुए मूर्छित-प्राय अपने दर्जीपाड़ेके मौसेरे भाईको खींचकर किनारेपर उठा लाया। उस समय भी उनके एक पैरमें बहुमूल्य पम्प शू, शरीरपर ओवरकोट, हाथमें दस्तानें, गलेमें गुलूबन्द और सिरपर टोपी थी; भीगनेके कारण फूलकर वे ढोल हो गये थे! हमारे जानेपर उन्होंने हाथ-ताली देकर जो बढ़िया तान छेड़ दी थी, बहुत संभव है, उसी संगीतकी तानसे आकृष्ट होकर, गाँवके कुत्ते दल बाँधकर वहाँ आ उपस्थित हुए थे! और इस अश्रुतपूर्व गीत और अदृष्टपूर्व पोशाककी छटासे विभ्रान्त होकर इस महामान्य व्यक्तिके पीछे पड़ गये थे। पीछा छुड़ानेके लिए इतनी दूर भागनेपर भी आत्म-रक्षाका और कोई उपाय न खोज सकनेके कारण अन्तमें वे झप-से पानीमें कूद पड़े; और इस दुर्दान्त शीतकी रातमें, तुषार-शीतल जलमें, आधे घण्टे गले तक डूबे रहकर अपने पूर्वकृत पापोंका प्रायश्चित्त करते रहे। किन्तु, प्रायश्चित्तके संकटको दूर करके उन्हें फिरसे चंगा करनेमें भी हमें कम मेहनत नहीं उठानी पड़ी। परन्तु, सबसे बढ़कर अचरजकी बात यह हुई कि बाबू साहबने सूखेमें पैर रखते ही पहली बात यही पूछी, "हमारा एक पम्प शू कहाँ गया?"

'वह वहाँ पड़ा हुआ है,' यह सुनते ही वे सारे दुःख क्लेश भूलकर उसे शीघ्र ही उठा लेनेके लिए सीधे खड़े हो गये। इसके बाद, कोटके लिए, गुलूबन्दके लिए, मोजोंके लिए, दस्तानोंके लिए, पारी पारीसे एक-एकके लिए

शोक प्रकाशित करने लगे और उस रातको जबतक हम लोग लौटकर अपने घाटपर नहीं पहुँच गये, तबतक यही कहकर हमारा तिरस्कार करते रहे कि क्यों हमने मूर्खोंकी तरह उनके शरीरसे उन सब चीजोंकी जल्दी जल्दी उतार डाला था। न उतारा होता तो इस तरह धूल लगकर वे मिट्टी न हो जाते। हम दोनों असभ्य लोगोंमें रहनेवाले ग्रामीण किसान हैं, हम लोगोंने इन चीज़ोंको पहले कभी आँखसे देखा तक नहीं होगा,—यह सब वे बराबर कहते रहे। जिस देहपर, इसके पहले, एक छींटा भी जल गिरनेसे वे व्याकुल हो उठते थे, कपड़े-लत्तोंके शोकमें वे उस देहको भी भूल गये। उपलक्ष्य वस्तु असल वस्तुसे भी किस तरह कई गुनी अधिक होकर उसे पार कर जाती है, यह बात, यदि इन जैसे लोगोंके संसर्गमें न आया जाय तो, इस तरह प्रत्यक्ष नहीं हो सकती।

रातको दो बजे बाद हमारी डोंगी घाटपर आ लगी। मेरे जिस रैपरकी विकट बूसे कलकत्तेके बाबू साहब, इसके पहले, बेहोश हुए जाते थे, उसीको अपने शरीरपर डालकर, उसीकी अविश्रान्त निन्दा करते हुए, तथा—पैर पोंछनेमें भी घृणा होती है,—यह बार बार सुनाते हुए भी इन्द्रकी अलवान ओढ़कर, उस यात्रामें आत्म-रक्षा करते हुए घर गये। कुछ भी हो, हम लोगोंपर दया करके जो वे व्याघ्र-कवलित न हुए बगैर सशरीर वापिस लौट आये, उनके इसी अनुग्रहके आनन्दसे हम परिपूर्ण हो रहे थे। इतने उपद्रव-अत्याचारको हँसते हुए सहन करके और आज नावपर चढ़नेके शौककी परिसमाप्ति करके, उस दुर्जय शीतकी रातमें, केवल एक धोती-भरका सहारा लिए हुए, काँपते काँपते, हम लोग घर लौट आये।

८

लिखने बैठते ही बहुत दफे मैं आश्चर्यसे सोचता हूँ कि इस तरहकी बेसिलसिले घटनाएँ मेरे मनमें निपुणतासे किसने सजा रक्खी हैं? जिस ढँगसे मैं लिख रहा हूँ उस ढँगसे वे एकके बाद एक शृंखलाबद्ध तो घटित हुई नहीं। और फिर साँकलकी क्या सभी कड़ियाँ साबुत बनी हुई हैं? सो भी नहीं। मुझे मालूम है कि कितनी ही घटनाएँ तो विस्मृत हो चुकी हैं,

किन्तु फिर भी तो शृंखला नहीं टूटती। तो कौन फिर उन्हें नूतन करके जोड़ रखता है?

और भी एक अचरजकी बात है। पण्डित लोग कहा करते हैं कि बड़ोंके बोझसे छोटे पिस जाते हैं। परन्तु यदि ऐसा ही होता तो फिर जीवनकी प्रधान और मुख्य घटनाएँ तो अवश्य ही याद रहनेकी चीज़ें होतीं। परन्तु सो भी तो नहीं देखता हूँ। बचपनकी बातें कहते समय एकाएक मैंने देखा कि स्मृति-मन्दिरमें बहुत-सी तुच्छ क्षुद्र घटनाएँ भी, न जाने कैसे, बहुत बड़ी होकर ठाठसे बैठ गई हैं और बड़ी घटनाएँ छोटी बनकर न जाने कब कहाँ झड़कर गिर गई हैं। इस लिए बोलते समय भी यही बात चरितार्थ होती है। तुच्छ बातें बड़ी होकर दिखाई देती हैं, और बड़ी याद भी नहीं आतीं। और फिर ऐसा क्यों होता है इसकी कैफ़ियत भी पाठकोंको मैं नहीं दे सकता। जो होता है, सिर्फ उसे ही मैंने बता दिया है।

इसी प्रकारकी एक तुच्छ-सी बात है जो मनके भीतर इतने दिनों तक चुपचाप छिपी रहकर, इतनी बड़ी हो उठी है कि आज उसका पता पाकर मैं स्वयं भी बहुत विस्मित हो रहा हूँ। उसी बातको आज मैं पाठकोंको सुनाऊँगा। किन्तु, बात ठीक ठीक क्या है सो, जबतक कि मैं उसका पूरा परिचय न दे दूँ तबतक, उसका रूप किसी तरह भी स्पष्ट न होगा। क्योंकि, यदि मैं प्रारंभमें ही कह दूँ कि वह एक 'प्रेमका इतिहास' है,—तो, उससे यद्यपि मिथ्या भाषणका पाप न होगा, किन्तु वह व्यापार अपनी चेष्टासे जितना बड़ा हो उठा है, मेरी भाषा शायद उसको भी उल्लंघन कर जायगी। इसलिए बहुत ही सावधान होकर कहनेकी जरूरत है।

वह बहुत बादकी बात है। जीजीकी स्मृति भी उस समय धुँधली हो गई थी। जिनके मुखकी याद मनमें लाते ही, न मालूम कैसे, प्रथम यौवनकी उच्छृंखलता अपने आप अपना सिर झुका लेती है, उन जीजीकी याद उस समय उस तरह नहीं आती थी। यह उसी समयकी कहानी है। एक राजाके लड़केके द्वारा निमंत्रित होकर मैं उसकी शिकार-पार्टीमें जाकर शामिल हुआ था। उसके साथ बहुत समयतक स्कूलमें पढ़ा था, गुप चुप अनेक बार उसके गणितके सवाल हल कर दिये थे,—इसीलिए वह मुझे खूब चाहता था। इसके बाद एन्ट्रेन्स क्लाससे हम दोनों अलग हो गये। मैं जानता हूँ कि राजाओंके लड़कोंकी स्मरण-शक्ति कम हुआ करती है, किन्तु यह नहीं सोचा था

कि वह मेरा स्मरण करके पत्र-व्यवहार करना शुरू कर देगा। बीचमे एक दिन उससे एकाएक मुलाकात हो गई। उसी समय वह बालिग हुआ था। बहुत-से जमा किये हुए रुपये उसके हाथ लगे और उसके बाद...इत्यादि इत्यादि। राजाके कानोंमें बात पहुँची,—अतिरंजित होकर ही पहुँची, कि राईफल चलानेमें मैं बेजोड़ हूँ, तथा और भी कितने ही तरहके गुणोंसे मैं, इस बीचमे ही, मण्डित हो गया हूँ कि जिनसे मैं एकमात्र बालिग राजपुत्रका अंतरग मित्र होनेके लिए सर्वथा योग्य हूँ। आत्मीय बंधु बांधव तो अपने आदमीकी प्रशंसा कुछ बढाकर ही करते हैं, नहीं तो सचमुच ही, इतनी विद्याएँ इतने अधिक परिमाणमें मैं उस छोटी-सी उम्रमें ही अर्जित करनेमें समर्थ हो गया था; यह अहंकार मुझे शोभा नहीं देता। कमसे कम कुछ विनय रखना अच्छा है। खैर, जाने दो इस बातको। शास्त्रकारोंने कहा है कि राजे-रजवाड़ोंके सादर आह्वानकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हिन्दूका लड़का ठहरा, शास्त्र अमान्य तो कर नहीं सकता था, इसलिए मै चला गया। स्टेशनसे दस बाहर कोस हाथीपर बैठकर गया। देखा, बेशक राजपुत्रके बालिग होनेके सब लक्षण मौजूद हैं! कोई पॉच तम्बू गड़े हुए हैं, एक स्वयं उनका, एक मित्रोंका, एक नौकरोंका और एक रसोईका। इनके सिवाय और एक तंबू कुछ फासलेपर था,—उसके दो हिस्से करके उनमें दो वेश्याये और उनके साजिन्दे अड्डा जमाये हैं।

सन्ध्या हो चुकी है। प्रवेश करते ही मैं जान गया कि राजकुमारके खास कमरेमें बहुत देरसे संगीतकी बैठक जमी हुई है। राजकुमारने बड़े आदरसे मेरा स्वागत किया। यहॉतक कि, आदरके अतिरेकसे खड़े होनेको तैयार होकर वे तकियेके सहारे लेट गये! मित्र-दोस्त, विह्वल कल-कण्ठसे आइए, आइए, पधारिए, कहकर संवर्धना करने लगे। मैं सर्वथा अपरिचित था। किन्तु वह, उन लोगोंकी जो अवस्था थी, उससे अपरिचयके कारण रुकनेवाली नहीं थी।

ये 'बाईजी' पटनेसे, बहुत-सा रुपया पानेकी शर्तपर, दो सप्ताहके लिए आई थीं। इस काममे राजकुमारने जिस विवेचना और विचक्षणताका परिचय दिया था उसकी तारीफ तो करनी ही होगी। बाईजी खूब सुन्दर, सुकण्ठ और गानेमें निपुण थीं।

मेरे प्रवेश करते ही गाना थम गया। इसके बाद समयोचित वार्तालाप

और अदब-कायदेका कार्य समाप्त होनेमें भी कुछ समय चला गया। राजकुमारने अनुग्रह करके मुझसे गानेकी फरमाइश करनेका अनुरोध किया। राजाज्ञा पाकर पहले तो मैं अत्यन्त कुण्ठित हो उठा, किन्तु थोड़ी ही देरमें मालूम हो गया कि, संगीतकी उस मजलिसमें, सिर्फ मैं ही कुछ धुँधला-सा देख सकता हूँ और सब ही छछूँदरके माफिक अन्धे हैं।

बाईजी खिल उठीं। पैसेके लोभसे बहुत-से काम किये जा सकते हैं सो मैं जानता था; किन्तु, इन निराट मूर्खोंके दरबारमें वीणा बजाना वास्तवमें ही इतनी देरतक, उसे बड़ा कठिन मालूम हो रहा था। इस दफे एक समझदार व्यक्ति पाकर मानों वे बच गईं। इसके बाद, रातको देर तक, मानों केवल मेरे लिए ही, उन्होंने अपनी समस्त विद्या, समस्त सौंदर्य और कण्ठके समस्त माधुर्यमें हमारे चारों तरफकी उस समस्त कदर्य मदोन्मत्तताको डुबा दिया और अन्तमें वे स्तब्ध हो गईं।

बाईजी पटनेकी रहनेवाली थीं। नाम था 'प्यारी'। उस रात्रिको उन्होंने जिस तरह अपनी सारी शक्ति लगाकर गाना सुनाया उस तरह शायद पहले कभी नहीं सुनाया होगा। मैं तो मुग्ध हो गया था। गाना बन्द होते ही मेरे मुँहसे केवल यही निकला—"वाह, खूब!"

प्यारीने मुँह नीचा करके हँस दिया। इसके बाद दोनों हाथोंको मस्तकपर लगाकर प्रणाम किया,—सलाम नहीं। मजलिस उस रातके लिए, खत्म हो गई।

उस समय दर्शकोंमें कोई सो रहा था, कोई तन्द्रामें था और अधिकांश बेहोश थे। अपने तम्बूमें जानेके लिए बाईजी जब सदलबल बाहर निकल रही थीं, तब मैं आनंदके अतिरेकसे हिन्दीमें बोल उठा,—"बाईजी, मेरा बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारा गाना रोज दो सप्ताहतक सुननेको मिलेगा।" बाईजी पहले तो ठिठककर खड़ी हो रहीं, पर दूसरे ही क्षण कुछ नजदीक आकर अत्यंत कोमल कण्ठसे परिष्कृत बंगलामें बोलीं, "रुपये लिए हैं, सो मुझे तो गाना ही पड़ेगा; परंतु क्या आप भी इन पन्द्रह सोलह दिनोंतक इनकी मुसाहबी करते रहेंगे? जाइए, कल ही आप अपने घर चले जाइए।"

यह बात सुनकर हतबुद्धि-सा होकर मैं मानों काठ हो गया और क्या जवाब दूँ, यह ठीक कर सकनेके पहले ही देखा कि बाईजी तम्बूके बाहर हो गई हैं।

सुबह शोर-गुल मचाकर कुमार साहब शिकारके लिए बाहर निकले। मद्य-मांसकी तैयारी ही सबसे अधिक थी। साथमें दस-बारह शिकारी नौकर थे।

पन्द्रह बन्दूकें थीं—जिनमें छः राइफलें थीं। स्थान था एक अधसूखी नदीके दोनों किनारे। इस पार गाँव था और उस पार रेतका टीला। इस पार कोस-मरतक बड़े बड़े सेमरके वृक्ष थे और उसपार रेतीके ऊपर जगह जगह कास और कुशाके झुरमुट। यहाँ ही उन पन्द्रह बन्दूकोंको लेकर शिकार किया जायगा। सेमरके वृक्षोंपर मुझे कुछ कबूतरकी जातिके पक्षी दीख पड़े और अधसूखी नदीके मोड़के पास दो चकवा-चकई तैर रहे हैं ऐसी जान पड़ा।

कौन किस ओर जाय, इस बातपर अत्यन्त उत्साहसे परामर्श करते करते, सब ही ने दो दो प्याले चढाकर देह और मनको वीरोंकी तरह कर लिया। मैंने बन्दूक नीचे रख दी। एक तो बाईजीके व्यंगकी चोट खाकर रातसे ही मन विकल हो रहा था, उसपर यह शिकारका क्षेत्र देखकर तो सारा शरीर जल उठा।

कुमारने पूछा, "क्यों जी कान्त, तुम तो बड़े गुम सुम हो रहे हो? अरे यह क्या! बन्दूक ही रख दी!"

"मैं पक्षियोंको नहीं मारता।"

"यह क्या जी? क्यों, क्यों?"

"मुँहपर रेख निकालनेके बादसे मैंने छरेंवाली बन्दूक नहीं चलाई,—मैं उसे चलाना भूल गया हूँ।"

कुमार साहब हँसते हँसते लोट-पोट हो गये। किन्तु उस हँसीका द्रव्य-गुणसे कितना सम्बन्ध था, यह बात अवश्य दूसरी है।

सरजूका आँख-मुँह लाल हो उठा। वे इस दलके प्रधान शिकारी और राजपुत्रके प्रिय पार्श्वचर थे। उनके अचूक निशानेकी ख्याति मैंने आते ही सुन ली थी। वे रुष्ट होकर बोले, "चिड़ियोंकी शिकार क्या कुछ शर्मकी बात है?"

मेरा मिजाज भी ठिकाने नहीं था, इसलिए जवाब दिया, "सबके लिए नहीं, परन्तु मेरे लिए तो है!— खैर, कुमार साहब, मेरी तबीयत ठीक नहीं है," कहकर मैं तम्बूमें लौट आया। इसपर कौन हँसा, किसने आँखें मिचकाईं, किसने मुँह बनाया, सो मैंने नजर उठाकर भी नहीं देखा।

तम्बूमें लौटकर मैं फर्शपर चित लेटा ही था और एक प्याला चाह तैयार करनेका आदेश देकर एक सिगरेट पी ही रहा था कि बैरेने आकर अदबके साथ कहा, "बाईजी आपसे मिलना चाहती हैं।" ठीक इसी बातकी मैं आशा कर रहा था और आशंका भी। पूछा, "क्यों मिलना चाहती हैं?"

"सो तो मैं नहीं जानता।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं बाईजीका खानसामा हूँ।"

"बंगाली हो ?"

"जी हाँ, जातिका नाई हूँ। नाम मेरा रतन है।"

"बाईजी हिन्दू हैं ?"

रतन हँसकर बोला, "न होतीं तो मैं कैसे रहता बाबू ?"

मुझे साथ ले जाकर और तम्बूका दरवाजा दिखाकर रतन चला गया। पर्दा उठाकर भीतर देखा कि बाईजी अकेली बैठी हुई प्रतीक्षा कर रही हैं। कल रातको पेशवाज और ओढ़नीके कारण मैं ठीक तौरसे पहिचान न सका था; परन्तु आज देखते ही पहिचान लिया कि हो कोई; पर बाईजी हैं बंगालीकी ही लड़की। बाईजी गरदकी साड़ी पहिने हुए मूल्यवान् कार्पेटके ऊपर बैठी थीं। भीगे हुए बिखरे बाल पीठके ऊपर फैल रहे थे। हाथोंके पास पान-दान रक्खा था और सामने हुक्का। मुझे देखकर उठ खड़ी हुई और हँसकर सामनेका आसन दिखाते हुए बोलीं, "बैठिए। आपके सामने अब और तमाखू नहीं पीऊँगी,—अरे रतन, हुक्का उठा ले जा। यह क्या, खड़े क्यों हैं, बैठ जाइए न ?"

रतन आकर हुक्का ले गया। बाईजी बोलीं, "आप तमाखू पीते हैं यह मैं जानती हूँ; किन्तु दूँ किस तरह ? और जगह आप चाहे जो करें, किन्तु मैं जान-बूझकर तो आपको अपना हुक्का दे न सकूँगी। अच्छा, चुरुट लाये देती हूँ। अरे ओ—"

"ठहरो, ठहरो, जरूरत नहीं। मेरी जेबमें ही चुरुट है।"

"है ? अच्छा तो ठण्डे होकर जरा बैठ जाइए, बहुत-सी बातें करनी हैं। भगवान् कब किससे मिला देते हैं सो कोई नहीं कह सकता, यह स्वप्नके भी अगोचर है।—शिकारके लिए गये थे, एकाएक लौट क्यों आये ?"

"तबीयत न लगी"

"न लगनेकी ही बात है कैसी निष्ठुर है। यह पुरुषोंकी जात। निरर्थक जीव-हत्या करनेमें इन्हें क्या मजा आता है सो ये ही जानें। बाबूजी तो अच्छे हैं न ?"

"बाबूजीका तो स्वर्गवास हो गया।"

"हैं, स्वर्गवास हो गया !—और माँ ?"

"वे तो उससे भी पहले चल बसी थीं।"

"ओह,—तभी तो!" कहकर बाईजी एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर मेरी ओर देखती रह गईं। एक दफे तो जान पड़ा मानों उनकी आँखें छलछला आई हैं, किन्तु, शायद वह मेरी भूल हो। परतु, दूसरे ही क्षण जब वह बोलीं तब भूलके लिए कोई जगह न रही। उस मुखरा नारीका चंचल और परिहास-लघु कण्ठस्वर सचमुच ही मृदु और आर्द्र हो उठा था। बोलीं "तो फिर यों कहो कि अब तुम्हारा जतन करनेवाला कोई न रहा। बुआजीके पास ही रहते हो न?—नहीं तो, और फिर कहाँ रहोगे? ब्याह हुआ नहीं, यह तो मैं देख ही रही हूँ। पढ़ते-लिखते हो? या वह भी इसके साथ ही समाप्त कर दिया?"

अबतक तो मैं उसके कुतूहल और प्रश्नमालाको भरसक बरदाश्त करता रहा। किन्तु, न जाने पिछली बात मानों मुझे एकाएक असह्य हो उठी। मैं खीझकर रूखे स्वरमें बोल उठा, "अच्छा, कौन हो तुम? तुम्हें जीवनमें कहीं देखा है, यह तो याद आता नहीं। मेरे सम्बंधमें इतनी बातें तुम जानना ही क्यों चाहती हो और जाननेसे तुम्हें लाभ ही क्या है?"

बाईजीको गुस्सा न आया, वे हँसकर बोलीं, "लाभ-हानि ही क्या संसारमें सब कुछ है? माया, ममता, प्यार-मुहब्बत कुछ नहीं? मेरा नाम है प्यारी,—किन्तु, जब मेरा मुख देखकर भी न पहिचान सके, तब लड़कपनका नाम सुनकर भी मुझे कैसे पहिचान सकोगे? इसके सिवाय मैं तुम्हारे उस गाँवकी लड़की भी तो नहीं हूँ।"

"अच्छा, तुम्हारा घर कहाँ है?"

"नहीं, सो मैं नहीं बताऊँगी।

"तो फिर, अपने बापका नाम ही बताओ?"

बाईजी जीभ काटकर बोलीं, "वे स्वर्ग चले गये हैं—राम–राम क्या उनका नाम इस मुँहसे उच्चारण कर सकती हूँ?"

मैं अधीर हो उठा। बोला, "यदि नहीं कर सकतीं तो फिर मुझे तुमने पहिचाना किस तरह, यही बताओ? शायद यह बतलानेमें कोई दोष न होगा।"

प्यारीने मेरे मनके भावको लक्ष्य करके मुसकरा दिया। कहा, "नहीं, इसमें कुछ दोष नहीं है, परन्तु क्या तुम विश्वास कर सकोगे?"

"कह देखो न।"

प्यारीने कहा, "तुम्हें पहचाना था महाराज, दुर्बुद्धिकी मारसे,—और किस तरह ? तुमने मेरी आँखोंसे जितना पानी बहवाया है, सौभाग्यसे सूर्यदेवने उसे सुखा दिया है। नहीं तो आँखोंके उस जलसे एक तालाब भर गया होता।—पूछती हूँ, क्या इसपर विश्वास कर सकते हो ?"

सचमुच ही मैं विश्वास न कर सका। परन्तु वह मेरी ही भूल थी। उस समय यह किसी तरह भी ख्याल नहीं आया कि प्यारीके होठोंकी गठन कुछ इस किस्मकी है कि मानों हर बात वह मज़ाकमें ही कहती है और मन ही मन हँसती है। मैं चुप रह गया। वह भी कुछ देरतक चुप रहकर इस बार सचमुच ही हँस पड़ी। परंतु, इतनी देरमें न जाने किस तरह मुझे जान पड़ा कि उसने अपनी लज्जित अवस्थाको मानो सँभाल लिया है। हँसकर कहा, "नहीं महाराज, तुम्हें जितना भोला समझा था उतने भोले तुम नहीं हो। यह जो मेरा कहनेका ढंग है, इसे तुमने बराबर समझ लिया है। किन्तु, यह भी कहती हूँ कि तुम्हारी अपेक्षा अधिक बुद्धिवान् भी इस बातपर अविश्वास नहीं कर सकते। सो यदि आप इतने अधिक बुद्धिवान् हैं तो यह मुसाहबीका व्यवसाय आपने किसलिए ग्रहण किया है ? यह नौकरी तो तुम्हारे जैसे आदमीसे होनेकी नहीं। जाओ, यहाँसे चटपट खिसक जाओ !"

क्रोधके मारे मेरा सर्वाङ्ग जल उठा, किन्तु मैंने उसे प्रकट नहीं होने दिया। सहज भावसे कहा, "नौकरी जितने दिन हो, उतने ही दिन अच्छी। बैठेसे बेगार भली,—समझीं न ? अच्छा, अब मैं जाता हूँ। बाहरके लोग शायद और ही कुछ समझ बैठें।"

प्यारी बोली, "समझ बैठें, तो यह तुम्हारे लिए सौभाग्यकी बात है महाराज ! यह क्या कोई अफसोसकी बात है ?"

उत्तर दिये बिना ही जब मैं द्वार पर आ खड़ा हुआ तब वह अकस्मात् हँसीकी फुहार छोड़कर कह उठी, "किन्तु देखो बाबू, मेरी वह आँखोंके आँसुओंकी बात मत भूल जाना। दोस्तोंमें, कुमार साहबके दरबारमें, प्रकट कर दोगे तो संभव है तुम्हारी तक़दीर खुल जाय।"

मैं उत्तर दिये बिना ही बाहर हो गया परंतु, उस निर्लज्जाकी वह हँसी और वह कदर्य परिहास मेरे सर्वाङ्गमें व्याप्त होकर बिच्छूके काँटेकी तरह जलने लगा।

अपने स्थानपर आकर, एक प्याला चाह पीकर और चुरुट मुँहमें दाबकर

अपनेको भर-सक ठण्डा करके मैं सोचने लगा—यह कौन है ? मैं अपनी पाँच-छः वर्षकी उम्र तककी सब घटनाएँ स्पष्ट तौरसे याद कर सकता हूँ। किन्तु, अतीतमे जितनी भी दूरतक दृष्टि जा सकती थी उतनी दूरतक मैंने खूब छानबीन कर देखा, कहीं भी इस प्यारीको नहीं खोज पाया। फिर भी, यह मुझे खूब पहिचानती है। बुआ तककी बात जानती है। मैं दरिद्र हूँ, सो भी इससे अज्ञात नहीं है। इसलिए, और तो कोई गहरी चाल इसमें हो नहीं सकती; फिर भी, जिस तरह हो, मुझे यहाँसे भगा देना चाहती है। परंतु वह किसलिए ? मेरे यहाँ रहने न रहनेसे इसे क्या ? बातों ही बातोंमें उस समय इससे कहा था— संसारमें लाभ-हानि ही क्या सब कुछ है ? प्यार-मुहब्बत कुछ नहीं ? मैंने जिसे पहले कभी आँखसे भी नहीं देखा, उसके मुँहकी यह बात याद करके भी मुझे हँसी आ गई। किन्तु, सारी बातचीतको दबाकर, उसका आखिरी व्यंग ही मानो मुझे लगातार छेदने लगा।

संध्याके समय शिकारियोंका दल लौट आया। नौकरोंके मुँहसे सुना कि आठ पक्षी मारकर लाये गये हैं। कुमारने मुझे बुला भेजा। तबीयत ठीक न होनेका बहाना करके बिस्तरोंपर ही मैं पड़ा रहा; और इसी तरह पड़े पड़े रातको देरतक प्यारीका गान और शराबियोंकी वाहवाह सुनता रहा।

इसके बादके तीन-चार दिन प्रायः एक ही तरहसे कट गये। 'प्रायः' कहता हूँ, क्योंकि, सिर्फ शिकारको छोड़कर और सब बातें रोज़ एक-सी ही होती थीं। प्यारीका अभिशाप मानों फल गया हो,—प्राणि-हत्याके प्रति किसीमे कुछ भी उत्साह मैंने नहीं देखा। मानो कोई तम्बूके बाहर भी न निकलना चाहता हो। फिर भी मुझे उन्होंने नहीं छोड़ा। मेरे वहाँसे भाग जानेके लिए कोई विशेष कारण हो, सो बात न थी; किन्तु इस बाईजीके प्रति मुझे मानो घोर अरुचि हो गई। —वह जब हाज़िर होती, तब मानो मुझे कोई मार रहा हो ऐसा लगता, —उठकर वहाँसे जब चला जाता तभी कुछ शान्ति मिलती। उठ न सकता, तो फिर और किसी ओर मुँह फिराकर, किसीके भी साथ, बातचीत करते हुए अन्यमनस्क होनेकी चेष्टा किया करता। इसपर भी वह हर समय मुझसे आँख मिलानेकी हज़ार तरहसे चेष्टा किया करती, यह भी मैं अच्छी तरह अनुभव करता। शुरूमें दो तीन दिन उसने मुझे लक्ष्य करके परिहास करनेकी चेष्टा भी की; किन्तु, फिर मेरे भावको देखकर वह बिलकुल सन्न हो रही।

शनिवारका दिन था। अब किसी तरह भी मैं ठहर नहीं सकता। खा-पी चुकनेके बाद ही आज रवाना हो जाऊँगा, यह स्थिर हो जानेसे आज सुबहसे ही गाने बजानेकी बैठक जम गई थी। थककर बाईजीने गाना बन्द किया ही था कि हठात् सारी कहानियोंसे श्रेष्ठ भूतोंकी कहानी शुरू हो गई। पलभरमें जो जहाँ था उसने वहीं आग्रहके साथ वक्ताको घेर लिया।

पहले तो मैं लापर्वाहीसे सुनता रहा। परन्तु अन्तमें उदग्रीव होकर बैठ गया। वक्ता थे गाँवके ही एक वृद्ध हिन्दुस्तानी महाशय। कहानी कैसे कहनी चाहिए सो वे जानते थे। वे कह रहे थे, कि, "प्रेत-योनिके विषयमें यदि किसीको संदेह हो,—तो वह आज़, इस शनिवारकी अमावस्या तिथिको, इस गाँवमें आकर, अपने चक्षु-कर्णोंका विवाद भंजन कर डाले। वह 'चाहे जिस जातिका, चाहे जैसा, आदमी हो और चाहे जितने आदमियोंको साथ लेकर जाय, आजकी रात उसका महाश्मशानको जाना निष्फल नहीं होगा। आजकी घोर रात्रिमें उस श्मशानचारी प्रेतात्माको सिर्फ आँखसे ही देखा जा सकता हो सो नहीं,—उसका कण्ठस्वर भी सुना जा सकता है और इच्छा करनेपर उससे बातचीत भी की जा सकती है" मैंने, अपने बचपनकी बातें याद करके, हँस दिया। वृद्ध महाशय उसे लक्ष्य करके बोले, "आप मेरे पास आइए।" मैं उनके निकट खिसक गया। उन्होंने पूछा, "आप विश्वास नहीं करते ?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं करते ? नहीं करनेका क्या कोई विशेष हेतु है ?"

"नहीं।"

"तो फिर ? इस गाँवमें ही दो-एक ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जिन्होंने अपनी आँखों देखा है। फिर भी जो आप विश्वास नहीं करते, मुँहपर हँसते हैं सो यह केवल दो पन्ने अँग्रेजी पढ़ लेनेका फल है। विशेष करके बंगाली लोग तो नास्तिक म्लेच्छ हो गये हैं।" कहाँकी बात कहाँ आ पड़ी, देखकर मैं अवाक् हो गया। बोला, "देखिए, इस सम्बंधमें मैं तर्क नहीं करना चाहता। मेरा विश्वास मेरे पास है। मैं भले ही नास्तिक होऊँ, म्लेच्छ होऊँ,—पर भूत नहीं मानता। जो कहते हैं कि हमने आँखोंसे देखा है वे या तो ठगे गये हैं, अथवा झूठे हैं, यही मेरी धारणा है।"

उस भले आदमीने चटसे मेरे दाहिने हाथको पकड़कर कहा, "क्या

आप आज रातको श्मशान जा सकते हैं ?" मैं हँसकर बोला, "जा सकता हूँ; बचपनसे ही मैं अनेक रात्रियोंमें अनेक श्मशानोंमें गया हूँ।" वृद्ध चिढ़कर बोल उठे, "आप शेखी मत बघारिए बाबू।" इतना कहकर, उन्होंने उस श्मशानका, सारे श्रोताओंको स्तंभित कर देनेवाला, महा भयावह विवरण विगतवार कहना शुरू कर दिया। "यह श्मशान कुछ ऐसा वैसा स्थान नहीं है। यह महाश्मशान है। यहाँपर हजारों नर-मुण्ड गिने जा सकते हैं। इस श्मशानमें, हर रातको, महाभैरवी अपने साथियों सहित नर-मुण्डोंसे गेंद खेलती हैं और नृत्य करती हुई घूमती हैं। उनके खिलखिलाकर हँसनेके विकट शब्दसे, कितनी ही दफे. कितने ही अविश्वासी अँगरेज़ जजों, मजिस्ट्रेटोंके भी हृदयकी धड़कन बन्द हो गई है।"—इस किस्मकी लोमहर्षक कहानी वे इस तरहसे कहने लगे कि इतने लोगोंके बीच, दिनके समय, तम्बूके भीतर बैठे रहनेपर भी, बहुतसे लोगोंके सिरके बालतक खड़े हो गये। तिरछी नजरसे मैंने देखा कि प्यारी न जाने कब पास आकर बैठ गई है और उन बातोंको मानों सारे शरीरसे निगल रही है।

इस तरह जब वह महाश्मशानका इतिहास समाप्त हुआ तब वक्ताने अभिमानके साथ मेरी ओर कटाक्ष फेंककर प्रश्न किया, "क्यों बाबू साहब, आप जायँगे ?"

"जाऊँगा क्यों नहीं !"

"जाओगे ? अच्छा, आपकी मरजी। प्राण जानेपर—"

मैं हँसकर बोला, "नहीं महाशय, नहीं। प्राण जानेपर भी तुम्हें दोष न दिया जायगा, तुम इससे मत डरो। किन्तु बेजानी जगहमें मैं भी तो खाली हाथ नहीं जाऊँगा,—बन्दूक साथ जायगी !"

आलोचना अत्यधिक तेज हो उठी है; यह देखकर मैं वहाँसे उठ गया। "पक्षी मारनेकी तो हिम्मत नहीं पड़ती, बन्दूककी गोलीसे भूत मारेंगे साहब—बंगाली लोग अँग्रेजी पढ़कर हिन्दूशास्त्र थोड़े ही मानते हैं,—ये मुर्गीतक तो खा जाते हैं,—मुँहसे ये लोग कितनी ही शेखी क्यों न मारें, कामके समय भाग खड़े होते हैं,—एक धौंस पड़ते ही इनके दन्त कपाट लग जाते हैं;"—इसी तरहकी समालोचना होना शुरू हुआ। अर्थात्, जिन सब सूक्ष्म युक्ति-तर्कोंकी अवतारणा करनेसे हमारे राजा रईसोंको आनन्द मिलता है और जो उनके मस्तिष्कको अतिक्रम नहीं कर जाते,—अर्थात्

वे स्वयं भी जिनमें घुसकर दो शब्द कह सकते हैं—ऐसे ही वे सब युक्ति-तर्क थे।

इन लोगोंके दलमें सिर्फ एक आदमी ऐसा था जिसने स्वीकार किया कि मैं शिकार करना नहीं जानता और जो साधारणतः बातचीत भी कम करता था, शराब भी कम पीता था। नाम था उसका पुरुषोत्तम। शामको आकर उसने मुझे पकड़ लिया और कहा, "मैं भी साथ चलूँगा,—क्योंकि इसके पहले मैंने भी कभी भूत नहीं देखा। इसलिए, आज जब ऐसा अच्छा मौका मिला है, तब मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता,"—ऐसा कहकर वह खूब हँसने लगा। मैंने पूछा, "तुम क्या भूत नहीं मानते?"

"बिल्कुल नहीं।"

"क्यों नहीं मानते?"

"भूत नहीं है, इसलिए नहीं मानता," इतना कहकर वह प्रचलित तर्क उठा-उठाकर बारंबार अस्वीकार करने लगा। किन्तु, मैंने इतने सहजमें उसे साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया। क्योंकि, बहुत दिनोंकी जानकारीसे मैंने जाना था कि, यह सब युक्ति-तर्कका व्यापार नहीं,—यह तो संस्कार है। बुद्धिके द्वारा जो बिल्कुल ही नहीं मानते, वे भी भयके स्थानपर आ पड़नेपर भयके मारे मूर्छित हो जाते हैं।

पुरुषोत्तम किन्तु इस तरह सहजमें छोड़नेवाला नहीं था। वह लाँग कसकर एक पक्के बाँसकी लकड़ी कंधेपर रखकर बोला, "श्रीकान्त बाबू, आपकी इच्छा हो तो भले ही आप बन्दूक ले चलें; किन्तु, अपने हाथमें लाठी रहते, भूत हो चाहे प्रेत,—मैं किसीको भी पासमें न फटकने दूँगा।"

"किन्तु वक्तपर हाथमें लाठी रहेगी भी?"

"ठीक इसी तरह रहेगी बाबू, आप उस समय देख लेना। कोस-भरका रास्ता है, रातको ग्यारहके भीतर ही रवाना हो जाना चाहिए।"

मैंने देखा, उसका आग्रह मानों कुछ अतिरिक्त-सा है।

जानेके लिए उस समय भी करीब घण्टे-भरकी देर थी। मैं तम्बूके बाहर टहलकर इस विषयपर मन ही मन आन्दोलन करके, देख रहा था कि वस्तु वास्तवमें क्या हो सकती है। इन सब विषयोंमें मैं जिसका शिष्य था, उसे भूतका भय बिल्कुल नहीं था। लड़कपनकी बातें याद आ रही थीं,—उस रात्रिको जब इन्द्रने कहा था, "श्रीकान्त, मन ही मन राम-नाम लेता

रह; वह लड़का मेरे पीछे बैठा हुआ है—" केवल उसी दिन भयके मारे मैं बेहोश हो गया था, और किसी दिन नहीं। फिर डरनेका मौका ही नहीं आया। किन्तु आजकी बात सच हो, तो वह वस्तु है क्या? इन्द्र स्वयं भूतमें विश्वास करता था। किन्तु उसने भी कभी आँखोंसे नहीं देखा। मैं भी अपने मन ही मन चाहे जितना अविश्वास क्यों न करूँ, स्थान और कालके प्रभावसे मेरे शरीरमें उस समय सनसनी न पैदा हो, यह बात नहीं। सहसा सामनेके उस दुर्भेद्य अमावास्याके अन्धकारकी ओर देखकर मुझे एक और अमावास्याकी बातकी बात याद आ गई। वह दिन भी ऐसा ही एक शनिवार था।

पाँच छह वर्ष पहले, हमारी पड़ोसिन, हतभागिनी नीरू जीजी बाल-विधवा होकर भी जब प्रसूति रोगसे पीड़ित होकर और छह महीनेतक दुख भोग भोगकर मरीं, तब उनकी मृत्यु-शय्याके पार्श्वमे मेरे सिवा और कोई नहीं था। बागके बीच एक मिट्टीके घरमें वे अकेली रहती थीं। सब लोगोंकी सब तरहके रोग-शोकमें, सम्पत्ति-विपत्तिमें इतनी अधिक सेवा करनेवाली, निःस्वार्थ परोपकारिणी स्त्री मुहल्ले-भरमें और कोई नहीं थी। कितनी स्त्रियोंको लिखा-पढ़ाकर, सुईका काम सिखाकर और गृहस्थीके सब किस्मके दुरूह कार्य समझकर, उन्होंने मनुष्य बना दिया था, इसकी कोई गिनती नहीं थी। अत्यन्त स्निग्ध शान्त-स्वभाव और चरित्रके कारण मुहल्लेके लोग भी उन्हें कुछ कम नहीं चाहते थे। किन्तु उन्हीं नीरू जीजीका जब तीस वर्षकी उम्रमें हठात् पाँव फिसल गया, और भगवानने इस अत्यन्त कठिन व्याधिके आघातसे उनका जीवन-भरका ऊँचा मस्तक बिल्कुल मिट्टीमें मिला दिया, तब मुहल्लेके किसी भी आदमीने उस दुर्भागिनीका उद्धार करनेके लिए हाथ नहीं बढ़ाया। पाप-स्पर्श-लेश-हीन निर्मल हिन्दू समाजने उस हतभागिनीके मुखके सामने ही अपने सब खिड़की-दरवाजे बन्द कर लिये, और जिस मुहल्लेमे शायद एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसने कि किसी न किसी तरह नीरू जीजीके हाथकी प्रेमपूर्ण सेवाका उपभोग न किया हो, उसी मुहल्लेके एक कोनेमे, अपनी अन्तिम शय्या डालकर वह दुर्भागिनी, घृणा और लज्जाके मारे सिर नीचा किये हुए अकेली, एक एक दिन गिनतीं हुई, सुदीर्घ छःमहीने तक विना चिकित्साके पड़ी पड़ी, अपने पैर फिसलनेका प्रायश्चित्त करके, श्रावण महीनेकी एक आधी रातके समय, इस लोकको

त्यागकर जिस लोकको चली गई उसका ठीक ठीक ब्यौरा चाहे जिस स्मार्त पण्डितसे पूछते ही जाना जा सकता है।

मेरी बुआ अत्यन्त गुप्त रीतिसे उनकी सहायता करती थीं, यह बात मैं और मेरे घरकी एक बड़ी दासीके सिवाय इस दुनियामें और कोई नहीं जानता था। बुआ एक दिन मुझे अकेलेमें बुलाकर बोलीं, "भइया श्रीकान्त, तू तो इस तरह रोग-शोकमें जाकर अनेकोंकी खबर लिया करता है; उस छोरीको भी एकाध दफे क्यों नहीं देख आया करता?" तबसे मैं बराबर बीच बीचमें जाकर उन्हें देखा करता और बुआके पैसोंसे यह चीज,—वह चीज,—खरीद कर दे आया करता उनकी मृत्युके समय केवल मैं ही अकेला उनके पास था। मरण-समयमें ऐसा परिपूर्ण विकार और परिपूर्ण ज्ञान मैंने और किसीके नहीं देखा। विश्वास न करने पर भी, भयके मारे शरीरमें जो सनसनी फैल जाती है, उसीके उदाहरणस्वरूप मैं यह घटना लिख रहा हूँ।

वह श्रावणकी अमावास्याका दिन था। रात्रिके बारह बजनेके बाद आँधी और पानीके प्रकोपसे पृथ्वी मानों अपने स्थानसे च्युत होनेकी तैयारी कर रही थी। सब खिड़की-दरवाजे बन्द थे,—मैं खाटके पास ही एक बहुत पुरानी आधी टूटी हुई आराम-कुर्सीपर लेटा हुआ था। नीरू जीजीने अपने स्वाभाविक मुक्त स्वरसे मुझे अपने पास बुलाकर, हाथ उठाकर, मेरा कान अपने मुखके पास ले आकर, धीरेसे कहा, "श्रीकान्त, तू अपने घर जा।"

"सो क्यों नीरू जीजी, ऐसे आँधी पानीमें?"

"रहने दे आँधी-पानी। प्राण तो पहले हैं।" वे भ्रममें प्रलाप कर रही हैं ऐसा समझकर मैं बोला, "अच्छा, जाता हूँ, पानी जरा थम जाने दो।" नीरू जीजी अत्यन्त चिन्तित होकर बोल उठी, "नहीं, नहीं, श्रीकान्त, तू जा, जा भाई, जा,—अब थोड़ी भी देर मत ठहर,—जल्दी भाग जा।" इस दफे उसके कण्ठ-स्वरके भावसे मेरी छातीका भीतरी भाग काँप उठा। मैं बोला, "मुझसे जानेके लिए क्यों कहती हो?"

प्रत्युत्तरमें, मेरा हाथ खींचकर और बन्द खिड़कीकी ओर लक्ष्य करके, वे चिल्ला उठीं, "जायगा नहीं, तो क्या जान दे देगा? देखता नहीं है, मुझे ले जानेके लिए वे काले काले सिपाही आये हैं। तू यहाँपर मौजूद है, इसी लिए वे खिड़कीमेंसे ही मुझे डरा रहे हैं।"

इसके बाद उन्होंने कहना शुरू किया—'वे इस खाटके नीचे हैं, वे सिरके ऊपर हैं! वे मारने आ रहे हैं! यह लिया! वह पकड़ लिया!' यह चीत्कार रातके अंतिम समयमें तब समाप्त हुआ जब कि उनके प्राण भी प्रायः शेष हो चुके थे।

उक्त घटना आज भी मेरी छातीके भीतर गहरी जमकर बैठी हुई है। उस रात्रिको मुझे डर तो लगा ही था,—याद-सा आता है कि मानो कुछ चेहरे भी देखे थे। यह सच है कि इस समय इस घटनाकी याद आनेसे हँसी आती है; परंतु, यदि मुझे उस समय इस बातपर असंशय विश्वास न होता, कि किवाड़ खोलकर बाहर होते ही मैं नीरू जीजीके काले काले सिपाही-सन्तरियोंकी भीड़में जाकर पड़ जाऊँगा, तो, उस दिन, अमावास्याके उस घोर दुर्योगको तुच्छ करके भी शायद मैं भाग खड़ा होता। साथ ही यह सब कुछ भी नहीं है, कुछ भी न था, यह भी जानता था; और मरणासन्न व्यक्ति केवल निदारुण विकारकी बेहोशीमें ही यह प्रलाप कर रहा था, सो भी समझता था। इतनेमें—

"बाबू"

चौंककर मैं घूमा, देखा, रतन है।

"क्या है रे?"

"बाईजीने प्रणाम कहा।"

जितना मैं विस्मित हुआ उतना ही खीझा भी। इतनी रातको अकस्मात् बुला भेजना केवल अत्यंत अपमानकारक स्पर्द्धा ही मालूम हुई हो, सो बात नहीं; गत तीन-चार दिनोंके दोनों तरफके व्यवहारको याद करके भी यह प्रणाम कहला भेजना मानों मुझे बिलकुल बेहूदा मालूम हुआ। किन्तु, इसके फलस्वरूप नौकरके सामने किसी तरहकी उत्तेजना प्रकट न हो जाय, इस आशंकासे अपने आपको प्राणपणसे सँभालकर मैंने कहा, "आज मेरे पास समय नहीं है, रतन, मुझे बाहर जाना है, कल मिल सकूँगा।"

रतन सिखाया पढ़ाया नौकर था;—अदब कायदेमें पक्का। अत्यंत आदर-भरे मृदु-स्वरसे बोला, "बड़ी जरूरत है बाबूजी, एक दफे अपने कदमोंकी धूल देनी ही होगी। नहीं तो, बाईजीने कहा है, वे स्वयं ही आ जायँगी।"

—सर्वनाश! इस तम्बूमें इतनी रातको, इतने लोगोंके सामने! मैं बोला, "तू समझाकर कहना रतन, आज नहीं; कल सबेरे ही मिल लूँगा। आज तो मैं किसी भी तरह नहीं जा सकता।" रतन बोला, "तो फिर वे ही

आयँगी, बाबूजी मैं गत पाँच वर्षोंसे देख रहा हूँ कि बाईजीकी बातमें कभी जरा भी फर्क नहीं पड़ता। आप नहीं चलेंगे तो वे निश्चय ही आवेंगी।"

इस अन्याय्य असंगत ज़िदको देखकर मैं एड़ीसे चोटी तक जल उठा। बोला, "अच्छा ठहरो, मैं आता हूँ।" तम्बूके भीतर देखा, वारुणीकी कृपासे जगता कोई नहीं है। पुरुषोत्तम भी गंभीर निद्रामें मग्न है। नौकरोंके तम्बूमें सिर्फ दो-चार आदमी जाग रहे हैं। झटपट बूट पहिनकर एक कोट शरीरपर डाल लिया। राइफल ठीक रखी ही थी। उसे हाथमें लेकर रतनके साथ साथ बाईजीके तम्बूमें पहुँचा। प्यारी सामने ही खड़ी थी। मुझे आपाद मस्तक बार बार देखती हुई, किसी तरहकी भूमिका बाँधे वगैर ही, क्रुद्ध स्वरमें बोल उठी, "मसान-असानमें तुम्हारा जाना न हो सकेगा,—किसी तरह भी नहीं।"

बहुत ही आश्चर्यचकित होकर मैं बोला, क्यों?"

"क्यों और क्या? भूत-प्रेत क्या हैं नहीं, जो इस शनिवारकी आमावास्याको तुम श्मशान जाओगे? क्या तुम अपने प्राणोंको लेकर फिर लौट आ सकोगे वहाँसे?"

इतना कहकर प्यारी अकस्मात् रोने लगी और आँसुओंकी अविरल धारा बहाने लगी। मैं विह्वल-सा होकर चुपचाप उसकी ओर देखता रह गया। क्या करूँ, क्या जवाब दूँ, कुछ सोच ही न सका। सोच न सकनेमें अचरजकी बात ही क्या थी? जिससे जान नहीं, पहिचान नहीं, वह यदि हिताकांक्षासे आधी रातको बुलाकर ख्वाहमख्वाह रोना शुरू कर दे,—तो कौन है ऐसा जो हत-बुद्धि न हो जाय! मेरा जवाब न पाकर प्यारीने आँखें पोंछते हुए कहा, "तुम क्या किसी दिन भी शांत-शिष्ट नहीं होओगे? ऐसे हठी बने रहकर ही जिन्दगी बिता दोगे? जाओ, देखूं तुम कैसे जाते हो? मैं भी फिर तुम्हारे साथ चलूंगी।" इतना कहकर उसने शाल उठाकर अपने शरीरपर डालनेकी तैयारी कर दी।

मैंने संक्षेपमें कहा, "अच्छा है, चलो।" मेरे इस छिपे हुए तानेसे जल-भुनकर प्यारी बोली, "आहा! देश-विदेशमें तब तो तुम्हारी सुख्यातिका सीमा-परिसीमा न रहेगी!—बाबू शिकार खेलनेके लिए आकर, एक नाचनेवालीको साथ लेकर, आधी रातको भूत देखने गये थे! वाह! मैं पूछती हूँ, घरसे क्या बिल्कुल ही 'आऊट' होकर आये हो? घृण-विरक्ति,

लाज-शरम आदि क्या कुछ भी नहीं रह गई ?" यह कहते कहते उसका तीव्र कंठ मानों आर्द्र होकर भारी हो गया। बोली, "कभी तो तुम ऐसे नहीं थे। तुम्हारा इतना अधःपतन होगा, सो तो किसीने भी कभी सोचा समझा न था।" उसकी पिछली बातपर और कोई समय होता तो मैं इतना खीझ उठता कि जिसका पार न रहता; परन्तु, इस समय क्रोध नहीं आया। मन ही मन मुझे लगा कि प्यारीको मानों मैंने पहिचान लिया है। ऐसा क्यों मनमें आया सो फिर कहूँगा। उस समय मैं बोला, "लोगोंके सोचने समझनेका मूल्य कितना है, सो तो तुम खुद भी जानती हो। तुम भी इतने अधःपतनके रास्ते जाओगी, क्या कभी किसीने सोचा था ?"

क्षण भरके लिए प्यारीके मुखके ऊपर शरत् ऋतुकी बदलीवाली चाँदनीके समान हँसीकी एक सहज आभा दिखाई दी। किन्तु, वह क्षण-भरके लिए ही। दूसरे ही क्षण उसने डरती हुई आवाज़से कहा, "मेरे विषयमें तुम क्या जानते हो ? कौन हूँ मैं, बताओ ?"

"तुम हो प्यारी।"

"सो तो सभी जानते हैं।"

"सब जो नहीं जानते, सो भी मैं जानता हूँ,—उसे सुनकर क्या तुम खुश होओगी ? यदि होतीं तो खुद ही अपना परिचय देतीं। किन्तु जब नहीं दिया है, तब मेरे मुँहसे भी कोई बात नहीं सुन पाओगी। इस बीच सोचकर देखो, अपने आपको प्रकट करोगी कि नहीं ? किन्तु अब और समय नहीं है,—मैं जाता हूँ।"

प्यारीने बिजलीकी-सी तेजीके साथ मेरा रास्ता रोककर कहा, "यदि न जाने दूँ, तो क्या ज़बरन् चले जाओगे ?"

"किन्तु, जाने ही क्यों न दोगी ?"

प्यारी बोली, "जाने दूँ ? सचमुचमें क्या भूत नहीं होते जो तुम्हारे 'जाने दो' कहने ही से जाने दूँगी ? मैं कहे देती हूँ कि मैं बातकी बातमें 'मैयारी मैया,' चिल्लाकर हाट लगा दूँगी।" यह कहकर उसने बन्दूक छीन लेनेकी चेष्टा की। मैं एक कदम पीछे हट गया। कुछ क्षणोंसे मेरी खीझ हँसीके रूपमें परिवर्तित हो रही थी। इस दफे खूब हँसकर कह दिया, "सच-मुचके भूत होते हैं कि नहीं, सो तो मैं नहीं जानता: परन्तु झूठ-मूठके भूत हैं, यह जरूर जानता हूँ। वे सामने खड़े होकर बातचीत करते हैं, रास्ता

रोकते हैं,—ऐसे न जाने कितनी तरहके कीर्तिके काम करते हैं,—और जरूरत पड़नेपर गर्दन दबोचकर खा भी जाते हैं!" प्यारी मलिन हो गई और क्षण-भरके लिए शायद सोच न सकी कि क्या कहे। इसके बाद बोली, "यदि ऐसी बात है, तो जो तुम यह कहते हो, कि तुमने मुझे पहचान लिया, सो तुम्हारी भूल है। वे अनेक कीर्तिके काम करते हैं यह सच है, किन्तु दबोचनेके लिए रास्ता रोककर नहीं खड़े होते। उन्हें अपने-परायेका बोध होता है" मैंने फिर भी हँसकर प्रश्न किया, "यह तो हुई तुम्हारी खुदकी बात, किन्तु तुम क्या भूत हो?"

प्यारी बोली, "भूत ही तो हूँ, और नहीं तो क्या? जो लोग मरकर भी नहीं मरते, वे ही तो भूत हैं; यही तो कहनेका मतलब है?" थोड़ी देर ठहरकर वह स्वयं ही फिर कहने लगी, "एक हिसाबसे तो, जो मैं मर चुकी हूँ सो सत्य है। किन्तु, सच हो चाहे झूठ, अपने मरनेकी बात मैंने प्रसिद्ध नहीं की, मामाके जरिये माँने फैलाई थी। सुनना चाहते हो सब हाल?" मरनेकी यह बात सुनते ही मेरा संशय दूर हो गया। मैंने ठीक पहिचान लिया कि यह राजलक्ष्मी है। बहुत दिन पहले यह अपनी माताके संग तीर्थयात्रा करने गई थी और फिर लौटकर नहीं आई। माँने गाँवमें आकर यह बात प्रसिद्ध कर दी कि काशीमें हैज़ेकी बीमारीसे वह मर गई।—उसे मैंने कभी देखा है, यह बात अवश्य ही मुझे याद न आ रही थी किन्तु उसकी एक आदतपर, मैं जबसे यहाँ आया था तभीसे, ध्यान दे रहा था। जब वह गुस्से होती थी तब दाँतोंके नीचे अधर दबा लिया करती थी। कभी कहीं किसीको मानों ठीक इसी तरह करते अनेक बार देखा है, केवल यही बात बार बार मनमें आती थी। किन्तु वह कौन था कहाँ देखा था; कब देखा था,—सो कुछ भी याद नहीं आता था। वही राजलक्ष्मी ऐसी हो गई है, यह देखकर मैं क्षण-भरके लिए अचरजसे अभिभूत हो गया। मैं जब अपनें गाँवके मनसा पंडितकी पाठशालामें सब छात्रोंका सरदार था, तब इसके दो पुश्तके कुलीन बापने अपना एक और ब्याह करके इसको घरसे निकाल दिया। पतिके द्वारा परित्यक्ता माता, सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मी नामक दोनों कन्याओंको लेकर अपने बापके घर चली आई। उम्र उसकी उस समय आठ-नौकी होगी और सुरलक्ष्मीकी बारह तेरहकी। इसका रङ्ग अवश्य ही खूब उज्ज्वल था किन्तु मलेरिया और प्लीहाके मारे पेट मटकेकी हाथ

पैर लकड़ीकी तरह, सिरके बाल ताँबेकी सलाइयोंके समान थे और कितने थे सो भी गिने जा सकते थे। मेरी मारके डरसे यह लड़की करोंदेकी झाड़ीमें घुसकर करोंदोंकी माला गूँथ लाकर मुझे दिया करती थी। यदि वह माला किसी दिन छोटी होती तो, मैं पुराना पाठ पूछकर, इसे जी भरकर चपतियाता था। मार खाकर यह लड़की होंठ चबाती हुई गुमसुम होकर बैठ रहती, किन्तु किसी तरह भी यह नहीं कहती कि रोज रोज करोंदे संग्रह करना उसके लिए कितना कठिन है। जो कुछ भी हो, इतने दिनोंतक तो मैं यही समझता था कि वह मारके भयसे ही इतना क्लेश स्वीकार करती थी; किन्तु आज मानों हठात् कुछ संशय उत्पन्न हुआ। खैर जाने दो। उसके बाद इसका विवाह हो गया। वह विवाह भी एक विचित्र व्यापार था। बेचारा मामा भानजियोंके ब्याहकी चिंताके मारे मरा जा रहा था। दैवात् कहींसे यह खबर आई कि विरंचि दत्तका रसोइया कुलीनकी संतान है। इस कुलीनकी सन्तानको दत्त महाशय बाँकुड़ेसे अपनी बदली होते समय साथ ही लिवा लाये थे। विरंचि दत्तके द्वारपर मामा धन्ना देकर पड़ गये,—ब्राह्मणकी जाति-रक्षा करनी ही होगी! इतने दिन तक तो सब ही जानते थे कि दत्त महाशयका रसोइया भोला भाला भला आदमी है परन्तु मतलबके समय देखा गया कि रसोइया महाराजकी सांसारिक बुद्धि किसीसे भी कम नहीं है। सिर्फ इक्यावन रुपये दहेजकी बात सुनकर वह जोरसे सिर हिलाकर बोला, "इतने सस्तेमें नहीं हो सकता महाशय,—बाजार जाँच देखिए। पचास और एक रुपयेमें तो एक जोड़ी बड़े बकरे भी नहीं मिलते—और इतनेमें आप जमाई खोजते हैं! एकसौ और एक रुपये दो, तो एक दफे इस पाटेपर और एक बार उस पाटेपर बैठकर दो फूल छोड़ दूँगा। दोनों ही बहिनें एक ही साथ 'पार' हो जायँगी। क्या एक सौ रुपये,—दो साँड़ खरीदनेका खर्च—भी आप न देंगे?" बात कुछ असङ्गत नहीं थी। फिर भी अनेक मोल तोल और बड़ी सही सिफारिशके बाद सत्तर रुपयेमें तय होकर एक ही रातमें एक साथ सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मीका विवाह हो गया। दो दिन बाद सत्तर रुपया नकद लेकर दो पुश्तका वह कुलीन जमाई बाँकुड़ा चल दिया। इसके बाद फिर किसीने उसे नहीं देखा। डेढ़ेक वर्ष बाद प्लीहाके ज्वरसे सुरलक्ष्मी मर गई और उसके भी वर्ष डेढ़ वर्ष पीछे इस राजलक्ष्मीने काशीमें मरकर शिवत्व प्राप्त किया। यही है प्यारी बाईजीका संक्षिप्त इतिहास।

बाईजीने कहा, "तुम क्या सोच रहे हो, बताऊँ क्या ?"

"क्या सोच रहा हूँ ?"

"तुम सोच रहे हो,—आहा ! लड़कपनमें मैंने इसे कितना कष्ट दिया है ! काँटोंके वनमें भेजकर रोज रोज करोंदे मँगवाया किया हूँ, और उसके बदले केवल मार-पीट ही करता रहा हूँ। मार खाकर यह गुप-चुप हमेशा रोया ही की है, परन्तु चाहा कभी कुछ नहीं। आज यदि यह कुछ बात कहती है तो सुन ही न लूँ। न सही, न गया आज श्मशानको।—यही न ?"

मैं हँस पड़ा।

प्यारीने भी हँसकर कहा, "यह तो होना ही चाहिए। बचपनमें जिससे एक दफे प्यार हो जाता है, क्या वह कभी भूलता है ? वह यदि अनुरोध करे तो फिर क्या उसे पैरसे ठोकर मारकर टाला जा सकता है ? संसारमें ऐसा निष्ठुर कौन है ? चलो, थोड़ा बैठ लो, बहुत-सी बातें करनी हैं। रतन, बाबूजीके जूते तो खोल दे।—अरे हँसते हो ?"

"हँसता हूँ यह देखकर, कि तुम लोग मनुष्यको भुलाकर किस तरह वशमें कर लिया करती हो।"

प्यारीने भी हँस दिया; बोली, "यह देखकर हँसते हो! दूसरोंको तो बातोंमें भुलाकर वशमें किया जा सकता है; किन्तु, होश सँभालते ही स्वयं जिसके वशमें रही हूँ, उसे भी क्या बातोंमें भुलाया जा सकता है ? अच्छा, आज तो जैसे मैं बात करती हूँ, किन्तु रोज जब काँटोंमें क्षत-विक्षत होकर माला गूँथ देती थी, तब कितनी बात किया करती थी, कहो न ? वह क्या तुम्हारी मारके डरसे ?—यह बात भूलकर भी मनमें मत लाना। राजलक्ष्मी ऐसी नहीं है।—किन्तु राम राम ! तुम तो मुझे बिल्कुल ही भूल गये थे,—देखकर पहिचान भी न सके !" यों कहकर हँसते ही, सिर हिलानेसे उसके दोनों कानोंके हीरे तक हिलकर हँस उठे।

मैंने कहा, "मैंने तुम्हें मनमें स्थान ही कब दिया था, जो भूलता नहीं ! वरन् आज मैंने तुम्हें पहिचान लिया, यह देखकर मुझे खुद ही अचरज हो रहा है। अच्छा, बारह बज चुके,—जाता हूँ।"

प्यारीका हँसता हुआ चेहरा पल-भरमें बिल्कुल फीका पड़ गया। तनिक सँभलकर उसने कहा, "अच्छा, भूत-प्रेत मत मानो, किन्तु साँप-बिच्छू,

बाघ-भालू, जंगली सुअर आदि भी तो वन-जंगलमें अँधेरी रातमें फिरते रहते हैं, उन्हें तो मानना चाहिए ? ”

मैंने कहा, “ इनको तो मैं मानता ही हूँ, और इनसे खूब सावधान रहकर चलता हूँ । ”

मुझे जानेको उद्यत देखकर वह धीरेसे बोली, “ तुम जिस घातके बने आदमी हो, उससे मैं जानती थी कि तुम्हें अटका न सकूँगी । यह भय मुझे खूब ही हो रहा था; फिर भी मैंने सोचा कि रो धोकर, हाथ पैर जोड़कर, अन्त अन्त तक शायद तुम्हें रोक सकूँ । किन्तु, देखती हूँ रोना ही सार रहा । ” मुझे जवाब देते न देख वह फिर बोली, “ अच्छा जाओ, पीछे लौटाकर अब और असगुन न करूँगी । किन्तु, यदि कुछ हो जायगा तो इस विदेशमें पराई जगह, राजे-रजवाड़े या मित्र-दोस्त, कोई काम नहीं आवेंगे, तब मुझे ही भुगतना पड़ेगा । मुझे पहिचान नहीं सकते, यह मेरे मुँहपर ही कहकर तुम तो अपने पौरुषकी डींग हाँककर चल दिये, किन्तु हमारा तो स्त्रियोंका मन है ! विपत्तिके समय मैं तो यह कह न सकूँगी कि, ‘ मैं तुम्हें पहिचानती ही नहीं । ’ यह कहकर उसने एक दीर्घ निःश्वास दबा लिया । जाते जाते मैंने लौटकर, खड़े होकर, हँस दिया । न जाने क्यों मानों मुझे कुछ कष्टका अनुभव हुआ । मैं बोला, “ अच्छा तो है बाईजी, यह तो मुझे एक बड़ा लाभ होगा । मेरा तो कोई कहीं नहीं है, तब ही तो मैं जा न सकूँगा कि हाँ, मेरा भी कहीं कोई है,—जो मुझे छोड़कर नहीं जा सकता ! ”

प्यारी बोली, “ सो क्या तुम जानते नहीं हो ? एक सौ बार ‘ बाईजी ’ कहकर तुम मेरा चाहे जितना अपमान क्यों न करो, राजलक्ष्मी तुम्हें छोड़कर न जा सकेगी,—यह बात क्या तुम मन ही मन नहीं समझ रहे हो ?—किन्तु यदि मैं छोड़कर जा सकती, तो अच्छा होता । तुम्हें एक सीख मिल जाती । किन्तु, कितनी बुरी है यह स्त्रियोंकी जाति, एक दफे भी किसीको प्यार किया कि मरी ! ”

मैं बोला, “ प्यारी, भले सन्यासीको भी भीख नहीं मिलती, जानती हो, क्यों ? ”

प्यारी बोली, “ जानती हूँ, किन्तु, तुम्हारे इस व्यंगमें इतनी धार नहीं रही है कि इससे तुम मुझे वेध सको । यह मेरा ईश्वर-दत्त धन है । और, जब कि मुझे संसारसे भले बुरे तकका ज्ञान नहीं था, उस समयका यह है,—

आजका नहीं।" मैं कुछ नरम होकर बोला, "अच्छी बात है, चाहता हूँ कि आज मुझपर कोई आफत आवे और तब तुम्हारे इस ईश्वर-दत्त धनकी हाथों हाथ जाँच हो जाय।"

प्यारी बोली, "राम राम! ऐसी बात मत कहो। अच्छे-भले लौट आओ,—इस सचाईकी जाँच करनेकी जरूरत नहीं है। मेरे ऐसे भाग कहाँ कि वक्त-मौकेपर अपने हाथ हिला डुलाकर तुम्हें स्वस्थ सबल कर सकूँ। यदि ऐसा हो, तो समझूँगी कि इस जन्मके एक कर्तव्यको पूरा कर डाला।" इतना कहकर उसने मुँह फेरकर अपने आँसू छिपा लिये, यह हरीकेनके क्षीण प्रकाशमें भी मैं अच्छी तरह जान गया।

"अच्छा, भगवान् तुम्हारी इस साधको कभी किसी दिन पूरा करें," कहकर और अधिक देर न करके मैं तम्बूके बाहर आ खड़ा हुआ। कौन जानता था कि हँसी हँसीमें ही मुँहसे एक प्रचण्ड सत्य बाहर निकल आयगा।

तम्बूके भीतरसे आँसुओंसे रुँधे हुए कण्ठसे निकली हुई 'दुर्गा! दुर्गा!' की कातर पुकार कानमें आई और मैं तेज चालसे चल दिया।

मेरा सारा मन प्यारीकी ही बातोंसे ढँक गया। कब मैं आमके बगीचेके बड़े अँधियारे मार्गको पार कर गया, और कब नदीके किनारेके सरकारी बाँधके ऊपर आ खड़ा हुआ, यह मैं जान ही न सका। सारी राह सिर्फ यही एक बात सोचता सोचता आया कि स्त्री-जातिका मन भी कैसा विराट् अचिन्तनीय व्यापार है। इस पिलहीके रोगवाली लड़कीने अपने मटके जैसे पेट और लकड़ी जैसे हाथ पाँव लेकर, सबसे पहले किस समय मुझे चाहा था और करौंदोंकी मालासे अपनी दरिद्र-पूजाको संपन्न किया था, सो मैं बिल्कुल जान ही न सका। और आज जब मैं जान सका, तब मेरे अचरजका पार नहीं रहा। अचरज कुछ इस लिए भी नहीं था,—उपन्यास-नाटकोंमें बाल्य-प्रणयकी अनेकों कथाएँ पढ़ी हैं,—किन्तु जिस वस्तुको गर्वके साथ, अपनी ईश्वरदत्त संपत्ति कहकर प्रकट करते हुए भी वह कुण्ठित नहीं हुई, उसे उसने, इतने, दिनोंतक, अपने इस घृणित जीवनके सैकड़ों मिथ्या प्रणयाभिनयोंके बीच, किस कोनेमें जीवित रख छोड़ा था? कहाँसे इसके लिए वह खुराक जुटाती रही! किस रास्ते प्रवेश करके वह उसका लालन-पालन करती रही?

"बाप!"

मैं एकदम चौंक पड़ा। सामने आँख उठाकर देखा, भूरे रंगकी बालूका विस्तीर्ण मैदान है और उसे भी चीरती हुई एक शीर्ण नदीकी वक्र रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई सुदूरमें अंतर्हित हो गई है। समस्त मैदानमे जगह जगह काँसके पेड़ोंके झुण्ड ऊग रहे हैं। अंधकारमें एकाएक जान पड़ा कि मानों ये सब एक एक आदमी हैं, जो आजकी इस भयङ्कर अमावास्याकी रात्रिको प्रेतात्माका नृत्य देखनेके लिए आमंत्रित होकर आये हैं और बालूके बिछे हुए फर्शपर मानों अपना अपना आसन ग्रहण करके सन्नाटेमें प्रतीक्षा कर रहे हैं। सिरके ऊपर, घने काले आकाशमें, सख्यातीत ग्रह-तारे भी, उत्सुकताके साथ अपनी आँखोंको एक साथ खोले हुए ताक रहे हैं। वायु नहीं, शब्द नहीं, अपनी छातीके भीतर छोड़कर, जितनी दूर दृष्टि जाती थी वहाँ तक कहीं भी, प्राणोंकी जरा-सी भी आहट अनुभव करनेकी गुंजाइश नहीं। जो रात्रि-चर पक्षी 'चाप' कहकर थम गया, वह भी और कुछ नहीं बोला। मैं पश्चिमकी ओर धीरे धीरे चला। उसी ओर वह महा श्मशान था। एक दिन शिकारके लिए आकर, जिस सेमरके झाड़ोंके झुण्डको देख गया था, कुछ दूर चलनेपर उनके काले काले डाल-पत्र दिखाई दिये। यही थे उस महा श्मशानके द्वारपाल। इन्हींको पार करके आगे बढ़ना होगा। इसी समयसे प्राणोंकी अस्पष्ट आहट मिलने लगी, परन्तु वह ऐसी नहीं थी जिससे कि चित्त कुछ प्रसन्न हो। कुछ और दूर चलनेपर वह कुछ और साफ हुई। किसी माँके 'कुम्भकर्णी निद्रा' में सो जानेपर उसका छोटा बच्चा, रोते रोते अन्तमें बिल्कुल निर्जीव-सा होकर, जिस प्रकार रह-रह-कर रिरियाना शुरू कर देता है, ऐसा मालूम हुआ कि ठीक उसी तरह श्मशानके एकान्तमें कोई रिरिया रहा है। मैं बाजी लगाकर कह सकता हूँ कि, जिसने उस रोनेका इतिहास पहले कभी जाना-सुना न हो, वह ऐसी गहरी अँधेरी अमावास्याकी रात्रिमें अकेला उस ओर एक पैर भी आगे नहीं बढ़ाना चाहेगा। वह मनुष्यका बच्चा नहीं, चमगीदड़का बच्चा था, जो अँधेरेमे अपनी माँको न देख सकनेके कारण रो रहा था;—यह बात, पहलेसे जाने बिना, संभव नहीं है कि कोई अपने आप निश्चयपूर्वक कह सके कि यह आवाज़ मनुष्यके बच्चेकी है। और भी नजदीक जाकर देखा, ठीक यही बात थी। झोलोंकी तरह सेमरकी डाल डालमें लटके हुए, असंख्य चमगीदड़ रात्रि-वास कर रहे हैं और उन्हींमेंका कोई शैतान बच्चा इस तरह आर्त्त कण्ठसे रो रहा है।

झाड़के ऊपर वह रोता ही रहा और उसके नीचेसे आगे बढ़ता हुआ मैं उस महा श्मशानके एक हिस्सेमें जा खड़ा हुआ। सुबह उस वृद्धने जो यह कहा था कि यहाँ लाखों नर-मुण्ड गिने जा सकते हैं,—मैंने देखा, कि, उसके कथनमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है—सारा ही स्थान नर-कंकालोंद्वारा खचित हो रहा है। गेंद खेलनेके लिए नर-कपाल तो वहाँ असंख्य पड़े हुए थे; फिर भी, खिलाड़ी उस समय तक भी आकर नहीं जुट पाये थे। मेरे सिवाय कोई और अशरीरी दर्शक वहाँ उपस्थित था या नहीं, सो भी मैं इन दो नश्वर चक्षुओंसे आविष्कृत नहीं कर सका। उस समय घोर अमावास्या थी। इस-लिए, खेल शुरू होनेमें और अधिक देरी नहीं है, यह सोच करके मैं एक रेतके टीलेपर जाकर बैठ गया। बन्दूक खोलकर, उसके टोंटेकी और एक बार जाँच करके तथा फिर उसे यथास्थान लगाकर, मैंने उसे गोदमें रख लिया और तैयार हो रहा। पर हाय रे टोंटे! विपत्तिके समय, उसने जरा भी सहायता नहीं की।

प्यारीकी बात याद आ गई। उसने कहा था, "यदि निष्कपट भावसे सचमुच ही तुम्हें भूतपर विश्वास नहीं है, तो फिर, वहाँ कर्म-भोग करने जाते ही क्यों हो? और यदि विश्वासमें जोर नहीं है, तो फिर मैं, भूत-प्रेत चाहे हों चाहे न हों, तुम्हें किसी तरह जाने न दूँगी।" सच तो है, यहाँ आया आखिर क्या देखने हूँ? पाप मनसे अगोचर तो है नहीं। मैं वास्तवमें कुछ भी देखने नहीं आया हूँ। केवल यही दिखाने आया हूँ कि मुझमें कितना साहस है। सुबह जिन लोगोंने कहा था, "कायर बंगाली कामके समय भाग जाते हैं," मुझे तो उनके निकट प्रमाण सहित सिर्फ यही बताना है कि बंगाली लोग बड़े वीर होते हैं।

मेरा यह बहुत दिनोंका दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यके मरनेपर फिर उसका अस्तित्व नहीं रहता। और यदि रहता भी हो, तो भी, जिस श्मशानमें उसकी पार्थिव देहको पीड़ा पहुँचानेमें कुछ भी कसर नहीं रखी जाती वहाँ, उसी जगह, लौटकर अपनी ही खोपड़ीमें लातें मार मारकर उसे लुढ़काते फिरनेकी इच्छा होना उसके लिए न तो स्वाभाविक ही है और न उचित ही। कमसे कम मैं अपने लिए तो ऐसा ही समझता हूँ। यह बात दूसरी है कि मनुष्यकी रुचि भिन्न भिन्न होती है। यदि किसीकी होती हो तो, इस बढ़िया रातको रात्रि जागरण करके, मेरा इतनी दूरतकका आना निष्फल नहीं होगा। और फिर, आज उस वृद्ध व्यक्तिने इसकी बड़ी भारी आशा भी तो दिलाई है।

एकाएक हवाका एक झोंका कितनी ही रेत उड़ाता हुआ मेरे शरीरपरसे होकर निकल गया; और वह खत्म भी नहीं होने पाया कि दूसरा, और फिर तीसरा भी, ऊपरसे होकर निकल गया। मनमें सोचने लगा कि भला यह क्या है? इतनी देर तक तो लेश-भर भी हवा न थी। अपने आप चाहे कितना ही क्यों न समझूँ और समझाऊँ, फिर भी यह संस्कार, कि मरनेके बाद भी कुछ अज्ञात सरीखा रहता है, हमारे हाड-मासमें ही भिदा हुआ है: और जबतक हाड़-मास है तबतक वह भी है, फिर चाहे मैं उसे स्वीकार करूँ चाहे न करूँ। इसलिए उस हवाके झोंकेने केवल रेत और धूल ही नहीं उड़ाई, किन्तु मेरे उस मज्जागत गुप्त संस्कारपर भी चोट पहुँचाई। क्रमशः धीरे धीरे कुछ और जोरसे हवा चलने लगी। बहुतसे आदमी शायद यह नहीं जानते कि मृत मनुष्यकी खोपड़ीमेंसे हवाके गुजरनेसे ठीक दीर्घ श्वास छोड़नेका-सा शब्द होता है। देखते ही देखते आसपास, सामनें, पीछे, चारों ओरसे दीर्घ उसासोंकी झड़ी-सी लग गई। ठीक ऐसा लगने लगा कि मानों कितने ही आदमी मुझे घेरकर बैठे हैं और लगातार जोर जोरसे हाय हाय करके उसासे ले रहे हैं; और अँग्रेजीमे जिसे 'अनूकैनी फीलिंग' (अनमनासा लगना) कहते हैं, ठीक उसी किस्मकी एक अस्वस्ति या बेचैनी सारे शरीरको झकझोर गई। चमगीदड़का वह बच्चा तब भी चुप नहीं हुआ था। पीछे पीछे मानों वह और भी अधिक रिरियाने लगा। मुझे अब मालूम होने लगा कि मैं भयभीत हो रहा हूँ। बहुत जानकारीके फलस्वरूप यह खूब जानता था कि जिस स्थानमें आया हूँ वहाँ, समय रहते, यदि भयको दबा न सका, तो मृत्युतक हो जाना असंभव नहीं है। वास्तवमें इस तरहकी भयानक जगहमें, इसके पहले, मैं कभी अकेला नहीं आया था। स्वच्छन्दतासे जो यहाँ अकेला आ सकता था, वह था इन्द्र—मैं नहीं। अनेक बार उसके साथ अनेकों भयानक स्थानोंमे जा-आनेके कारण मेरी यह धारणा हो गई थी कि इच्छा करनेपर मैं स्वयं भी उसीके समान ऐसे सभी स्थानोंमें अकेला जा सकता हूँ। किन्तु, वह कितना बड़ा भ्रम था! और मैं केवल उसी झोंकमें उसका अनुकरण करने चला था। एक ही क्षणमें आज सब बात सुस्पष्ट हो उठी। मेरी इतनी चौड़ी छाती कहाँ? मेरे पास वह राम-नामका अभेद कवच कहाँ? मैं इन्द्र नहीं हूँ जो इस प्रेत-भूमिमें अकेला खड़ा रहूँ, और आँखें गड़ाकर प्रेतात्माओंका गेंद खेलना देखूँ। मनमें लगा

कि कोई एकाध जीवित बाघ या भालू ही दिखाई पड़ जाय, तो मैं शायद जीवित बच जाऊँ! एकाएक किसीने मानों पीछे खड़े होकर मेरे दाहिने कानपर निःश्वास डाली। वह इतनी ठंडी थी कि हिमके कणोंकी तरह मानों उसी जगह जम गई। गर्दन उठाये बगैर ही मुझे साफ साफ दिखाई पड़ा कि वह निःश्वास जिस नाकके बृहदाकार नकुओंमेंसे होकर बाहर आई है, उसमें न चमड़ा है न मांस;—एक बूँद रुधिर भी नहीं है। केवल हाड़ और छिद्र ही उसमें हैं। आगे-पीछे, दायें-बाएँ अन्धकार था। सन्नाटेकी आधी रात सायँ सायँ करने लगी। आसपासकी हाय हाय क्रम क्रमसे मानों, हाथोंके पाससे छूती हुई जाने लगी। कानोंके ऊपर वैसी ही अत्यन्त ठण्डी उसासें लगातार आने लगीं और यही मुझे सबसे अधिक परवश करने लगीं। मन ही मन ऐसा मालूम होने लगा कि मानों सारे प्रेत-लोककी ठण्डी हवा उस गढ़ेमेंसे बाहर आकर मेरे शरीरको लग रही है।

किन्तु, इस हालतमें भी मुझे यह बात नहीं भूली कि किसी भी तरह अपने होश-हवास गुम कर देनेसे काम न चलेगा। यदि ऐसा हुआ, तो मृत्यु अनिवार्य है। मैंने देखा कि मेरा दाहिना पैर थरथर काँप रहा है उसे रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु वह रुका नहीं, मानों वह मेरा पैर ही न हो।

ठीक इसी समय बहुत दूरसे बहुतसे कंठोंकी मिली हुई पुकार कानोंमें पहुँची, "बाबूजी! बाबू साहब!" सारे शरीरमें काँटे उठ आये। कौन लोग पुकार रहे हैं? फिर आवाज़ आई, "कहीं गोली मत छोड़ दीजियगा!" आवाज क्रमशः आगे आने लगीं, तिरछे देखनेसे प्रकाशकी दो क्षीण रेखाएँ आती हुई नजर पड़ीं। एक दफे जान पड़ा मानों उस चिल्लाहटके भीतर रतनके स्वरका आभास है। कुछ देर ठहरकर और भी साफ मालूम हुआ कि जरूर वही है। और भी कुछ दूर अग्रसर होकर, एक सेमरके वृक्षके नीचे आड़में खड़ा होकर वह चिल्लाया "बाबूजी, आप जहाँ भी हों गोली-ओली मत छोड़िए, मैं हूँ रतन।" रतन सचमुच ही जातका नाई है, इसमें मुझे जरा संदेह नहीं रहा।

मैंने उल्लाससे चिल्लाकर उत्तर देना चाहा, किन्तु कण्ठसे आवाज नहीं निकली। प्रवाद है कि भूत-प्रेत जाते समय कुछ न कुछ नष्ट कर जाते हैं। जो मेरे पीछे था, वह मेरा कण्ठ स्वर नष्ट करके ही विदा हुआ था।

रतन तथा और भी तीन आदमी हाथमें दो लालटेनें और लट्ठ लिये हुए

समीप आ उपस्थित हुए। उनमें एक तो था छट्टूलाल जो तबला बजाया करता था, दूसरा था प्यारीका दरबान, और तीसरा गाँवका चौकीदार।

रतन बोला, "चलिए, तीन बजते हैं।"

'चलो' कहकर मैं आगे हो लिया। रास्ता चलते चलते रतन कहने लगा, "बाबूजी, धन्य है आपके साहसको। हम चार जने हैं फिर भी जिस तरह डरते डरते यहाँ आये हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता।"

"तुम आये ही क्यों?"

रतन बोला, "रुपयोंके लोभसे। हम सबको एक एक महीनेकी तनख्वाह जो नगद मिली है!" इतना कहकर वह मेरे पास आया और गला धीमा करके बोला, "आपके चले आनेपर देखा, माँ बैठी बैठी रो रही हैं। मुझसे बोलीं, 'रतन न जाने क्या होनहार है भइया, तुम लोग पीछे पीछे जाओ। मैं तुम सबको एक एक महीनेकी तनख्वाह इनाम दूँगी।' मैं बोला, 'छट्टूलाल और गणेशको साथ लेकर मैं जा सकता हूँ माँ, परन्तु रास्ता तो मैंने देखा ही नहीं है।' इसी समय चौकीदारने हाँक दी। माँ, बोलीं, 'उसे बुला ले रतन, वह जरूर रास्ता जानता होगा।' बाहर जाकर मैं उसे बुला लाया। चौकीदार जब नगद छः रुपये पा गया, तब रास्ता दिखाता हुआ ले आया। अच्छा बाबूजी "आपने छोटे बच्चेका रोना सुना है?" इतना कहकर काँपते हुए रतनने मेरे कोटके पीछेका छोर पकड़ लिया। कहने लगा, "हमारे गणेश पांडे ब्राह्मण हैं, इसीसे हम लोग आज बच गये, नहीं तो—"

मैंने कुछ कहा नहीं। प्रतिवाद करके किसीके भ्रमको भंग करने जैसी अवस्था मेरी नहीं थी। अच्छन्न-अभिभूतकी तरह चुपचाप चलने लगा।

कुछ दूर चलनेके बाद रतनने पूछा, "आज कुछ देखा बाबूजी?"

मैं बोला, "नहीं।"

मेरे इस संक्षिप्त उत्तरसे रतन क्षुब्ध होकर बोला, "हमारे आनेसे आप क्या नाराज हो गये, बाबूजी? किन्तु यदि आप माँका रोना देखते—"

मैं चटपट बोल उठा, "नहीं रतन, मैं जरा भी नाराज नहीं हुआ।"

तम्बूके पास आ जानेपर चौकीदार अपने कामपर चला गया, गणेश और छट्टूलाल नौकरोंके तम्बूमें चले गये। रतनने कहा, "माँने कहा था कि जाते समय एक बार दर्शन दे जाइएगा।"

मैं ठिठककर खड़ा हो गया, आँखोंके आगे साफ साफ दिखाई पड़ा कि

प्यारी दिएके सामने अधीर उत्सुकता और सजल नेत्रोंसे बैठी बैठी प्रतीक्षा कर रही है और मेरा सारा मन उन्मत्त ऊर्ध्व श्वासें भरता हुआ उस ओर दौड़ा जा रहा है।

रतनने विनयके साथ बुलाया, "आइए।"

क्षण-भरके लिए आँखें मींचकर अपने अन्तरमें ढूँढ़कर देखा, वहाँ होश हवा-समें कोई नहीं है सब ही गलेतक शराब पीकर मस्त हो रहे हैं। राम राम, इन मतवालोंके दलको लेकर मैं उसीसे मिलने जाऊँ। यह मुझसे किसी तरह न होगा।

देर होती देखकर रतन विस्मयसे बोला, "उस जगह अँधेरेमें क्यों खड़े हो रहे हैं बाबूजी,—आइए, न !

मैं चटपट बोल उठा, "नहीं रतन, इस समय नहीं,—मैं चलता हूँ।"

रतन कुंठित होकर बोला, "माँ, किन्तु, राह देखती बैठी हैं—"

"राह देखती हैं ? तो देखने दे। उन्हें मेरा असंख्य नमस्कार जताकर कहना, कल जानेके पहले मुलाकात होगी,—इस समय नहीं। मुझे बड़ी नींद आ रही है रतन, मैं चलता हूँ।" इतना कहकर विस्मित, क्षुब्ध रतनको जवाब देनेका अवसर दिये बगैर ही मैं, जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ, उस तरफके तम्बूकी ओर चल दिया।

९

मनुष्यके भीतरकी वस्तुको पहिचान कर उसके न्याय-विचारका भार अन्तर्यामी भगवान्के ऊपर न छोड़कर मनुष्य जब स्वयं उसे अपने ही ऊपर लेकर कहता है 'मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ, यह कार्य मेरे द्वारा कदापि न होता, वह काम तो मैं मर जानेपर भी न करता, आदि,'—तब ये बातें सुनकर मुझे शर्म आये बिना नहीं रहती। और फिर केवल अपने मनके ही संबंधमें नहीं, दूसरोंके सम्बन्धमें भी, मैं, देखता हूँ, कि, मनुष्यके अहंकारका मानों अन्त ही नहीं है। एक दफे समालोचकोंके लेखोंको पढ़कर देखो, बिना हँसे रहा ही नहीं जाता। कविको अतिक्रम करके वे काव्यके मनुष्यको चीन्ह लेते हैं और जोरके साथ कहते हैं, "यह चरित्र किसी तरह भी वैसा नहीं हो सकता,—वह चरित्र कभी वैसा नहीं कर सकता,"—ऐसी और कितनी ही बातें है। लोग वाहवाही देकर कहते हैं, "वाह इसीको तो कहते हैं क्रिटिसिजम ! इसीको तो कहते हैं चरित्र समालोचना ! सच ही तो कहा है ! अमुक समालोचकके होते हुए चाहे जो कुछ लिख देनेसे

कैसे चल सकता है ? देखो, पुस्तकमें जो अंटसंट भूलें और भ्रान्तियाँ थीं वे सभी-किस तरह छान बीनकर रख दी गई हैं] " सो रख देने दो। भूल भला किससे नहीं होती ? किन्तु, फिर भी तो मैं अपने जीवनकी आलोचना करके,—यह सब पढ़कर, उन लोगोंकी लज्जाके मारे अपना सिर ऊपर नहीं उठा सकता। मन ही मन कहता हूँ, " हायरे दुर्भाग्य! यह जो कहा जाता है कि, मनुष्यके अन्तरकी वस्तु अनत है सो क्या केवल कहने-भरकी बात है ? दम्भ प्रकट करनेके समय क्या इसकी कानी कौड़ीकी भी कीमत नहीं है ? तुम्हारे कोटि जन्मोंके न जाने कितने असंख्य कोटि अद्भुत व्यापार इस अनंतमें मग्न रह सकते हैं और एकाएक जागरिक होकर तुम्हारी बहुज्ञता, तुम्हारा पढ़ना लिखना, तुम्हारी विद्वत्ता, और तुम्हारे मनुष्यकी जाँच करनेके क्षुद्र ज्ञान-भाण्डको एक मुहूर्तमें चूर्ण कर सकते हैं, यह बात क्या एक दफे भी तुम्हारे मनमें नहीं आती,—यह भी क्या तुम नहीं समझ सकते कि, यह सीमाहीन आत्माका आसन है ? "

यही तो मैंने अन्नदा जीजीमे अपनी आँखों देखा है। उनकी उज्ज्वल दिव्य मूर्ति इस समय तक भी तो नहीं भूली। जीजी जब चली गई तब न जाने कितनी गंभीर स्तब्ध रात्रियोंमें आँखोंके पानीसे मेरा तकिया भीग गया है, और मन ही मन मैंने कहा है कि, जीजी, मुझे अपने लिए अब और कुछ सोच नहीं है, तुम्हारे पारस-मणिके स्पर्शसे मेरे अन्तर-बाहिरका समस्त लोहा सोना हो गया है। अब कहीं किसी भी तरहकी आबो हवाकी दुष्टतासे जंग लगकर उसके क्षय होनेका डर नहीं है। परन्तु कहाँ गई तुम जीजी ! जीजी, और किसीको भी मैं अपने इस सौभाग्यका हिस्सा नहीं दे सका, और कोई भी तुम्हें नहीं देख पाया ! अन्यथा तुम्हारा दर्शन पाकर प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति सच्चरित साधु हो जाता, इसमें मुझे लेश-भर भी संदेह नहीं है। यह किस तरह संभव हो सकता है, इस बातको लेकर मैं उस समय बच्चोंकी-सी कल्पनाओंमें सारी रात जागकर बिता देता था। कभी मनमें आता, कि देवी चौधुरानीके* समान यदि कहींसे मैं सात घड़े मुहरें पा जाऊँ तो अन्नदा जीजीको एक बड़े भारी सिंहासनपर बैठा दूँ, जंगल काटकर, जगह साफ करके, देशके लोगोंको बुलाऊँ और उन्हें उनके सिंहासनके चारों ओर बसा दूँ। कभी सोचता, एक बड़े भारी बजरेमें उन्हें विराजमान करके बैंड बजाता

*स्व० बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके प्रसिद्ध उपन्यास 'देवी चौधुरानी' की मुख्य नायिका।

हुआ उन्हें देश-विदेशमें लिये फिरूँ। ऐसी न जाने कितने विलक्षण आकाश-कुसुमोंकी मैं मालाएँ गूँथता रहता, इस समय उन्हें याद करके भी मुझे हँसी आती है। साथ ही आँखोंमेंसे आँसू भी कुछ कम नहीं गिरते।

उस समय मेरे मनके भीतर यह विश्वास हिमाचलके समान दृढ़ होकर बैठ गया था कि मुझे मुग्ध कर सके ऐसी नारी इस लोकमें तो निश्चयसे नहीं है,—परन्तु परलोकमें भी है या नहीं, इसकी भी मानों मैं कल्पना नहीं कर सकता था! सोचता था कि जीवनमें जब कभी किसीके मुँहसे ऐसी कोमल बोली, होठोंमें ऐसी मधुर हँसी, ललाटपर ऐसा अलौकिक तेज, आँखोंमें ऐसी सजल करुण दृष्टि पाऊँगा, तभी मैं आँख उठाकर उसकी ओर देखूँगा। जिसे मैं अपना मन दूँगा वह भी मानों ऐसी ही सती साध्वी होगी; उसके भी प्रत्येक कदमपर मानों ऐसी ही अनिर्वचनीय महिमा फूट उठेगी, इसी तरह वह भी मानों संसारका समस्त सुख-दुख, समस्त अच्छा-बुरा, समस्त धर्म-अधर्म त्याग करके ही ग्रहण कर सकेगी।

मैं वही तो हूँ! तो भी आज सुबह नींद खुलते ही किसीके मुँहकी वाणी, किसीके होठोंकी हँसी, किसीके चक्षुओंके जलने, याद आकर, हृदयके थोड़ी-सी पीड़ा उत्पन्न कर दी। मेरी संन्यासिनी जीजीके साथ कहीं किसी भी अंशमें उसका बिन्दुमात्र भी सादृश्य था? फिर भी ऐसा ही मालूम हुआ! छःसात रोज पहले अन्तर्यामी भगवान् भी आकर यदि यह कहते तो; मैं हँसकर उड़ा देता और और कहता—“ अन्तर्यामी! इस शुभ्र कामनाके लिए तुम्हें हजारों धन्यवाद! किन्तु तुम अपना काम देखो, मेरी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है मेरे हृदयकी कसौटीपर असल सोना कसा जा चुका है, वहाँ अब पीतलकी दूकान खोलनेसे खरीददार नहीं जुटेंगे।”

परन्तु फिर भी खरीददार जुट गया। मेरे अन्तरमें, जहाँ कि अन्नदा जीजीके आशीर्वादसे खरा सोना भरा पड़ा था, एक अभागा, पीतलका लोभ नहीं सँभाल सका और उसे खरीद बैठा,—यह क्या कुछ कम अचरजकी बात है!

मैं खूब समझता हूँ कि जो लोग कठोर आलोचक हैं वे मेरी आत्म-कथामें इस स्थानपर अधीर होकर बोल उठेंगे कि, “ इतना फुलाकर—अतिरञ्जित करके आखिर, बाबू, तुम कहना क्या चाहते हो? अच्छी तरह स्पष्ट करके ही कह दो न कि वह कौन है! आज सोकर उठते ही प्यारीका मुँह याद करके तुम व्यथित हो उठे थे,—यही न? जिसे मनके दरवाजेपरसे ही झाड़ू मारकर

बिदा कर देते थे आज उसे ही बुलाकर घरमें बसाना चाहते हो,—यही न ? तो ठीक है। यदि यह सत्य है, तो इसके बीचमें तुम अपनी अन्नदा जीजीका नाम मत लो। क्योंकि, तुम चाहे जितनी बातें, चाहे जिस तरह बना-सजाकर क्यों न कहो, हम लोग मानव चरित्र खूब समझते हैं। हम यह जोर देकर कह सकते हैं कि सती साध्वीका आदर्श तुम्हारे मनके भीतर स्थायी नहीं हुआ, उसे अपनी सारी शक्ति लगाकर तुम कभी ग्रहण नहीं कर सके। यदि कर सके होते तो तुम इस मिथ्यामें अपनेको न भुला सकते।"

यह ठीक है। किन्तु अब और तर्क नहीं करूँगा। मैंने समझ लिया है कि मनुष्य अंततक किसी तरह भी अपना पूरा पूरा परिचय नहीं पाता। वह जो नहीं है, वही अपनेको समझ बैठता है और बाहर प्रचार करके केवल विडम्बनाकी सृष्टि करता है। और जो दण्ड इसका भोगना पड़ता है, वह भी बिल्कुल हलका नहीं होता। किन्तु रहने दो, मैं तो खुद जानता हूँ कि किस नारीके आदर्शपर इतने दिन क्या बात 'प्रीच' (उपदेश) करता फिरा हूँ। इसलिए, मेरी इस दुर्गतिके इतिहासपर लोग जब कहेंगे कि श्रीकान्त 'हम्बग-हिपोक्रेट' है, तब चुपचाप मुझे सुन ही लेना पड़ेगा। फिर भी मैं 'हिपोक्रेट' नहीं था; 'हम्बग' करनेका मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव सिर्फ इतना ही है कि मुझमे जो दुर्बलता अपने आपको छुपाये हुए थी उसकी खबर मैंने नहीं रक्खी। आज जब वह, समय पाकर, सिर उठाकर खड़ी हो गई और जब उसने अपने ही समान और भी एक दुर्बलताको सादर आह्वान करके एकबारगी अपने भीतर बिठा लिया, तब असह्य विस्मयसे मेरी आँखों-मेंसे आँसू गिर पड़े; किन्तु 'जा' कहकर उसे बिदा करते भी मुझसे नहीं बन पड़ा। यह भी मैं जानता हूँ कि आज लज्जाके मारे अपना मुँह छिपानेके लिए मेरे पास कोई स्थान नहीं है; किन्तु हृदयका कोना कोना पुलकसे आज परिपूर्ण जो हो उठा है! नुकसान जो होना हो सो हो, हृदय तो इसका त्याग करना नहीं चाहता!

"बाबू साहब!" राजाका नौकर आ पहुँचा। शय्यापर मैं सीधा होकर बैठ गया। उसने आदरपूर्वक कहा, "कुमार साहब तथा और भी बहुतसे लोग आपकी गत रात्रिकी कहानी सुननेके लिए आपके आनेकी राह देख रहे हैं।" मैंने पूछा, "उन्हें मालूम कैसा हुआ?" बेरा बोला, "तम्बूके दरबानने बतलाया है कि आप रातके अन्तमें वापिस लौट आये हैं।"

हाथ मुँह धो कपड़े बदल, जैसे ही मैं बड़े तम्बूके अन्दर गया कि सब लोगोंने एक साथ शोर मचा दिया। एक ही साथ मानों एक लाख प्रश्न हो गये। मैंने देखा कि कलके वे वृद्ध महाशय भी वहाँ हैं और एक तरफ प्यारी भी अपने दल-बलको लेकर चुपचाप बैठी है। रोजके समान आज उससे चार आँखें नहीं हुई। मानों वह जान-बूझकर ही और किसी तरफ आँखें फिराये बैठी थी।

आकुल सवालोंकी लहरके शांत होते ही मैंने जवाब देना शुरू किया कुमारजी बोले, "धन्य है तुम्हारा साहस, श्रीकान्त। कितनी रातको वहाँ पहुँचे थे?"

"बारह और एकके बीच।"

वृद्ध महाशय बोले, "घोर अमावास्या!—साढे ग्यारह बजेके बाद अमावस पड़ी थी।"

चारों तरफसे अचरजसूचक ध्वनि उठकर क्रमशः शान्त होते हो कुमारजीने फिर प्रश्न किया, "उसके बाद क्या देखा?"

मैं बोला, "दूरतक फैले हुए हाड़-पिंजर और खोपड़ियाँ।"

कुमारजी बोले, "उफ, कैसा भयङ्कर साहस है! श्मशानके भीतर गये थे या बाहर खड़े रहे थे?"

मैं बोला, "भीतर जाकर एक बालूके ढूहपर जाकर बैठ गया था।"

"उसके बाद—उसके बाद? बैठकर क्या देखा?"

"बालूके टीले साँय साँय कर रहे हैं।"

"और?"

"काँसके झुरमुट और सेमरके वृक्ष।"

"और?"

"नदीका पानी।"

कुमारजी अधीर होकर बोला, "यह सब तो जानता हूँ जी! पूछता हूँ कि वह सब कुछ—"

मैं हँस पड़ा और बोला, "और दो एक बड़े चमगीदड़ सिरके ऊपरसे उड़कर जाते हुए देखे थे।"

वृद्ध महाशयने स्वयं उस समय आगे बढ़कर पूछा, "और कुछ नहीं देखा?" मैं बोला, नहीं।"

उत्तर सुनकर तम्बू-भरके सब आदमी मानों निराश हो गये। उस समय

वृद्ध महाशय एकाएक क्रुद्ध हो उठे, "ऐसा कभी हो नहीं सकता। आप गये ही नहीं।" उनके गुस्सेको देखकर मैंने सिर्फ हँस दिया। क्योंकि बात ही गुस्से होनेकी थी। कुमारजी मेरा हाथ दबाकर मिन्नतभरे स्वरसे बोले, "तुम्हें कसम है श्रीकान्त, क्या देखा, सच सच कह दो।"

"सच ही कहता हूँ, कुछ नहीं देखा।"

"कितनी देर ठहरे वहाँपर।"

"तीनेक घण्टे।"

"अच्छा, देखा नहीं, कुछ सुना भी नहीं ?"

"सुना।"

क्षण-भरमें ही सबका मुँह उत्साहसे प्रदीप्त हो उठा। क्या सुना, उसे सुननेके लिए लोग कुछ और भी आगे सरक आये। तब मैंने कहना शुरू किया कि किस तरह रास्तेके ऊपर एक रात्रि-चर पक्षी 'बाप्' कहकर उड़ गया; किस तरह बच्चेकी-सी आवाजमें एक पक्षीके बच्चेने सेमरके वृक्षपर रिरिया-रिरिया कर रोना शुरू कर दिया; किस तरह एकाएक आँधी उठी और मृत मनुष्योंकी खोपड़ियाँ दीर्घ श्वास छोड़ने लगीं और सबके अन्तमें किस तरह मानों कोई मेरे पीछे खड़ा होकर लगातार बरफ सरीखी ठंडी साँस दाहिने कानमें छोड़ने लगा। मेरा कथन समाप्त हो गया किन्तु देरतक किसीके मुँहसे एक भी शब्द बाहर न निकला। सारा तम्बू मानों सन्न हो रहा। अन्तमें वह वृद्ध व्यक्ति एक लम्बी उसास छोड़कर मेरे कन्धेपर एक हाथ रखकर, धीरे धीरे बोला, "बाबूजी, आप सचमुच ही ब्राह्मणके बच्चे हैं, इसलिए कल अपनी जान लिए लौट आये। नहीं तो और कोई जिन्दा नहीं लौट सकता था। किन्तु, आजसे इस बुड्ढेकी कसम है बाबूजी, फिर कभी ऐसा दुःसाहस न कीजिएगा। आपके माँ-बापके चरणोंमें मेरे कोटि कोटि प्रणाम,—केवल उन्हींके पुण्य-प्रतापसे आप बच गये हैं।" इतना कहकर उसने झोंकमें आकर चटसे मेरे पैर छू लिये।

पहले कह चुका हूँ कि यह मनुष्य बात कहना खूब जानता था। इस दफे उसने कहना शुरू किया। आँखोंकी पुतलियाँ और भौंहें, कभी सिकोड़कर और कभी फैलाकर, कभी बुझाकर और कभी प्रज्ज्वलित करके उसने पक्षीके रोनेसे शुरू करके कानपर ठंडी उसासके छोड़ने पर्य्यन्तकी ऐसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या जुटाई कि, दिनके समय, इतने लोगोंके बीच बैठे हुए भी, मेरे सिरके

बालतक काँटोंकी तरह खड़े हो गये। कल सुबहकी तरह आज भी प्यारी गुप-चुप कब सरक कर समीप आ बैठी थी, इसपर मेरा ध्यान नहीं गया। एकाएक एक उसासके शब्दसे गर्दन घुमाकर मैंने देखा कि वह ठीक मेरी पीठके पीछे बैठी हुई निर्निमेष दृष्टिसे बोलनेवालेके मुँहकी ओर देख रही है और उसके दोनों चिकने उजले गालोंपर झड़े हुए अश्रुओंकी दो धाराएँ सूखकर फूट उठी हैं। कब और किस लिए वह आँखोंका जल बह निकला था, शायद वह बिल्कुल ही जान नहीं सकी; नहीं तो उन्हें पोंछ डालती। किन्तु, उसी अश्रुकलुषित तल्लीन मुखका पलभरका दृष्टिपात ही मेरे हृदयमें एक अग्निकी रेखा अङ्कित कर गया। बात समाप्त होते ही वह उठकर खड़ी हो गई और कुमारजीको सलाम करके, अनुमति माँगकर, धीरे धीरे बाहर हो गई।

आज सुबह ही मेरे विदा होनेकी बात थी। परन्तु, शरीर स्वस्थ नहीं था, इसलिए कुमारजीका अनुरोध स्वीकार करके मैं उस समय, जाना स्थगित करके, अपने तम्बूमें वापिस लौट आया। इतने दिनोंके बाद आज प्यारीके आचरणमें पहले मैंने दूसरा भाव देखा। इतने दिन उसने परिहास किया है, व्यंग किया है, और कलहका आभास तक भी उसके दोनों नेत्रोंकी दृष्टिमें कुछ दिन घनीभूत हो गया है,—यह सब मैंने अनुभव किया है। परन्तु, इस तरहकी उदासीनता पहले कभी नहीं देखी। फिर भी, व्यथित होनेके बदले मैं खुश ही हुआ। क्यों, सो जानता हूँ। यद्यपि युवती स्त्रियोंके मनकी गति-विधिको लेकर माथापच्ची करना मेरा पेशा नहीं है, और न इसके पहले यह काम मैंने कभी किया ही है, पर मेरे मनके भीतर जो बहुत जन्मोंकी अखण्ड धारावाहिकता छिपी हुई मौजूद है, उसके बहुदर्शनकी अभिज्ञातासे रमणी-हृदयका गूढ़ तात्पर्य स्पष्ट प्रतिभासित हो उठा। वह उसे अपना अपमान समझकर क्षुब्ध, नहीं हुआ वरन् उसे प्रणय-अभिमान समझकर पुलकित हो उठा। शायद, इसी छिपी हुई धारावाहिकताके ही गुप्त इशारेसे मैंने अपनी श्मशान-यात्राके यहाँ तकके इतिहासमें, इस बातका उल्लेख तक नहीं किया कि प्यारीने कल-रातको मुझे श्मशानसे लौटा लानेके लिए आदमी भेजे थे और वह स्वयं भी बात पूरी होते ही उसी तरह गुप-चुप बाहर चली गई थी। इसीलिए है यह अभिमान! कल रातको लौटकर उससे मुलाकात करके मैंने यह नहीं कहा कि वहाँ क्या हुआ था। उसे जिस बातको अकेले बैठकर सुननेका सबसे पहले अधिकार था उसीको आज वह सबसे पीछे बैठकर मानों

दैवात् ही सुन सकी है। परन्तु, अभिमान भी इतना मीठा होता है!—जीवनमें उसके स्वादको उस दिन सबसे पहले उपलब्ध करके मैं बच्चेकी तरह एकांतमें बैठ गया और लगातर चख-चखकर उसका उपभोग करने लगा।

आज दोपहरको मैं सो जाना चाहता था। बिस्तरोंपर लेटे लेटे बीच बीचमें तन्द्रा भी आने लगी; परंतु रतनके आनेकी आशा बार बार हिला हिलाकर उसे तोड़ देने लगी। इस तरह समय तो निकल गया परंतु रतन नहीं आया। वह आयगा अवश्य, यह विश्वास मेरे दिलमें ऐसा दृढ़ हो रहा था कि, जब बिस्तर छोड़ बाहर आकर मैंने देखा कि सूर्य पश्चिमकी ओर ढुल पड़ा है, तब मुझे मन ही मन यह निश्चय हो गया कि जब मैं तन्द्रामें पड़ा हुआ था तब रतन, मेरे यहाँ आया है और मुझे निद्रित समझकर, लौट गया है।—मूर्ख! एक दफे पुकार ही लेता तो क्या हो जाता! दोपहरका निर्जन समय यों ही निरर्थक चला गया, यह सोचकर मैं क्रुद्ध हो उठा; परंतु संध्याके बाद वह फिर आयगा और एक छोटा-सा अनुरोध,—नहीं तो लिखा हुआ एक पुर्जा,—जो कुछ भी हो, गुप-चुप हाथमें थमा जायगा: इसमें मुझे जरा भी संशय नहीं था। किन्तु यह समय कटे किस तरह? सामनेकी ओर देखते ही कुछ दूरपर बहुत-सी जल-राशि एक दम मेरी आँखोंके ऊपर झक् झक् कर उठी। वह किसी विस्मृत जमीन्दारका विशाल यश था। वह तालाब करीब आध कोस विस्तृत था। उत्तरकी ओरसे वह खिसलकर पुर गया था और घने जंगलसे ढँक गया था। गाँवके बाहर होनेके कारण गाँवकी स्त्रियाँ उसके जलका उपयोग नहीं कर पाती थीं। बातों ही बातोंमें सुना था कि यह तालाब कितना पुराना है और किसने बनवाया था, इसका पता किसीको नहीं है। एक पुराना टूटा घाट था, उसीके एकान्तमें जाकर मैं बैठ गया। एक समय इसके चारों ओर बढता हुआ गाँव था जो न जाने कब हैज़े और महामारीके प्रकोपसे ऊजड़ होकर, फिर अपने वर्तमान स्थानमे, सरक आया है। छोड़े हुए मकानोंके बहुत-से निशान चारों ओर विद्यमान हैं। डूबते हुए सूर्यकी तिरछी किरणोंकी छटाने धीरे धीरे झुककर तालाबके काले पानीमें सोना मथ दिया, मैं एकटक होकर देखता रहा।

इसके बाद धीरे धीरे सूर्य डूब गया। तालाबका काला पानी और भी काला हो गया। पासके ही जंगलमेंसे दो-एक प्यासे सियार बाहर निकल कर डरते डरते पानी पीकर चले ये। वहाँसे मेरे उठनेका समय हो गया

है,—जिस समयको काटनेके लिए मैं वहाँ गया था वह कट गया है, यह सब अनुभव करके भी मैं वहाँसे उठ न सका,—मानों उस टूटे घाटने मुझे ज़बरन वहाँ बिठा रखा।

खयाल आया कि जहाँ पैर रखकर मैं बैठा हुआ हूँ वहींपर पैर रखकर न जाने कितने आदमी कितनी दफे आये हैं, गये हैं। इसी घाटपर वे स्नान करते थे, मुँह धोते थे, कपड़े छाँटते और जल भरते थे। इस समय वे कहाँके किस जलाशयमें ये समस्त नित्य-कर्म पूर्ण करते होंगे? यह गाँव जब जीवित था तब निश्चयसे वे लोग इस समय यहाँ आकर बैठते थे। कितने ही गान गाकर और कितनी ही बातें करके दिन-भरकी थकावट दूर करते थे। इसके बाद अकस्मात् एक दिन जब महाकाल महामारीका रूप धारण करके सारे गाँवको नोच ले गया तब न जाने कितने मरणोन्मुख व्यक्ति प्यासके मारे यहाँ दौड़े आये हैं और इसी घाटके ऊपर अपना अंतिम श्वास छोड़कर उसके साथ चले गये हैं। शायद उनकी पिपासातुर आत्मा आज भी यहींपर चक्कर काटती फिरती होगी। यह भी कौन जोर देकर कह सकता है कि जो आँखोंसे नहीं दिखाई देता वह है ही नहीं? आज सुबह ही उस वृद्धने कहा था, "बाबूजी, मनमें यह कभी मत सोचना कि मृत्युके उपरान्त कुछ शेष नहीं रहता,—असहाय प्रेतात्माएँ हमारे ही समान सुख-दुख क्षुधा-तृष्णा लेकर विचरण नहीं करतीं।" इतना कहकर उसने वीर विक्रमाजीतकी कथा, और न जाने कितनी ही तांत्रिक साधु-संन्यासियोंकी कहानियाँ विस्तारसे कह सुनाई थीं। और कहा था कि, "यह भी मत सोचना कि समय और सुयोग मिलनेपर वे दिखाई नहीं देती हैं या बात नहीं कर सकती हैं, अथवा नहीं करती हैं। तुम्हें उस स्थानपर और कभी जानेके लिए मैं नहीं कहता, परन्तु जो लोग यह काम कर सकते हैं उनके समस्त दुःख किसी भी दिन सार्थक नहीं होते, इस बातपर स्वप्नमें भी कभी अविश्वास मत करना।"

उस समय, सुबहके प्रकाशमें, जिन कहानियोंने केवल निरर्थक हँसीका उपादान जुटा दिया था, इस समय वे ही कहानियाँ इस निर्जन गहरे अंधकारके बीच कुछ दूसरे ही किस्मके चेहरे धारण करके दिखाई दीं। मनमें आने लगा कि जगत्‌में प्रत्यक्ष सत्य यदि कोई वस्तु है तो वह मृत्यु ही है। भली बुरी सुख-दुखकी ये जीवनव्यापी अवस्थाएँ मानों आतिशबाजी हैं, जो तरह तरहके साज-सरंजामके समान केवल किसी एक विशेष दिन जलकर राख हो

जानेके लिए ही इतने यत्न और कौशलके साथ बनकर तैयार हुई हैं। तब मृत्युके उस पारका इतिहास यदि किसी तरह सुन लिया जा सके तो उसकी अपेक्षा बड़ा लाभ और क्या है ? फिर उसे कोई भी कहे और कैसे भी कहे।

हठात् किसीके पैरोंके शब्दसे मेरा ध्यान भंग हो गया। पलटकर देखा, केवल अंधकार है, कहीं कोई नहीं है। मै बदन झाड़कर उठ खड़ा हुआ। गत रात्रिकी बात याद करके मन ही मन हँसकर बोला, नहीं, अब और यहाँ नहीं बैठ रहना चाहिए। कल दाहिने कानके ऊपर उसास छोड़ गया था आज आकर यदि बाँयें कानपर छोड़ना शुरू कर दे, तो यह कुछ अधिक सहज न होगा।

वहाँ बैठे बैठे कितनी देर हो गई थी और अब कितनी रात है, यह मैं ठीक तौरसे निश्चित नहीं कर सका। मालूम होता है कि आधी रातके आसपासका समय होगा। परंतु अरे यह क्या ? चला जा रहा हूँ तो चला ही जा रहा हूँ, उस सकरी पगडडीका जैसे अन्त ही नहीं होता ! इतने बहुतसे तम्बुओंमेंसे एक दीपकका भी प्रकाश नजर नहीं आता ! बहुत देरसे सामने एक बाँसका वृक्ष नजर रोककर खड़ा था; एकाएक खयाल आया कि इसे तो आते समय देखा नहीं था ! दिशा भूलकर, कहीं और किसी ओर तो नहीं चल दिया हूँ ? कुछ और चलनेपर मालूम हुआ कि वह बाँसका वृक्ष नहीं है, किन्तु, कुछ इमलीके पेड़, एक दूसरेसे सटे हुए, दिशाओंको ढके जमात बाँधकर खड़े हैं और उन्हींके नीचेसे रास्ता टेढा मेढा होकर अदृश्य हो गया है। स्थान इतना अंधकारपूर्ण है कि अपना हाथ भी अपनेको नहीं दिखाई देता। छाती धड़धड़ाने लगी।—अरे मैं जा कहाँ रहा हूँ ? आँख कान बन्द करके किसी तरह उन इमलीके वृक्षोंके पार जाकर देखता हूँ कि सामने अनन्त काला आकाश, जितनी दूर नजर जाती है उतनी दूरतक, विस्तृत हो रहा है। किन्तु, सामने वह ऊँची-सी जगह क्या है ? नदीके किनारेका सरकारी बाँध तो नहीं है ? दोनों पैर मानों टूटनेसे लगे, फिर भी उन्हे किसी तरह घसीटकर मैं उसके ऊपर चढ़ गया। जो सोचा था ठीक वही हुआ। उसके ठीक नीचे ही वह महा श्मशान था ! फिर किसीके कदमोंका शब्द सामनेसे होकर नीचे श्मशानमें जाकर विलीन हो गया। इस बार मैं किसी तरह लडखड़ाता हुआ चला और उसी धूल-रेतीके ऊपर बेहोशकी तरह धप् से बैठ गया। अब मुझे लेश-भर भी सन्देह नहीं रहा कि कोई मुझे एक महा श्मशानसे लेकर दूसरे महा श्मशानतक

रास्ता दिखाता हुआ पहुँचा गया है। जिसके पद-शब्द सुनकर, उस फूटे घाटपर, शरीर झाड़कर मैं उठ खड़ा हुआ था उसीके पद-शब्द, इतनी देर बाद, उस तरफ, सामनेकी ओर, विलीन हो गये।

१०

हरेक घटनाका कारण जाननेकी जिद मनुष्यको जिस अवस्थामें होती है उस अवस्थाको मैं पार कर गया हूँ। इसलिए, किस तरह उस सूची-भेद्य अन्धकार-पूर्ण आधी रातको मैं अकेला, रास्तेको पहिचानता हुआ, तालाबके टूटे घाटसे इस महा श्मशानके समीप आ उपस्थित हुआ, और किसके क़दमोंकी वह आवाज़, उस स्थानसे बुलाती और इशारा करती हुई, इतनी ही देरमें सामने विलीन हो गई, इन सब प्रश्नोंकी मीमांसा करने-जैसी बुद्धि मुझमें नहीं है। पाठकोंके समीप अपने इस दैन्यको स्वीकार करनेमें मुझे जरा भी लज्जा नहीं है। यह रहस्य आज भी मेरे समीप उतने ही अन्धकारसे ढँका हुआ है। परन्तु, इसीलिए, प्रेत योनिको स्वीकार करना भी इस स्वीकारोक्तिका प्रच्छन्न तात्पर्य नहीं है। क्यों कि, अपनी आँखों मैंने देखा है,—हमारे गाँवमें एक पागल था। वह दिनको, घर घर घूमकर, भीख माँगकर खाता था। और रातको बाँसके ऊपर कपड़ा डालकर, और उसे सामनेकी ओर ऊँचा करके, रास्ते रास्ते बगीचोंके झाड़ोंकी छायामें, घूमता फिरता था। उसके चेहरेको देखकर अँधेरेमें न जाने कितने लोगोंकी दँतौरी बँध बँध गई है। इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था, फिर भी यह उसका अँधेरी रातका नित्यका काण्ड था। मनुष्यको व्यर्थ ही डर दिखानेके लिए और भी जितने प्रकारके अद्भुत ढँग वह करता था उनकी सीमा नहीं थी। सूखी लकड़ियोंके गट्ठेको पेड़की डालसे बाँधकर उसमें आग लगा देता, मुख-पर काली स्याही पोतकर विशालाक्षी देवीके मंदिरमें बहुत क्लेश सहते हुए खड़ा रहता और उठा-बैठा करता, गहरी रातके समय घरके पिछवाड़े बैठ-कर नाकके सुरसे किसानोंके नाम ले-लेकर पुकारा करता;—परन्तु, फिर भी, कोई किसी दिन उसे पकड़ न पाया! दिनके समय उसकी चाल-चलन, स्वभाव-चरित्र आदि देखकर उसपर जरा-सा सन्देह करनेकी बात किसीके भी मनमें उदय नहीं हुई। और यह केवल हमारे ही गाँवमें नहीं,—पासके आठ-दस गाँवोंमें भी वह यही करता फिरता था। मरते समय वह अपनी

बदजाती खुद ही स्वीकार कर गया और उसके मरनेके बाद भूतका उपद्रव भी वहाँ बन्द हो गया। इस क्षेत्रमे भी शायद वैसा ही कुछ था,—शायद नहीं भी हो। परन्तु जाने दो इस बातको।

हाँ, कह रहा था कि, उस धूल और रेतीसे भरे हुए बाँधके ऊपर जब मैं हतबुद्धि-सा होकर बैठ गया तब केवल दो लघु पद ध्वनियाँ भीतर जाकर धीरे धीरे विलीन हो गई। खयाल आया, मानों उसने स्पष्ट करके बता दिया हो, —"राम राम, तूने यह क्या किया? मुझे इतनी दूरतक रास्ता बताकर ले आया, सो क्या वहाँ बैठ जानेके लिए? आ, आ! एक दफे हम लोगोंके भीतर चला आ! इस तरह अपवित्र अस्पृश्यके समान प्रागणके एकान्तमें मत बैठ,—हम सबके बीचमें आकर बैठ।" यह बात मैंने कानोंसे सुनी थी या हृदयके भीतर अनुभव की थी, सो अब याद नहीं कर सकता। परन्तु, उस समय भी जो मुझे होश बना रहा, इसका कारण यह है कि चैतन्यको जबर्दस्ती पकड़ रखनेसे वह यों ही एक प्रकारसे बचा रहता है, बिल्कुल ही नहीं चला जाता, यह मैंने अच्छी तरह देखा है। इसीलिए, यद्यपि दोनों आँखोंको खोलकर मैं देखता रहा, परन्तु वह मानों तन्द्राका देखना था। वह न तो नींद ही थी और न जागरण ही था। उसमे निद्रितका विश्राम भी नहीं रहता और जाग्रतका उद्यम भी नहीं आता।

फिर भी मैं इस बातको नहीं भूला कि बहुत रात बीत गई है, मुझे तम्बूमें लौटना है और उसके लिए कमसे कम एक बार चेष्टा तो करनी चाहिए; किन्तु, मनमें लगा कि यह सब व्यर्थ है। यहाँपर मैं अपनी इच्छासे तो आया नहीं हूँ, आनेकी कल्पना भी नहीं की; इसलिए, जो मुझे इस दुर्गम रास्तेपर रास्ता दिखलाकर लाया है, उसका कुछ विशेष प्रयोजन है। वह मुझे यों ही न लौट जाने देगा। पहले मैंने सुना था कि अपनी इच्छासे इनके हाथोंसे छुटकारा नहीं मिलता। चाहे जिस रास्ते चाहे जिस तरह जोर करके क्यों न निकलो, सब रास्ते गोरखधंधेकी तरह घुमा-फिराकर पुरानी जगहपर ही लाकर हाजिर कर देते हैं!

इसलिए, चंचल होकर छटपटाना सम्पूर्ण तौरसे अनावश्यक समझकर, मैं किसी तरहकी हिलने डुलनेकी भी चेष्टा किये बिना, जब स्थिर होकर बैठ गया तब जो वस्तु अकस्मात् मुझे देख पड़ी, वह मुझे किसी दिन भी विस्मृत नहीं हुई।

रात्रिका भी स्वतंत्र रूप होता है और उसे, पृथिवीके झाड़-पाले, गिरिपर्वत आदि जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं उनसे, अलग करके देखा जा सकता है, यह मानों आज पहले मेरी दृष्टिमें आया। मैंने आँख उठाकर देखा कि अन्तहीन काले आकाशके नीचे, सारी पृथिवीपर आसन जमाये, गंभीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये बैठी है और सम्पूर्ण चराचर विश्व मुख बन्द किये, साँस रोके, अत्यंत सावधानीसे स्तब्ध होकर उस अटल शान्तिकी रक्षा कर रहा है। एकाएक आँखोंके ऊपरसे मानों सौन्दर्यकी एक लहर दौड़ गई। मनमें आया कि किस मिथ्यावादीने यह बात फैलाई है कि केवल प्रकाशका ही रूप होता है, अन्धकारका नहीं ? भला, इतनी बड़ी झूठ मनुष्यने किस तरह चुपचाप मान ली होगी ! यह तो आकाश और मर्त्य, सबको परिव्याप्त करके, दृष्टिसे भीतर-बाहर, अन्धकारका पूर बढ़ा आ रहा है। वाह वाह ! ऐसा सुन्दर रूपका झरना और कब देखा है ! इस ब्रह्माण्डमें जो जितना गम्भीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है,—वह उतना ही अन्धकारमय है। अगाध समुद्र स्याही जैसा काला है; अगम्य गहन अरण्यानी भीषण अन्धकारमय है। सर्व लोकोंका आश्रय, प्रकाशका भी प्रकाश, गतिकी भी गति, जीवनका भी जीवन, सम्पूर्ण सौन्दर्यका प्राण-पुरुष भी, मनुष्यकी दृष्टिमें निबिड़ अन्धकारमय है। मृत्यु इसीलिए मनुष्यकी दृष्टिमें काली है, और इसीलिए उसका परलोक-पंथ इतने दुस्तर अँधेरेमें मग्न है ! इसीलिए राधाके दोनों नेत्रोंमें समाकर जिस रूपने प्रेमके पूरमें जगत्को बहा दिया, वह भी घनश्याम है ! मैंने कभी ये सब बातें सोचीं नहीं, किसी दिन भी इस रास्ते चला नहीं; फिर भी न जाने किस तरह इस भयसे भरे हुए महाश्मशानके समीप बैठकर, अपने इस निरुपाय निःसङ्ग अकेलेपनको लाँघकर, आज सारे हृदयमें एक अकारण रूपका आनन्द खेलने फिरने लगा और बिल्कुल एकाएक यह बात मनमें आई कि कालेमें इतना रूप है, सो पहले तो किसी दिन समझा नहीं ! तब तो शायद मृत्यु भी काली होनेके कारण कुत्सित नहीं है; एक दिन जब वह मुझे दर्शन देने आवेगी तब शायद उसके इस प्रकारके, कभी समाप्त न होनेवाले, सुन्दर रूपसे मेरी दोनों आँखें जुड़ा जायँगीं। और अगर वह दर्शन देनेका दिन आज ही आ गया हो, तो हे मेरे काले ! ओ मेरी समीपस्थ पदध्वनि ! हे मेरे सर्व-दुःख-भय-व्यथाहारी अनन्त सुन्दर ! तुम अपने अनादि अन्धकारसे सर्वाङ्ग भरकर मेरी इन दोनों

आँखोंकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष होओ, मैं तुम्हारे इस अन्ध अन्धकारसे घिरे हुए निर्जन मृत्युमंदिरके द्वारपर, तुम्हें निर्भयतासे वरण करके बड़े आनन्दसे तुम्हारा अनुकरण करता हूँ। सहसा मेरे मनमें आया,—तब उसके इस निर्वाक् आह्वानकी उपेक्षा करके अत्यन्त हीन अन्तेवासीके समान, मैं यहाँ बाहर किस लिए बैठा हूँ? एक दफे भीतर बीचमें जाकर क्यों न जा बैठूँ?

नीचे उतरकर मैं श्मशानके ठीक बीचों बीच बिल्कुल जमकर बैठ गया। कितनी देरतक इस तरह स्थिर बैठा रहा, इसका मुझे उस समय होश नहीं था। होश आनेपर देखा कि उतना अन्धकार अब नहीं रहा है,—आकाशका एक प्रान्त मानों स्वच्छ हो गया है: और, उसके पास ही शुक्र तारा चमक रहा है। कुछ दबी हुई-सी बातचीतका कोलाहल मेरे कानोंमें पहुँचा। अच्छी तरह निरीक्षण करके देखा, कि दूरपर सेमरके वृक्षकी आड़में, बाँधके ऊपरसे होकर, कुछ लोग चले आ रहे हैं; और उनकी दो-चार लालटेनोंका प्रकाश भी आसपास इधर-उधर डुल रहा है। फिरसे, बाँधके ऊपर चढ़कर, उस प्रकाशमें ही मैंने देखा कि दो बैलगाड़ियोंके आगे-पीछे कुछ लोग इसी ओर बढ़े आ रहे हैं। समझ पड़ा कि कुछ लोग इस रास्ते होकर स्टेशनकी ओर जा रहे हैं।

मुझे उस समय यह सुबुद्धि सूझ आई कि रास्ता छोड़कर मेरा दूर खिसक जाना आवश्यक है। क्योंकि, आगंतुकोंका दल चाहे कितना भी बुद्धिमान् और साहसी क्यों न हो, एकाएक इस अंधेरी रात्रिमें, इस तरहके स्थानमें मुझे अकेला भूतकी तरह खड़ा देख कर चाहे और कुछ न करे, परंतु एक विकट चीख-पुकार अवश्य मचा देगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मैं लौटकर अपनी पुरानी जगहपर जा खड़ा हुआ; और थोड़े समय बाद ही दो चटाई लगी हुई बैलगाड़ियाँ, पाँच छह आदमियोंके पहरेमें, मेरे सामने आ पहुँचीं। एक बार खयाल आया कि आगे चलनेवाले दो आदमी मेरी ओर देखकर, क्षण कालके लिए स्थिर हो, खड़े रहे और अत्यधिक धीमें स्वरमे मानों कुछ कह-सुनकर आगे चले गये; और थोड़ी-सी ही देरमें वह सारा दल, बाँधके किनारेकी एक झाड़ीकी ओटमें, अदृश्य हो गया। यह अनुभव करके कि रात अब अधिक बाकी नहीं रही है, जब मैं लौटनेकी तैयारी कर रहा था, ठीक उसी समय उन वृक्षोंकी ओटमेंसे आती हुई खूब ऊँचे कण्ठकी पुकार कानोंमें आई, "श्रीकान्त बाबू—"

मैंने उत्तर दिया, "कौन है रे, रतन?"

" हाँ बाबू, मैं ही हूँ। जरा आगे बढ़ आइए।" जल्दीसे बाँधके ऊपर चढ़कर पुकारा, " रतन, तुम लोग क्या घर जा रहे हो ?"

रतनने उत्तर दिया, " हाँ, घर जा रहे हैं,—माँ गाड़ीमें हैं।"

मेरे निकट पहुँचते ही प्यारीने पर्देमेंसे मुँह बाहर निकालकर कहा, " दरबानकी बात सुनकर ही मैं समझ गई थी कि तुम्हें छोड़ और कोई नहीं है, गाड़ीपर आओ, कुछ बात करनी है !"

मैंने निकट आकर पूछा, " क्या बात है ?"

" कहती हूँ, ऊपर आ जाओ।"

" नहीं, ऐसा नहीं कर सकता, समय नहीं है। सुबह होनेके पहले ही मुझे तम्बूमें पहुँचना है।" प्यारीने हाथ बढ़ाकर चटसे मेरा दाहिना हाथ पकड़ लिया और तेज ज़िदके स्वरमें कहा, " नौकर-चाकरोंके सामने छीना-झपटी मत करो,—तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, चुपचाप ऊपर चढ़ आओ—"

उसकी अस्वाभाविक उत्तेजनासे मानों कुछ हत-बुद्धि-सा होकर मैं गाड़ी-पर चढ़ गया। प्यारीने गाड़ीको हाँकनेकी आज्ञा देकर कहा, " आज फिर इस जगह क्यों आये ?"

मैंने सच सच बात कह दी " नहीं मालूम, क्यों आया।"

प्यारीने अब तक भी मेरा हाथ नहीं छोड़ा था। बोली, तुम्हें नहीं मालूम ? अच्छा, ठीक, परंतु छिपकर क्यों आये थे ?"

मैं बोला, " यह ठीक है कि यहाँ आनेकी बात किसीको मालूम नहीं है, किन्तु छिपकर नहीं आया हूँ।"

" यह झूट बात है।"

" नहीं।"

" इसका मतलब ?"

" मतलब यदि खोलकर बता दूँगा तो विश्वास करोगी ? न तो मैं छिपकर ही आया हूँ, और न मेरी इच्छा ही आनेकी थी।"

प्यारीने व्यंगके स्वरमें कहा, " तो फिर तुम्हें तम्बूमेंसे भूत उड़ा ले आया है,—मालूम होता, यही कहना चाहते हो, क्यों ?"

" नहीं, सो नहीं कहना चाहता। उड़ाकर कोई नहीं लाया, अपने ही पैरों चलकर आया हूँ, यह भी सच है किन्तु क्यों आया, कब आया, सो नहीं कह सकता।"

प्यारी चुप हो रही। मैं बोला, "राजलक्ष्मी, नहीं जानता कि तुम विश्वास कर सकोगी या नहीं; परन्तु, वास्तवमें जो कुछ हुआ है, सो एक अचरज-भरा व्यापार है।" इतना कहकर मैंने सारी घटना अथसे इतिपर्यंत कह दी।

सुनते सुनते मेरे हाथमें रखा हुआ उसका हाथ कई बार सिहर उठा; परन्तु, उसने एक भी बात नहीं कही। पर्दा उठा हुआ था, पीछेकी ओर नजर डालकर देखा, आकाश उज्ज्वल हो गया है। बोला, "अब मैं जाऊँ?"

प्यारीने स्वप्नाविष्टकी तरह कहा "नहीं।"

"नहीं कैसे? इस तरह चले जानेका अर्थ क्या होगा, सो जानती हो?"

"जानती हूँ,—सब जानती हूँ। परन्तु, ये लोग तुम्हारे अभिभावक या संरक्षक तो हैं नहीं, जो तुम्हें अपने मानके लिए प्राण दे देने होंगे।" इतना कहकर उसने हाथको छोड़कर पैर पकड़ लिये और रुद्ध स्वरमें कहा, कान्त दादा, वहाँ लौटकर जाओगे तो जीते न बचोगे। तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा, परन्तु वहाँ भी वापिस न लौटने दूँगी। तुम्हारा टिकिट खरीदे देती हूँ, तुम घर लौट जाओ, वहाँ एक घड़ी-भरके लिए भी मत ठहरो।"

मैं बोला, "मेरे कपड़े-बिस्तर आदि जो वहाँ पड़े हैं!"

प्यारी बोली, "पड़े रहने दो। उनकी इच्छा होगी तो भेज देंगे: नहीं तो जाने दो। उनका मूल्य अधिक नहीं है।"

मैं बोला, "उनका दाम अधिक नहीं है यह सच है; परन्तु, मेरी जो मिथ्या बदनामी होगी, उसका दाम तो कम नहीं है।"

प्यारी मेरे पैर छोड़कर चुप हो रही। गाड़ी इसी समय एक मोड़पर फिरी, जिससे पीछेका दृश्य मेरे सामने आ गया। एकाएक याद आया कि सामनेके उस पूर्व दिशाके आकाशके साथ इस पतिताके मुखकी मानों एक गहरी समानता है। दोनोंके ही बीचसे मानों एक विराट् अग्नि-पिंड अन्धकारको भेद करता हुआ आ रहा है, उसीका आभास मुझे दिखाई दिया है। मैं बोला, "चुप क्यों हो रहीं?"

प्यारी एक म्लान हँसी हँसीकर बोलीं, "तुम क्या जानो कान्त बाबू, कि जिस कलमसे जीवन-भर केवल जाली खत लिखती रही हूँ, उसी कलमसे आज दान-पत्र लिखनेको हाथ नहीं चल रहा है। जाते हो? अच्छा जाओ। किन्तु वचन दो कि आज बारह बजनेके पहले ही वहाँसे चल दोगे?"

"अच्छा, देता हूँ।"

" किसीके कितने ही अनुरोधसे आजकी रात वहाँ न काटोगे, बोलो ? "

" नहीं, नहीं, काटूँगा । "

प्यारीने अपनी अँगूठी उतारकर मेरे पैरोंपर रख दी, गल-वस्त्र होकर प्रणाम किया और पैरोंकी धूल अपने सिरपर लेकर उस अँगूठीको मेरी जेबमें डाल दिया । बोली, " तब जाओ—मैं समझती हूँ कि डेढ़ेक कोस जगह तुम्हें अधिक चलना होगा । "

बैलगाड़ीसे उतर पड़ा । उस समय प्रभात हो गया था ।

प्यारीने अनुनय करके कहा, " मेरी और भी एक बात तुम्हें रखनी होगी । घर लौटते ही मुझे एक पत्र लिखना होगा । "

मैंने मंजूर करके प्रस्थान किया । एक दफे भी लौटकर पीछेकी ओर नहीं देखा कि वे लोग खड़े हैं अथवा आगे चल दिये हैं । परन्तु बड़ी दूरतक अनुभव करता रहा कि उन दो चक्षुओंकी सजल-करुण दृष्टि मेरी पीठके ऊपर बार बार पछाड़ खा खाकर गिर रही है ।

अड्डेपर पहुँचते ही प्रायः आठ बज गये । रास्तेके किनारे, प्यारीके टूटे हुए तम्बूकी, बिखरी हुई परित्यक्त वस्तुओंपर मेरी नजर पड़ते ही एक निष्फल क्षोभ छातीमें मानों हाहाकार कर उठा । मुँह फेरकर जल्दी जल्दी पैर रखते हुए मैंने अपने तम्बूमें प्रवेश किया ।

पुरुषोत्तमने पूछा, " आप बड़े भोर ही घूमने बाहर चले गये थे ? "

हाँ-ना किसी तरहका जवाब दिये वगैर ही मैं बिस्तरोंपर आँखे बंद करके लेट रहा ।

११

प्यारीके निकट जो वादा किया था उसकी मैंने पूरी रक्षा की, घर लौटते ही मैंने यह खबर जताकर उसे एक चिट्ठी लिख दी जवाब भी जल्द ही आ गया । मैं एक बातपर बराबर ध्यान दे रहा था किसी भी दिन प्यारीने मुझे अपने पटनेके मकानके लिए, जोर डालना तो दूर रहा, साधारण तौरसे मौखिक निमंत्रण भी नहीं दिया । इस पत्रमें भी इसका कोई इशारा न था । सिर्फ नीचेकी ओर एक निवेदन था, जिसे कि आज भी मैं नहीं भूला हूँ, " सुखके दिनोंमें नहीं, तो दुखके दिनोंमें मुझे न भूलिए,—यही मेरी प्रार्थना है । "

दिन कटने लगे। प्यारीकी स्मृति धुँधली होकर प्रायः विलीन हो गई। परन्तु एक अचरज-भरी बात बीच बीचमे मेरी दृष्टिमें पड़ने लगी कि अबकी दफे शिकारसे वापिस लौटनेके बादसे मेरा मन मानों कुछ अनमना-सा रहने लगा है, जैसे मानों एक अभावकी वेदना, दबी हुई सर्दीके समान, शरीरके रोम-रोममें परिव्याप्त हो गई है। बिस्तरोंपर जाते ही वह चुभने लगती है।

याद आता है कि वह होलीकी रात थी। माथेपरसे अबीरका चूर्ण साबुनसे धोकर तबतक साफ नहीं किया था। क्लान्त विवश शरीरसे बिस्तरोंपर पड़ा था। पासकी खिड़की खुली हुई थी; उसीमेंसे सामनेके पीपलके पत्तोंकी फाँकोंमेंसे आकाशव्यापी ज्योत्स्नाकी ओर ताक रहा था। इतना ही याद आ रहा है। परन्तु क्यों दरवाजा खोलकर स्टेशनकी ओर चल दिया और पटनाका टिकिट कटाकर ट्रेनपर चढ गया,—यह याद नहीं आता। रात बीत गई। परन्तु दिनको जैसे ही मैंने सुना कि 'बाढ' स्टेशन है और पटना आनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है, वैसे ही एकाएक वहीं उतर पड़ा। जेबमे हाथ डालकर देखा तो घबड़ानेका कोई कारण नजर नहीं आया,—एक दुअन्नी और दसेक पैसे उस समय भी मौजूद थे। खुश होकर दूकानकी खोजमे स्टेशनसे बाहर हो गया। दूकान मिल गई। चिवड़ा, दही और शक्करके संयोगसे अत्युत्कृष्ट भोजन सम्पन्न करनेमे करीब आधा खर्च हो गया। होने दो, जीवनमे इस तरह कितना ही खर्च हुआ करता है,—इसके लिए रंज करना कायरता है।

गाँव घूमनेके लिए बाहर हुआ। घण्टे-भर भी न घूमा था कि, अनुभव हुआ, उस गाँवका दही और चिवड़ा जिस परिमाणमे उपादेय है उसी परिमाणमें पीनेका पानी निकृष्ट है। मेरे इतने प्रचुर भोजनको इतने-से समयमे इस तरह पचाकर उसने नष्ट कर दिया कि, ऐसा मालूम होने लगा कि, मानो दस-बीस दिनसे अन्नका एक दाना भी मुँहमें नहीं पड़ा है! ऐसे खराब स्थानमें वास करना एक मुहूर्त भरके लिए भी उचित नहीं है, ऐसा सोचकर स्थान त्याग करनेकी कल्पना कर ही रहा था कि,—देखता हूँ, पासमे ही एक आमके बगीचेके भीतरसे धुआँ निकल रहा है।

मैंने न्याय-शास्त्र सीखा था। धुएँको देखकर अग्निका निश्चयसे अनुमान कर लिया; इतना ही नहीं, वरन् अग्निके हेतुका अनुमान करते भी मुझे देर नहीं लगी। इसलिए सीधा उसी ओर चल दिया। पहले ही कह चुका हूँ कि पानी यहाँका बहुत ही खराब है।

वाह, यही तो चाहिए था ! सच्चे सन्यासीका आश्रम मिल गया ! बड़ी भारी धूनीके ऊपर लोटेमें चाहके लिए पानी चढ़ा है। 'बाबा, आधी आँखें मूँदे सामने बैठे हैं, उनके आसपास गाँजेकी सामग्री रक्खी है। एक संन्यासी बच्चा बकरी दुह रहा है, सेवाके लिए 'चाय' चाहिए। दो ऊँट, दो टट्टू और एक बछड़ेवाली गाय, पास पास वृक्षोंकी डालोंसे बँधे हुए हैं। पासहीमें एक छोटा-सा तम्बू है। झूककर देखा, भीतर मेरी ही उम्रका एक चेला दोनों पैरोंके बीच पत्थरका खल दबाये नीमके सोंटेसे भङ्ग तैयार कर रहा है। देखकर मैं भक्तिसे सराबोर हो गया और पलक मारते ही बाबाजीके पद-तलमें एक बारगी लोट गया। पद-धूलि मस्तकपर धारण कर हाथ जोड़ मन ही मन बोला, "कैसी असीम करुणा है भगवान् तुम्हारी ! कैसे स्थानमें मुझे ले आये ! चूल्हेमें जाय प्यारी,—मुक्ति-मार्गके इस सिंह द्वारको छोड़कर तिलार्ध भी यदि और कहीं जाऊँ तो, मेरे लिए, अनन्त नरकमें भी और जगह न रहे"

"साधूजी बोले, "क्यों बेटा ?"

मैंने निवेदन किया, "मैं गृहत्यागी, मुक्तिपथान्वेषी, हतभाग्य शिशु हूँ; मुझपर दया करके अपनी चरण-सेवाका अधिकार दीजिए।"

साधुजीने मृदु हँसी हँसकर दो दफे सिर हिलाकर संक्षेपमें कहा, "बेटा, घर लौट जा, यह पथ अति दुर्गम है।"

मैंने करुण कंठसे उसी क्षण उत्तर दिया, "बाबा, महाभारतमें लिखा है, महापापिष्ठ जगाई और माधाई वसिष्ठ मुनिके चरण पकड़कर स्वर्ग चले गये, तो क्या मैं आपके पैर पकड़कर मुक्ति भी नहीं पाऊँगा ? निश्चयसे पाऊँगा।"

साधुजी प्रसन्न होकर बोले, "बात तेरा सच्चा हय। अच्छा बेटा, रामजीका खुसी।" जो दूध दुह रहा था उसने आकर चाय तैयार करके बाबाजीको दी। उसकी 'सेवा' हो गई, हम लोगोंने प्रसाद पाया।

भाँग तैयार हो रही थी संध्याकालके लिए। परंतु उस समय भी बेला बाकी थी इसलिए और तरहके आनंदका उद्योग करते हुए 'बाबा' अपने दूसरे चेलेको गाँजेकी चिलम इशारेसे दिखा दी, तथा उसे भरनेमें देर न हो इसके लिए विशेष 'उपदेश' दे दिया।

आध घण्टा बीत गया। सर्वदर्शी बाबाजी मेरे प्रति परम संतुष्ट होकर बोले, "हाँ बेटा, तुममें अनेक गुण हैं। तुम मेरे चेला होनेके अति उपयुक्त पात्र हो।"

मैंने, परम आनन्दके साथ, और एक दफे बाबाके चरणोंकी धूलि मस्तक-पर धारण कर ली।

दूसरे दिन मैं प्रातःस्नान करके आया। देखा कि गुरुजीके आशीर्वादसे अभाव किसी चीजका नहीं है। प्रधान चेला जो थे उन्होंने, एक नया टटका गेरुए कपड़ोंका सूट, दस जोड़ी छोटी बड़ी रुद्राक्षकी मालाएँ और एक जोड़ा पीतलके कड़े बाहर निकाल दिये। जहाँ जो वस्तु धारण करनेकी थी उसे उस स्थानपर सजाकर, थोड़ी-सी धूनींकी राख मस्तकपर और मुँहपर मल ली। आँखें मीचकर मैंने कहा, "बाबाजी, शीशा वीसा कुछ है? एक दफे मुँह देखनेकी प्रबल इच्छा हो रही है।" मैंने देखा कि उन्हें भी रसका ज्ञान है। फिर भी उन्होंने कुछ गंभीर होकर उपेक्षासे कहा, "है एक ठो।"

"तो फिर, छुपाकर ले न आइए एक दफे।"

दो मिनटके बाद आईना लेकर मैं एक वृक्षकी आड़में चला गया। पश्चिमके नाई जिस तरहका आईना हाथमे देकर क्षौर-कर्म सम्पादित करते हैं, उसी तरहकी यह छोटी टीन चढी हुई आरसी थी। खैर जैसी भी हो, मैंने देखा कि वह विशेष तरद्दुद किये जाने और सदा व्यवहारमें आनेके कारण खूब साफ सुथरी थी। चेहरा देखकर हँसे विना न रहा गया। कौन कह सकता था कि मैं वही श्रीकान्त हूँ जो कुछ ही समय पूर्व राजे-रजवाड़ोंकी मजलिसमें बैठकर बाईजीका गान सुना करता था? खैर, जाने दो।

मैं घण्टे-भरके बाद गुरुमहाराजके समीप दीक्षाके लिए लाया गया। महाराज चेहरा देखकर अतिशय प्रीतिके साथ बोले, "बेटा, एकाध महीना ठहर जाओ।"

मैं धीरे-से 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी पदधूलि ग्रहण करके, हाथ जोड़कर, भक्तिसे भरकर एक तरफ बैठ गया।

आज बातों ही बातोंमे उन्होंने आध्यात्मिकताके अनेक उपदेश दिये। इसकी दुरूहताके विषयमे, गंभीर वैराग्य और कठोर साधनाके विषयमे,—आजकलके भण्ड पाखण्डी लोग इसे किस तरह कलङ्कित करते हैं उसका विशेष विवरण, तथा भगवत्के पाद पद्मोंमे मतिको स्थिर करनेके लिए क्या क्या करना आवश्यक है,—इस काममे वृक्षजातीय शुष्क वस्तु विशेषके धुएँको बार बार मुख-विवरके द्वारा शोषण करके नासा-रन्ध्र-पथसे शनैः शनैः विनिर्गत करनेसे कितना आश्चर्यकारी उपकार होता हैं,—आदि सब उन्होंने

अच्छी तरह समझा दिया, और इस विषयमें मेरी अवस्था अत्यन्त आशाप्रद है यह इशारेसे बताकर उन्होंने मेरे उत्साहको खूब बढ़ाया। इस तरह उस दिन मोक्ष-पथके अनेक निगूढ़ तात्पर्योंको जानकर मैं, गुरुमहाराजके तीसरे चेलेके रूपमें, बहाल हो गया।

गहरे वैराग्य और कठोर साधनाके लिए, महाराजके आदेशसे, हम लोगोंकी सेवाकी व्यवस्था कुछ कठोर किस्मकी थी। परिमाणमें वह जैसी थी स्वादमें भी वैसी ही थी। चाय, रोटी, घी, दूध, दही, चिउड़ा, शक्कर इत्यादि कठोर सात्त्विक भोजन और उन्हें पचानेके अनुपान। भगवत्पादारविंदोंसे भी हमारा चित्त विक्षिप्त न हो, इस ओर भी हम लोगोंकी लेशमात्र लापरवाही नहीं थी। इसके फलस्वरूप मेरे सूखे काठमें फूल लग गये और कुछ तोंद बढ़नेके लक्षण भी दिखाई देने लगे।

एक काम था,—भिक्षाके लिए बाहर जाना संन्यासीके लिए यह सर्वप्रधान कार्य न होनेपर भी प्रधान कार्य था। क्योंकि, सात्त्विक भोजनके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। किन्तु, महाराज स्वयं यह नहीं करते थे, उनके सेवक ही पारी पारीसे किया करते थे। संन्यासीके अन्य दूसरे कर्तव्योंमें तो उनके दूसरे दो चेलोंको मैं बहुत जल्द लाँघ गया; परंतु केवल इस काममें बराबर लँगड़ाता रहा। इसे किसी दिन भी अपने लिए सहज और रुचिकर न बना सका। फिर भी, एक सुभीता यह था कि, वह हिन्दुस्तानियोंका देश था। मैं भले-बुरेकी बात नहीं कहता,—मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि, बङ्गाल देशकी नाईं वहाँकी औरतें 'बाबा हाथ जोड़ती हूँ, और एक घर आगे जाकर देखो' कहकर उपदेश नहीं देतीं; और पुरुष भी 'नौकरी न करके तुम भिक्षा क्यों माँगते हो?' यह कैफियत तलब नहीं करते। धनी-निर्धन, बिना किसी भेद-भावके सब ही, प्रत्येक घरसे, भिक्षा देते हैं,—कोई विमुख नहीं जाता। इसी तरह दिन जाने लगे, पन्द्रह दिन तो उस आमके बागमें ही कट गये। दिनके समय तो कोई आपत-विपत नहीं थी, केवल रात्रिको मच्छरोंके काटनेकी जलनके मारे मन ही मन लगता था कि, भाड़में जाय मोक्षसाधना। यदि शरीरके चमड़ेको कुछ और मोटा न किया जायगा, तो अब जान न बचेगी। अन्यान्य विषयोंमें बंगाली लोग चाहे जितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों; परंतु बंगाली चमड़ेकी अपेक्षा हिन्दुस्तानी चमड़ा, इस विषयमें, संन्यासके लिए बहुत अधिक अनुकूल है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। उस दिन प्रातःस्नान करके सात्त्विक भोजन प्राप्त करनेके प्रयत्नमें बाहर जा ही रहा

था कि गुरूमहाराजने बुलाकर कहा,—

"भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। जिनहिं रामपद अति अनुरागा॥"

अर्थात् "स्ट्राईक दि टेण्ट" (तम्बू उखाड़ लो),—प्रयागकी यात्रा करनी होगी। परन्तु, यह कार्य कुछ सहज नहीं था, संन्यासीकी यात्रा जो ठहरी! सधे हुए टट्टुओंको खोजते और उनपर सामान लादते, ऊँटपर महाराजकी जीन कसते, गाय-बकरियोंको साथ लेते, गट्ठे गठरियाँ बाँधते, सिलसिलेसे लगाते-लगाते, एक पहर बीत गया। इसके बाद खाना खाकर दो कोस दूर संध्याके पहले ही बिठौरा गाँवके गँवड़े एक विराट् वटवृक्षके नीचे डेरा जमाया गया। जगह बहुत ही सुन्दर थी, गुरुमहाराजको खूब पसद आई। यह तो हुआ, परन्तु भरद्वाज मुनिके उस स्थान तक पहुँचते पहुँचते कितने महीने लग जायँगे, इसका मैं अनुमान नहीं कर सका।

इस बिठौरा गाँवका नाम अभीतक मुझे क्यों याद रहा आया है सो यहाँ कहता हूँ। उस दिन पूर्णिमा तिथि थी; इसलिए, गुरुके आदेशसे हम तीनों जनें तीन दिशाओंमे भिक्षाके लिए बाहर निकल पड़े थे। अकेला होता तो उदर-पूर्तिके लिए कम कोशिश न करता। परन्तु, आज मेरी वह चाल नहीं थी, इसलिए बहुत कुछ निरर्थक यहाँ वहाँ घूम रहा था। एकाएक एक मकानके खुले हुए दरवाजेके भीतरसे मुझे एक बंगाली लड़कीका चेहरा दिखाई पड़ गया। उसके कपड़े यद्यपि देशी करघेपर बुने हुए टाटकी तरह मोटे थे, किन्तु उन्हे पहिननेके विशेष ढंगने ही मेरे कुतूहलको उत्तेजित कर दिया। मैंने सोचा, पाँच-छः दिनसे इस गाँवमें हूँ, करीब करीब सब घरोंमें हो आया हूँ, परन्तु बङ्गाली स्त्री तो दूरकी बात, बङ्गाली पुरुषका चेहरा तक भी नज़र नहीं आया। साधु-संन्यासियोंके लिए कहीं रोक-टोक नहीं। भीतर प्रवेश करते ही वह स्त्री मेरी ओर देखने लगी। उसका मुँह मैं आज भी याद कर सकता हूँ। इसका कारण यह है कि दस-ग्यारह वर्षकी लड़कीकी आँखोंमें इतनी करुण, इतनी मलिन–उदास दृष्टि और कहीं कभी देखी है, ऐसा मुझे याद नहीं आता। उसके मुँहसे, उसके होठोंसे उसकी आँखोंसे,—उसके सर्वांगसे मानों दुःख और निराशा फूटी पड़ती थी। मैंने एकबारगी बङ्गलामें कहा, "कुछ भिक्षा देना, मा।" पहले तो वह कुछ न बोली। इसके बाद उसके होंठ एक दो बार काँपकर फूल उठे और वह भर-भराकर रो उठी।

मैं मन ही मन कुछ लजाकर रह गया। क्योंकि, सामने कोई न था तो भी, पासके घरमेंसे बिहारी औरतोंकी बातचीत सुनाई पड़ रही थी। उनमेंसे यदि कोई एकाएक बाहर आकर इस अवस्थामें हम दोनोंको देख ले, तो वह क्या सोचेगी, क्या कहेगी यह कुछ भी मैं न सोच सका।—खड़ा रहूँ, या प्रस्थान कर जाऊँ, यह निश्चय कर सकनेके पूर्व ही उस लड़कीने रोते रोते एक साँसमें ही हजार प्रश्न पूछ डाले, "तुम कहाँसे आ रहे हो? कहाँ रहते हो? तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेमें है? तुम वहाँ कब जाओगे? तुम्हें क्या राजापुर मालूम है? वहाँके गौरी तिवारीको चीन्हते हो?"

मैं बोला, "तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेके राजापुरमें है?"

उस लड़कीने हाथोंसे आँखोंका जल पोंछते हुए कहा, "हाँ, मेरे पिताका नाम गौरी तिवारी है और भाईका नाम रामलाल तिवारी है। उन्हें क्या तुम चीन्हते हो? तीन महीने हुए मैं ससुराल आई हूँ,—अभीतक एक भी चिट्ठी मुझे नहीं मिली,—पिता, भाई मा गिरिबाला और बाबू कैसे हैं, कुछ भी नहीं जानती। वह जो पीपलका वृक्ष है,—उसके नीचे मेरी बहिनकी ससुरालका मकान है। उस सोमवारको जीजी गलेमें फाँसी लगाकर मर गई,—पर ये लोग कहते हैं कि—नहीं, वे हैजेसे मरी हैं।"

मैं विस्मयके मारे हतबुद्धि-सा हो गया। यह क्या बात है? ये लोग, देखता हूँ कि, पूरे हिन्दुस्तानी हैं; परन्तु, लड़की एकबारगी शुद्ध बंगालिन है। इतनी दूर, इन घरोंमें, इन लड़कियोंकी ससुरालें क्यों कर हुईं, और इनके पति, सास-ससुर आदि यहाँ क्या करने आये?

मैंने पूछा, "तुम्हारी बहिनने गलेमें फाँसी क्यों लगाई?"

वह बोली, "जीजी राजापुर जानेके लिए रात-दिन रोती थीं, खाती नहीं थीं, सोती नहीं थीं। इसीलिए उनके बाल धन्नीसे बाँधकर उन्हें सारे दिन और सारी रात खड़ा कर रक्खा था। इसीलिए गलेमें रस्सी डालकर मर गईं।"

मैंने पूछा, "तुम्हारे भी सास-ससुर क्या हिन्दुस्तानी हैं?"

उस लड़कीने फिर एक बार रोकर कहा, "हाँ। मैं उन लोगोंकी बातचीत कुछ भी नहीं समझ पाती, उन लोगोंका खाना मैं मुँहमें नहीं डाल सकती,—मैं तो दिन-रात रोया करती हूँ। परन्तु, पिता न तो हमें चिट्ठी ही लिखते हैं और न लिवा ही ले जाते हैं।"

मैंने पूछा, "अच्छा, तुम्हारे पिता न तुम्हें इतनी दूर ब्याहा ही क्यों?"

लड़की बोली, "हम लोग तिवारी जो हैं। हमारी जातिके ब्याह-योग्य लड़के उस देशमें तो मिलते नहीं।"

"तुहें क्या वे मारते-पीटते भी हैं!"

"और नहीं तो क्या? यह देखो न!" इतना कहकर उस लड़कीने भुजाओंमें, पीठके ऊपर, मारके निशान दिखाये और फफक फफक कर रोते हुए कहा, "मैं भी जीजीकी ही तरह गलेमे फाँसी लगाकर मर जाऊँगी।"

उसका रोना देखकर मेरे नेत्र भी सजल हो उठे और प्रश्नोत्तर या भीखकी अपेक्षा किये बगैर ही मैं बाहर हो गया। किन्तु, वह लड़की मेरे पीछे पीछे चली आई और कहने लगी, "मेरे पिताके पास जाकर तुम कहोगे न? वे मुझे यहाँसे एक दफे ले जायँ,—नहीं तो मैं किसी तरह थोडा-सा सिर हिलाकर स्वीकार करके तेज चालसे अदृश्य हो गया। उस लड़कीका हृदयभेदी आवेदन मेरे दोनों कानोंमें गूँजने लगा।

रास्तेके मोड़के ऊपर ही एक बनियाकी दूकान थी। प्रवेश करते ही दूकानदारने आदरके साथ मेरी अभ्यर्थना की। खाद्य द्रव्यकी भीख न माँगकर जब मैं एक चिट्ठी लिखनेका कागज और कलम दावात माँग बैठा, तब उसने कुछ आश्चर्य तो किया, परन्तु इन्कार नहीं किया। उसी जगह बैठकर मैंने गौरी तिवारीके नामपर एक पत्र लिखकर डाल दिया। समस्त विवरण विवृत्त करनेके बाद अन्तमें यह बात लिखना भी मैं नहीं भूला कि "लड़कीकी बहिन हालमे ही फाँसी लगा कर मर गई है और वह खुद भी, मार-पीट अत्याचार सहन न कर सकनेके कारण उसी पथपर जानेका सकल्प कर चुकी है। तुम खुद आकर कुछ उपाय न करोगे तो क्या हो जायगा, सो कहा नहीं जा सकता। बहुत संभव है कि तुम्हारी चिट्ठी-पत्री ये लोग तुम्हारी लड़कीको न देते हों। उसपर ठिकाना लिखा, वर्धमान जिलेमें राजापुर ग्राम। मालूम नहीं कि वह पत्र गौरी तिवारीको पहुँचा या नहीं; और पहुँचा भी, तो उसने कुछ किया या नहीं। परन्तु वह घटना मेरे मन-पर इस तरह मुद्रित हो गई है कि, इतने समयके बाद भी, पूरी तरह याद बनी हुई है; तथा, इस आदर्श हिन्दू समाजके सूक्ष्मातिसूक्ष्म जाति-भेदके विरुद्ध एक विद्रोहका भाव आज भी मेरे मनसे नहीं जाता।

संभव है, यह जाति-भेदका सिद्धान्त बहुत ही अच्छा हो; जब कि इसी उपायसे सनातन हिन्दू जाति आज तक बची हुई है, तब इसकी प्रचण्ड

उपकारिताके सम्बन्धमें संशय करनेके लिए या प्रश्न करनेके लिए और कुछ शेष नहीं रहता। कहीं कोई दो बदनसीब लड़कियाँ दुःख न सह सकनेके कारण गलेमें फाँसी लगाकर मर जायँगी, इस डरसे इसका कठोर बन्धन बिन्दुमात्र शिथिल करनेकी कल्पना करना भी पागलपन है। किन्तु, उस लड़कीका रोना जो मनुष्य अपनी आँखों देख आया है, उसके लिए यह साध्य नहीं हो सकता कि, वह इस प्रश्नको अपने पासमें आनेसे रोक सके कि किसी तरह टिके रहना,—अपना अस्तित्वमात्र बनाये रखना, ही क्या जीवनकी चरम सार्थकता है? इस तरहकी तो बहुत-सी जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये हुए मौजूद हैं। कोरकू हैं, कोल-भील-संथाल हैं, प्रशान्त महासागरके अनेक छोटे-मोटे द्वीपोंकी अनेक छोटी-मोटी जातियोंकी मनुष्य-सृष्टि शुरूसे अभीतक वैसी ही बनी हुई है। आफ्रिकामें हैं, अमेरिकामें हैं;—उन जातियोंमें भी इस तरहके सब कठोर सामाजिक आईन-कानून मौजूद हैं जिन्हें सुनकर शरीरका रक्त पानी हो जाता है। उम्रके लिहाजसे वे जातियाँ यूरोपकी अनेक जातियोंके अति वृद्ध प्रपितामहोंकी अपेक्षा भी प्राचीन हैं, और हमसे भी अधिक पुरातन हैं। किन्तु इसीलिए ये जातियाँ हमारी अपेक्षा सामाजिक आचार-व्यवहारमें श्रेष्ठ हैं, ऐसा अद्भुत संशय, मैं समझता हूँ, किसीके मनमें न उठता होगा। सामाजिक समस्याएँ झुंड बाँधकर सामने नहीं आतीं। यों ही एकाध क्वचित् कदाचित् ही आविर्भूत होती हैं। अपनी दोनों बंगाली लड़कियोंके हिन्दुस्थानियोंके घर ब्याहते समय गौरी तिवारीके मनमें शायद इस तरहका प्रश्न आया था। किन्तु, वह बेचारा इस दुरूह प्रश्नमेंसे छुटकारा पानेका कोई रास्ता न खोज सकनेके कारण ही अन्तमें, सामाजिक यूप-काठके ऊपर दोनों कन्याओंका बलिदान देनेके लिए बाध्य हुआ था। जो समाज इन दोनों निरुपाय क्षुद्र बालिकाओंके लिए भी स्थान न दे सका, जो समाज अपनेको इतना-सा भी उदार बननेकी शक्ति नहीं रखता, उस लँगड़े निर्जीव समाजके लिए अपने मनमें मैं किंचित्-मात्र भी गौरवका अनुभव नहीं कर सका। कहीं किसी एक बड़े भारी लेखकके लेखमें पढ़ा था कि हमारे समाजने जिस एक बड़े सामाजिक प्रश्नका उत्तर जगत्के सामने 'जाति-भेद' के रूपमें उपस्थित किया है, उसका अन्तिम फैसला आज तक भी नहीं हुआ है।—ऐसा ही कुछ उसमें कहा गया था। किन्तु उस समस्त युक्तिहीन उच्छ्वासका उत्तर देनेकी भी मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। 'हुआ नहीं

है' और 'होगा नहीं' ऐसा प्रबल कण्ठसे घोषित करके जो लोग अपने ही प्रश्नके उत्तरको खुद ही दबा देते हैं उनको जवाब देनेकी भी प्रवृत्ति नहीं होती। खैर, जाने दो।

दूकानसे उठकर और ढूँढ खोजकर डाक-बक्समें उस बैरंग पत्रको डाल कर जब मैं अपने डेरेपर आ पहुँचा, तब मेरे अन्यान्य सहयोगी आटा, दाल आदि संग्रह करके लौटे न थे।

मैंने देखा कि 'साधु-बाबा' आज मानों कुछ खीझे हुए हैं। कारण भी उन्होंने स्वयं प्रकट कर दिया; बोले, "यह गाँव साधु-सन्यासियोंके प्रति उतना अनुरक्त नहीं है, मेवादिकी व्यवस्था भी वैसी सन्तोषजनक नहीं करता; इस लिए कल ही इस स्थानका त्याग कर देना होगा।" 'जो आज्ञा' कहकर मैंने उसी क्षण उसका अनुमोदन कर दिया। मनके भीतर घटना देखनेका जो प्रबल कुतूहल छिपा था, अपने पास आज मैं उसे और अधिक ढँककर न रख सका।

सिवाय इसके, विहारके इन गाँवोंमें किसी तरहका आकर्षण भी ढूँढे नहीं मिलता था। इसके पहले मैं बंगालके अनेक गाँवोंमे विचरण कर चुका हूँ; किन्तु, उनके साथ इनकी कोई तुलना ही नही हो सकती। नर-नारी, पेड़ पत्ते, जल वायु,—कोई भी चीज़ अपनी-सी नहीं मालूम होती थी। सारा मन सुबहसे लेकर रात्रिपर्यंत केवल 'भागूँ भागूँ' किया करता था।

सन्ध्याके समय महल्ले महल्लेसे उस तरह झाँझ-करतालके साथ कीर्तनका सुर कानोंमें नहीं आता। देव-मंदिरोंमे आरतीके काँसेके घण्टे आदि भी उस तरहका गम्भीर मधुर शब्द नहीं करते। इस देशकी स्त्रियाँ शङ्खोंको भी वैसी मीठी तरहसे बजाना नहीं जानतीं, तब यहाँ मनुष्य किस सुखके लिए रहते हैं! और मन ही मन ऐसा लगने लगा कि यदि इन सब गाँवोंमें मैं न आ पड़ा होता तो अपने गाँवोंका मूल्य किसी दिन भी इस तरह न जान पाता। हमारे यहाँके पानीमें काई भरी रहती है, हवामें मलेरिया है, प्रायः सभी मनुष्योंके पेटमें पिलही बढी हुई है, घर-घर मुकदमे-मामले हुआ करते हैं, महल्ले महल्लेमें दलबन्दियाँ हैं; सो सब रहने दो, परन्तु फिर भी उसके बीच भी कितना रस, कितनी तृप्ति थी।—इस समय मानों, उसके विषयमें कुछ न जानते हुए भी मैं सब कुछ जानने लगा।

दूसरे दिन तम्बू उखाड़कर यात्रा शुरू कर दी गई; और साधु बाबा यथा-

शक्ति भरद्वाज मुनिके आश्रमकी ओर दलबल-सहित अग्रसर होने लगे। किन्तु चाहे रास्ता सीधा पड़ेगा इस खयालसे हो, अथवा मुनिने मेरे मनकी बात जान ली,—इस कारणसे हो, पटनाके दस कोसके भीतर उन्होंने और फिर कहीं तम्बू नहीं गाड़ा।-मनमें एक वासना थी।—खैर उसे इस समय रहने दो। पाप-ताप तो मैंने बहुतसे किये हैं, साधु-संग भी कुछ दिन करके पवित्र हो लूँ।

एक दिन सन्ध्याके कुछ पहले जिस जगह हमारा डेरा पड़ा, उसका नाम था छोटी बगिया। आरा स्टेशनसे यह स्थान आठ कोस दूर है। इस गाँवके एक प्रसिद्ध बंगाली सज्जनसे मेरा परिचय हो गया था। उनकी सदाशयताका यहाँ कुछ वर्णन करूँगा। उनके पैतृक नामको गुप्त रखकर 'राम बाबू' कहना ही अच्छा है, क्योंकि अब तक वे जीवित हैं। और बादमें, अन्यत्र यद्यपि उनसे मेरा साक्षात्कार हुआ था, फिर भी वे मुझे पहिचान नहीं सके थे। इसमें कुछ अचरज भी नहीं है। परन्तु उनका स्वभाव मैं जानता हूँ। गुप्त रूपसे उन्होंने जो सत्कार्य किये हैं उनका प्रकाश्य रूपमें उल्लेख किये जानेपर वे विनयसे संकुचित हो उठेंगे, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इस लिए उनका नाम है 'राम बाबू'। किस तरह राम बाबू उस गाँवमें आये थे और किस तरह उन्होंने जमा-जमीन संग्रह करके खेती-बारी की थी, सो मुझे नहीं मालूम। इतना ही मैं जानता हूँ कि उन्होंने दूसरे दफे विवाह किया था और तीन-चार पुत्र-कन्याओंके साथ वे वहाँ सुखसे वास करते थे।

सुबहके समय सुना गया कि इन्हीं छोटी बगिया और बड़ी बगिया नामक गाँवमें उस समय शीतलाने महामारीके रूपमें दर्शन दिये हैं। देखा गया है कि गाँवके दुःसमयमें ही साधु-सन्यासियोंकी सेवा विशेष सन्तोषजनक होती है। इसीलिए साधु बाबाने अविचलित चित्तसे वहाँपर अवस्थान करनेका सङ्कल्प कर लिया।

अच्छी बात है। संन्यासी जीवनके सम्बन्धमें यहाँपर मैं एक बात कह देना चाहता हूँ। जीवनमें इनमेंसे मैंने अनेकोंको देखा है। चारेक दफे मैं उनके साथ ऐसे ही घनिष्ठ भावसे घुल-मिलकर भी रहा हूँ। दोष जो उनमें हैं सो हैं ही, मैं तो गुणोंकी बात ही कहूँगा। 'केवल पेटके लिए साधूजी' तो आपमेंसे अनेक जानते होंगे, परन्तु इन लोगोंमें भी ये दो दोष मेरी नजर नहीं आये,—और मेरी नजर भी कुछ बहुत स्थूल नहीं है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें इन लोगोंका संयम कहो या उत्साहकी स्वल्पता कहो,—खूब अधिक

है, और प्राणोंका भय भी इन लोगोंमे बिल्कुल ही कम होता है। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' तो है, परंतु क्या करनेसे 'बहु दिनं जीवेत्' यह ख्याल नहीं होता। हमारे साधू बाबा भी ऐसे ही थे। पहली वस्तु याने 'सुख' के लिए दूसरी अर्थात् 'जीवेत्' को उन्होंने तुच्छ कर दिया था!

थोड़ी सी धूनीकी राख और दो बूँद कमण्डलुके जलके बदलेमें जो सब वस्तुएँ दनादन डेरेमें आने लगीं वह, क्या तो सन्यासी और क्या गृहस्थ, किसीके लिए भी विरक्तिका कारण नहीं हो सकतीं।

राम बाबू स्त्रीसहित रोते हुए आये। चार रोजके बुखारके बाद आज सुबह बड़े लड़केको शीतला दिखाई पड़ी हैं और छोटा बच्चा कल रातसे ज्वरमें बेहोश पड़ा है। यह जानकर कि वे बंगाली हैं मैंने स्वयं उनके निकट जाकर उनसे परिचय किया।

इसके बाद कथाके सिलसिलेमे मैं महीने-भरका विच्छेद कर देना चाहता हूँ। क्योंकि किस तरह यह परिचय घनिष्ठ होता गया, किस तरह दोनों बच्चे चंगे हुए,—इसकी बहुत लम्बी कथा है। कहते कहते मेरा धीरज छूट जायगा, फिर पाठकोंकी बात तो दूर रही। फिर भी, बीचकी एक बात कहे देता हूँ। करीब पन्द्रह दिन बाद, जब कि रोगका प्रकोप बहुत बढा चढा था, साधुजीने अपना डेरा उठानेका प्रस्ताव किया। राम बाबूकी स्त्री रोकर बोल उठी, "सन्यासी भइया, तुम तो सचमुचके संन्यासी नहीं हो,—तुम्हारे शरीरमें तो दया-माया है। नवीन और जीवनको यदि तुम छोड़कर चले जाओगे, तो वे कभी नहीं बचेंगे। कहाँ, जाओ देखूँ, कैसे जाते हो!" इतना कहकर उसने मेरे पैर पकड लिये। मेरी आँखोंसे भी आँसू निकल पड़े। राम बाबू भी स्त्रीकी प्रार्थनामे योग देकर अनुनय-विनय करने लगे। इसलिए मैं नहीं जा सका। साधु बाबासे मैं बोला, "प्रभो, आप अग्रसर हूजिए, मैं रास्तेके बीचमे, नहीं तो प्रयागमे पहुँचकर, आपकी पदधूलि अवश्य ही माथे चढा सकूँगा, इसमे कोई संदेह नहीं है।" प्रभु कुछ क्षुण्ण हुए। अन्तमे बार बार अनुरोध करके, अकारण कहीं विलम्ब न लगा देना, इस संबंधमें बार बार सावधान करके, वे सदल-बल यात्रा कर गये। मैं राम बाबूके घरमे ही रह गया। इन थोड़ेसे दिनोंके बीचमें ही मैं इस तरह प्रभुका सबसे अधिक स्नेह-पात्र हो गया था कि, यदि और टिका रहता तो उनकी संन्यास-लीलाके अवसानपर, उत्तराधिकार-सूत्रसे मैं उस टट्टू और दोनों

ऊँटोंपर दखल प्राप्त कर सकता; इसमें कोई संदेह नहीं रह गया था। खैर जाने दो,—हाथकी लक्ष्मी पैरसे ठेलकर, गई बातको लेकर, परिताप करनेमें अब कोई लाभ नहीं है।

दोनो लड़के चंगे हो गये। मारी इस दफे सचमुच ही महामारीके रूपमें दिखाई दी। वह कैसा व्यापार था जिसने अपनी आँखों नहीं देखा, वह किसीका लिखा हुआ पढ़कर, कहानी सुनकर या कल्पना करके हृदयंगम कर सके यह असंभव है। अतएव इस असंभव कार्यको संभव करनेका प्रयास मैं नहीं करूँगा। लोगोंने भागना शुरू किया; इसमें और कोई विवेक-विचार नहीं रहा। जिस घरमें मनुष्यका चिह्न दिखाई देता था उसमें झाँककर देखनेसे नज़र आता था कि केवल माँ अपनी पीड़ित संतानको आगे लिये हुए बैठी है।

राम बाबूने भी अपनी घरू बैलगाड़ीमें माल असबाब लाद दिया। वे तो कई दिन पहले ही ऐसा करना चाहते थे, किन्तु, बाध्य होकर ही न कर सकें। पाँच-छः दिन पहलेसे ही मेरी सारी देह एक ऐसे बुरे आलस्यसे भर गई थी कि कुछ भी भला नहीं लगता था। मालूम होता था कि रात्रि-जागरण और परिश्रमके कारण ही ऐसा हो रहा है। उस दिन सुबहसे ही सिर दुखने लगा। बिल्कुल अरुचि होते हुए भी दोपहरके समय जो कुछ खाया शामके वक्त उसे कै कर दिया। रातके ९-१० बजे मालूम हुआ कि बुखार चढ़ आया है। उस दिन सारी रात, उन लोगोंका उद्योग आयोजन चल रहा था, सभी जाग रहे थे। बहुत रात बीते राम बाबूकी स्त्री बाहरसे मेरे कमरेके भीतर झाँक कर बोली, 'संन्यासी भइया, तुम क्या हमारे साथ ही आरातक नहीं चलोगे।"

मैं बोला, "जरूर चलूँगा। किन्तु तुम्हारी गाड़ीमें मुझे थोड़ी-सी जगह देनी होगी।"

बहिनने उत्सुक होकर प्रश्न किया, "सो कैसे संन्यासी भइया? गाड़ियाँ तो दोसे अधिक नहीं मिल सकीं। उनमें तो हम लोगों भरके लिए भी जगह नहीं है।"

मैंने कहा, "मुझमें तो चलनेकी ताकत नहीं है बहिन, सुबहसे ही खूब बुखार चढ़ा है।"

"बुखार! कहते क्या हो" इतना कहकर उत्तरकी भी अपेक्षा न करके मेरी नूतन बहिन अपना मुँह श्याम करके चली गई।

कितनी देरतक मैं सोता रहा, सो नहीं कह सकता। जागकर देखा तो

दिन चढ़ आया है। मकानके भीतरके सभी कमरेमें ताला लगा हुआ है, मनुष्य प्राणीका नाम भी नहीं है।

बाहरके जिस कमरेमें मैं था उसके सामनेसे ही इस गाँवका कच्चा रास्ता आरा स्टेशनतक गया है। इस रास्तेपरसे प्रतिदिन कमसे कम ५-६ बैलगाड़ियाँ, मृत्यु-भीत नर नारियोंका माल-असबाब लादकर, स्टेशन जाया करती थीं। दिन-भर अनेक प्रयत्न करनेके बाद मैं शामको इनमेंसे एकमें स्थान पाकर जा बैठा। जिन वृद्ध बिहारी सज्जनने दया करके मुझे अपने साथ ले लिया था उन्होंने बड़े तड़के ही मुझे स्टेशनके पास एक वृक्षके नीचे उतार दिया। उस समय बैठनेका भी मुझमें सामर्थ्य नहीं था। वहीं मैं लेट गया। पासमें ही एक टीनका परित्यक्त शेड था। पहले वह मुसाफिरखानेके काममें आता था; किन्तु, वर्तमान समयमें झड़-बादलके दिन गाय-बछड़ोंके उपयोगमें आनेके सिवाय, और किसी काममें नहीं आता था। ये वृद्ध सज्जन स्टेशनसे एक बंगाली युवकको बुला लाये। मैं उसीकी दयासे, कई एक कुलियोंकी सहायतासे, उस शेडके नीचे लाया गया।

मेरा बड़ा दुर्भाग्य है कि मैं उस युवकका कोई परिचय नहीं दे सकता; क्योंकि, मैं उस समय उसकी कुछ भी पूछताछ नहीं कर सका था। पाँच-छह महीने बाद, पूछनेका जब सुयोग और शक्ति मिली तब, मालूम हुआ कि शीतलाके रोगसे पीड़ित होकर इस बीचमें ही वह इस लोकसे कूच कर गया है। उसके सम्बन्धमें पूछनेपर इतना ही मालूम हो सका कि वह पूर्वीय बङ्गालका था और पन्द्रह रुपये महीना वेतनपर स्टेशनमें नौकरी करता था। कुछ देर ठहरकर अपना सैकड़ों जगहसे फटा हुआ बिछौना लाकर उसने हाजिर किया और वह बार बार कहने लगा कि मैं अपने हाथसे पकाकर खाता हूँ और दूसरेके घर रहता हूँ। दोपहरके समय एक कटोरा गरम दूध लाकर उसने जबरन पिलाकर कहा, "डरनेकी बात नहीं है, अच्छे हो जाओगे। परन्तु आत्मीय बन्धु बान्धव आदि किसीको भी यदि खबर देनी हो तो, ठिकाना बतानेपर, मैं तार दे सकता हूँ।"

उस समय मैं खूब होशमें था। इसलिए यह भी अच्छी तरह समझता था कि ऐसी अवस्था बहुत देर तक नहीं रहेगी। इस तरहका ज्वर यदि और भी ५-६ घण्टे स्थायी बना रहा तो होश अवश्य गवाँना पड़ेगा। अतएव, जो कुछ करना है, वह, इतने समयके भीतर न करनेपर, फिर नहीं किया जा सकेगा।

सो तो ठीक, परन्तु खबर देनेके प्रस्तावपर मैं सोच विचारमें पड़ गया। क्यों, सो खोलकर बतानेकी जरूरत नहीं। परन्तु सोचा, गरीबका पैसा टेलिग्राममें अपव्यय करनेसे लाभ ही क्या है?

शामके बाद वह भद्र पुरुष अपनी ड्यूटीसे अवकाश लेकर एक घड़ा पानी और एक किरासिनकी डिब्बी लेकर उपस्थित हुआ। उस समय ज्वरकी यंत्रणासे मस्तक क्रमशः बिगड़ रहा था। उसे पासमें बुलाकर मैंने कहा, "जबतक मुझे होश है तबतक बीच बीचमें आकर देख जाना; इसके बाद जो होना हो सो हो, आप और कोई कष्ट न करना।"

वह अत्यन्त मुँह-चोर प्रकृतिका भद्र पुरुष था। बात बनाकर कहनेकी उसमें क्षमता नहीं थी। जवाबमें केवल 'नहीं' कहकर ही वह चुप हो रहा।

मैंने कहा "आपने चाहा था कि किसीको खबर करा दूँ। मैं संन्यासी आदमी हूँ, वास्तवमें मेरा कोई भी नहीं है। फिर भी पटनेमें प्यारी बाईठिकानेपर यदि एक पोस्ट कार्ड लिख दोगे कि श्रीकान्त आरा स्टेशनके बाहर एक टीन-शेडके नीचे मरणापन्न होकर पड़ा है तो—"

वह युवक अत्यन्त व्यस्त होकर बोल उठा। "मैं अभी दिये देता हूँ, चिट्ठी और टेलिग्राम दोनों ही भेजे देता हूँ," इतना कहकर वह उठकर चला गया। मैंने मन ही मन कहा, 'भगवान्, वह खबर पा जाय!'

* * * *

होश आनेपर पहले तो मैं अपनी अवस्था अच्छी तरह समझ भी न सका। मस्तकपर हाथ ले जाकर अनुभव किया कि वह तो आईस-बेग है। आँखें मिल-मिलाकर देखा कि मकानके भीतर एक खाटपर पड़ा हूँ। सामने स्टूलके ऊपर एक दीपकके पास दो-तीन दवाकी शीशियाँ और उसके पास एक रस्सीकी खाटपर कोई मनुष्य लाल चेकका रैपर शरीरपर लपेटे हुए सो रहा है। बहुत देर तक मैं कुछ भी याद न कर सका। इसके बाद, एक एक करके, जान पड़ने लगा, मानों नींदमें कितने ही स्वप्न देखे हैं। अनेक लोगोंका आना-जाना, उठाकर मुझे डोलीमें डालना, मस्तक उठाकर दवाई पिलाना, ऐसे कितने ही व्यापार दिखाई पड़े।

कुछ देर बाद, जब वह मनुष्य उठकर बैठ गया तब, देखा कि कोई बंगाली सज्जन हैं उम्र; अठारह-उन्नीसके अधिक नहीं। उस समय मेरे सिरहानेके निकटसे मृदु-स्वरमें जिसने उसको संबोधन किया उसका स्वर मैंने पहचान लिया।

प्यारीने अति मृदु कण्ठसे पुकारा, "बङ्कू, बरफको एक बार और बदल क्यों नहीं दिया बेटा !"

लड़का बोला, "बदले देता हूँ, तुम थोड़ा-सा सो लो न माँ। डाक्टर बाबू जब कह गये हैं कि शीतला नहीं है, तब डरनेकी तो कोई बात नहीं है माँ।"

प्यारी बोली, "अरे भइया, डॉक्टरके कहनेके, कि डरकी कोई बात नहीं है, औरतोंका भय कहीं जाता है ? तुझे चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है बङ्कू, तू तो बरफ बदलकर सो जा,—फिर रातको मत जागना।"

बंकूने आकर बरफ बदल दिया और लौटकर वह फिर उसी खटियापर जा पड़ा। थोड़ी ही देर बाद जब उसकी नाक बजने लगी तब मैंने धीरेसे पुकारा "प्यारी !"

प्यारीने मुँहके ऊपर झुक पड़कर, सिरपरके जल-बिन्दु आँचलसे पोंछते हुए कहा, "मुझे क्या तुम चीन्ह सकते हो ? अब कैसे हो ? कल—"

"अच्छा हूँ। कब आई ? यह क्या आरा है ?"

"हाँ आरा ही है। कल हम लोग घर चलेंगे।"

"कहाँ ?"

"पटने। सिवाय अपने घर ले जानेके, अभी क्या और कहीं, मैं तुम्हें छोड़ जा सकती हूँ ?"

"यह लड़का कौन है, राजलक्ष्मी ?"

"मेरी सौतका लड़का है। किन्तु, बङ्कू मेरे पेटका लड़का-सा ही है। मेरे पास रहकर ही पटनाकालेजमें पढ़ता है। आज अब और बात मत करो। सो जाओ,—कल सब बात कहूँगी।" इतना कहकर उसने मेरे मुँहपर, हथेली रखकर मेरा मुँह बन्द कर दिया।

मैं हाथ बढ़ाकर राजलक्ष्मीके दाहिने हाथको मुट्ठीमें लेकर करवट बदलकर सो रहा।

१२

जिस ज्वरसे पीड़ित होकर मैं बेहोश हो शय्यागत हो गया था वह शीतलाका नहीं था, कुछ और ही था। डॉक्टरी शास्त्रमें निश्चयसे ही उसका कोई बड़ा भारी कठिन नाम था, परन्तु मुझे वह याद नहीं रहा।

खबर पाकर प्यारी, अतने लड़के, दो नौकर और दासीको लेकर, आ उपस्थित हुई। उसी दिन एक ठहरनेका स्थान-किरायेपर लेकर मुझे उसमें स्थानान्तरित कर दिया और शहरके भले-बुरे सब चिकित्सकोंको बुलाकर वहाँ इकट्ठा कर लिया। अच्छा ही किया। नहीं तो, और कोई नुकसान चाहे भले ही न होता, परन्तु 'भारतवर्ष'के* पाठक-पाठिकाओंके धैर्यकी महिमा तो संसारमें अविदित ही रह जाती!

सुबह प्यारीने कहा, "बंकू, और देरी मत कर बेटा, इसी समय एक सेकण्ड क्लासका डब्बा रिज़र्व करा आ। मैं एक क्षण भी इन्हें यहाँ रखनेका साहस नहीं कर सकती।"

बंकूकी अतृप्त निद्रा उस समय भी उसके दोनों नेत्रोंमें भर रही थी; उसने उन्हें मूँदे ही मूँदे, अव्यक्त स्वरमें जवाब दिया, "तुम पगला गई हो माँ ऐसी अवस्थामें क्या रोगीको यहाँसे वहाँ ले जा सकता है!"

प्यारीने कुछ हँसकर कहा, "पहले तू उठ, आँख-मुँहपर जल डाल, देखूँ। इसके बाद यहाँ-वहाँ ले जानेकी बात समझ ली जावेगी। राजा बेटा मेरे उठ।"

बंकू, और कोई उपाय न देख, शय्या त्याग, मुँह-हाथ धो, कपड़े बदल स्टेशन चला गया। उस समय भी बहुत जल्दी थी—घरमें और कोई नहीं था। धीरे धीरे पुकारा, "प्यारी!" मेरे सिरहानेकी ओर एक खटिया सटकर बिछी हुई थी। उसीपर थकावटके कारण, शायद इसी बीच, वह कुछ आँखें मूँदकर लेट गई थी। चटपट उठ बैठी और मेरे मुँहपर झुक गई। कोमल कण्ठसे उसने पूछा, "नींद खुल गई!"

"मैं तो जाग ही रहा हूँ।" प्यारीने उत्कण्ठित यत्नके साथ मेरे सिर और कपालपर हाथ फेरते फेरते कहा, "ज्वर इस समय बहुत कम है। आँखें मूँदकर थोड़ा-सा सोनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते?"

"सो तो मैं बराबर ही करता हूँ प्यारी, आज ज्वरको कितने दिन हुए?"

"तेरह दिन" कहकर उसने बड़ी बूढ़ी पुरखिनकी तरह गंभीर भावसे कहा, "देखो, लड़के-बालोंके सामने मुझे यह नाम लेकर मत पुकारा करो।

---

* श्रीकान्तका यह भ्रमण-वृत्तान्त पहले बंगालके प्रसिद्ध मासिकपत्र 'भारतवर्ष' में धारावहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था।

बहुत दिनोंतक 'लक्ष्मी' कहकर पुकारा किये हो, वहीं नाम लेकर क्यों नहीं पुकारते ?"

दो दिनसे मैं खूब होशमें था। मुझे भी सब बातें याद आ गई थीं। मैंने कहा, "अच्छा।" इसके बाद, जिस बातके कहनेके लिए बुलाया था उसे मन ही मन अच्छी तरह सजाकर कहा, "मुझे ले जानेकी चेष्टा कर रही हो, किन्तु, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं, अब और नहीं देना चाहता।"

"तो फिर क्या करना चाहते हो ?"

"मैं सोचता हूँ, अब जैसा मैं हूँ, उससे जान पड़ता है कि तीन-चार दिनमें ही, अच्छा हो जाऊँगा। तुम लोग चाहे तो इतने दिन और ठहरकर घर चले जाओ।"

"तब तुम क्या करोगे, सुनूँ तो ?"

"जो कुछ होना होगा सो हो जायगा।"

'सो हो जायगा' कहकर प्यारी कुछ हँस दी। इसके बाद सामने आकर, खाटपर एक ओर बैठकर, मेरे मुँहकी ओर देखकर, क्षण-भर चुप रहकर फिर कुछ हँसकर बोलीं, "तीन चार दिनमें तो नहीं, दस-बारह दिनमें यह रोग चला जायगा, यह मैं जानती हूँ; परंतु असली रोग कितने दिनोंमे दूर होगा सो क्या मुझे बता सकते हो ?"

"असली रोग और क्या ?"

प्यारीने कहा, "सोचोगे कुछ, कहोगे कुछ, और—करोगे कुछ, हमेशासे तुम्हें यही एक रोग है। तुम जानते हो कि एक महीनेके पहले मैं तुम्हें आँखोंकी ओट न कर सकूँगी,—फिर भी कहोगे 'तुम्हें कष्ट दिया, तुम जाओ;' अरे ओ दयामय! मेरा यदि तुम्हें इतना अधिक दर्द है तो, और चाहे जो होओ पर,—संन्यासी तो तुम नहीं हो—संन्यासी बनकर यह क्या हंगामा खड़ा किया है! आकर देखती हूँ, तो जमीनपर फटी कथरीपर घोर बेहोशीमें पड़े हो, धूल-कीचड़में जटायें सन गई हैं, सारे अंगमें रुद्राक्षकी और दोनों हाथोंमें पीतलके कड़े हैं! मैया री मैया! चेहरा देखकर रोये बिना न रह सकी!" इतना कहते कहते उमड़ा हुआ अश्रुजल उसकी दोनों आँखोंमें झलक आया। चटपट उसे हाथसे पोंछकर वह बोली, "बंकू बोला, ये कौन हैं माँ? मन ही मन बोली—तू बच्चा है, तेरे आगे वह बात क्या कहूँ भइया! ओह, वह दिन भी कैसी विपत्तिका था मैया री, कैसी शुभ

घड़ीमें पाठशालामें हमारी चार आँखें हुई थीं! जो दुख; तुमने मुझे दिया है, उतना दुख दुनिया-भरमें किसीने कभी किसीको नहीं दिया होगा,—और न देगा ही। शहरमें शीतला दिखाई दी है,—सबको लेकर अच्छी भली भाग जा सकूँ तो जानमें जान आवे।" इतना कहकर उसने एक दीर्घ श्वास छोड़ी।

उसी रातको आरा छोड़ दिया। एक कम उम्रका डाक्टर अनेक तरहकी ओषधियाँ लेकर हम लोगोंको पटनातक पहुँचानेके लिए साथ गया।

पटना पहुँचकर बारह-तेरह दिनके भीतर ही एक तरहसे मैं चंगा हो गया। एक दिन सुबह अकेला प्यारीके मकानके प्रत्येक कमरेमें घूम आया। उसका माल-असबाब देखकर मैं कुछ विस्मित हुआ। मैंने इसके पहले वैसा देखा न हो सो बात नहीं थी। चीजें सब अच्छी और कीमती थीं, यह ठीक है; परन्तु, इस मारवाड़ी मुहल्लेके बीच, इन सब धनी और अल्पशिक्षित शौकीन मनुष्योंके संसर्गमें, इतनी साधारण चीजोंसे वह सन्तुष्ट कैसे रहती थी? इसके पहले मैंने इस तरहके जितने घर-द्वार देखे थे उनके साथ कहीं किसी भी अंशमें इसकी समानता नहीं थी। उनमें अन्दर घुसते ही विचार होता था कि इनमें मनुष्य क्षण भर भी रहता कैसे होगा? उन मकानोंके झाड़ फानूस, चित्र, दीवालगीरी, आईना और ग्लास-केसोंमें आनंदके बदले आशङ्का ही उत्पन्न होती थी,—सहज श्वास प्रश्वास तकके लिए भी, मालूम होता था कि, अवकाश न मिलेगा।—बहुतसे लोगोंकी बहुविध कामना-साधनाकी उपहार-राशि इस तरह ठसाठस एकके ऊपर एक भरी हुई नजर आती थी कि देखते ही ऐसा मालूम होता था कि इन अचेतन वस्तुओंके समान ही उनके सचेतन दाता भी मानों इस मकानके भीतर जरा-सी जगहके लिए ऐसी ही भीड़ करके परस्पर एक दूसरेके साथ ठेलमठेल संघर्ष कर रहे हैं। किन्तु, इस मकानके किसी भी कमरेमें आवश्यकीय चीजोंके अतिरिक्त एक भी फालतू चीज़ नज़र नहीं आई। और जो भी चीज़ें नजर आईं वे स्वयं गृहस्वामिनीके कामके लिए लाई गई हैं, और उनकी निजी इच्छा और अभिरुचिको लाँघकर, और किसीकी भी प्रलुब्ध अभिलाषासे अनधिकार-प्रवेश करके जगह छेके नहीं बैठी हैं, यह बात सहजमें ही मालूम हो गई। और भी एक बातने मेरी दृष्टिको आकर्षित किया। इतनी सुप्रसिद्ध 'बाईजी'के घरमें गाने बजानेका कहीं कोई आयोजन भी नहीं है। इस कमरे उस कमरेमें घूमता हुआ दूसरे मंजिलके एक कोनेके कमरेके सामने आकर मैं खड़ा हो गया।

यह बाईजीका खुदका शयन-मन्दिर है, यह उसके भीतर झाँकते ही मालूम हो गया। परन्तु मेरी कल्पनाके साथ इसका कितना अन्तर था! जो कुछ सोच रखा था, उसमेंका कुछ भी नहीं था। मेज सफेद पत्थरकी थी, दीवालें दूधकी तरह सफेद चमचमा रहीं थीं। कमरेके एक किनारे एक छोटेसे तख्तके ऊपर बिस्तर बिछे थे, एक लकड़ीकी अरगनीपर कुछ वस्त्र पड़े थे और उसके पीछे एक लोहेकी आलमारी थी। और कहीं कुछ नहीं था। जूते पहिने हुए अन्दर प्रवेश करनेमें भी मानों मुझे एक तरहके संकोचका अनुभव हुआ, उन्हें चौखटके बाहर खोलकर मैंने भीतर प्रवेश किया। मालूम होता है, थकावटके कारण ही उसकी शय्यापर मैं जाकर बैठ गया था। यदि कमरेमें और कोई वस्तु बैठनेके लिए होती तो मैं उसीपर बैठता। सामनेकी ओर खुली हुई खिड़कीको ढँके हुए एक बड़ा नीमका पेड़ था। उसीमेंसे छन छन कर हवा आ रही थी। उस ओर देखता हुआ मैं हठात् जैसे कुछ अन्यमनस्कसा हो गया था। एक मीठी आवाज़से चौंककर मैंने देखा, गुन-गुन गाना गाती गाती प्यारी कमरेमे घुस आई है। वह गंगाजीमे स्नान करने गई थी और अब वहाँसे लौटकर अपने कमरेमें गीले कपड़े उतारने आई है। उसने इस ओर एक दफे भी नहीं देखा है। उसके सीधे अरगनीके पास जाकर सूखे वस्त्रपर हाथ डालते ही मैंने व्यस्त होकर आवाज दी, "घाटपर कपड़े लेकर क्यों नहीं जातीं?"

प्यारीने चौंककर हँस दिया। बोली, "ऐ! चोरकी तरह मेरे कमरेमें घुसे बैठे हो? नहीं नहीं, बैठे रहो, बैठे रहो,—जाओ मत। मैं उस कमरेमेंसे कपड़े बदले आती हूँ।" इतना कहकर वह हलके पैरों गरदकी धोती हाथमें लेकर बाहर चली गई

पाँचेक मिनेटके बाद वह प्रसन्न मुखसे लौट आई और हँसकर बोली, "मेरे कमरेमे तो कुछ भी नहीं है; तब क्या चुराने आये हो, बोलो तो! मुझे तो नहीं?" मैं बोला, "तुमने क्या मुझे ऐसा अकृतज्ञ समझ रखा है? तुमने मेरे लिए इतना किया, और अंतमे तुम्हारी ही चोरी करूँ, मैं इतना लोभी नहीं हूँ।"

प्यारीका मुँह मलीन हो गया। बोलते समय मैंने नहीं सोचा था कि इस बातसे उसे व्यथा पहुँचेगी। उसे व्यथा पहुँचानेकी न तो मेरी इच्छा ही थी, और न ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक ही था। खास तौरसे तब जब कि

मैंने दो एक दिनमें वहाँसे प्रस्थान करनेका संकल्प कर लिया था। बिगड़ी हुई बातको किसी तरह बना लेनेकी गरजसे मैंने जबर्दस्ती हँसकर कहा, " अपनी वस्तुकी भी क्या कोई चोरी करने जाता है ? तुममें इतनी भी बुद्धि नहीं है ? "

किन्तु इतने सहजमें उसे भुलाया न जा सका। उसने मलीन मुखसे कहा, " तुम्हें और अधिक कृतज्ञ होनेकी जरूरत नहीं; दया करके तुमने जो उस समय खबर लगा दी, मेरे लिए वही बहुत है। "

उसके शुद्ध स्नात, प्रसन्न हँसते चेहरेको इस धूपसे उज्ज्वल प्रभात-कालमें ही मैंने म्लान कर दिया, यह देखकर हृदयमें एक वेदना-सी जाग उठी। उस थोड़ी सी हँसीके भीतर जो एक माधुर्य था उसके नष्ट होते ही हानि सुस्पष्ट हो उठी। उसे वापिस लौटानेकी आशासे मैं उसी क्षण अनुतप्त स्वरमें बोल उठा, "लक्ष्मी, तुम्हारे निकट तो कुछ भी छिपा नहीं है,—सब कुछ तो जानती हो। तुम वहाँ नहीं गई होतीं तो मुझे उसी धूल और रेतीके ऊपर ही मर जाना पड़ता, कोई उतनी दूर जाकर एक दफे अस्पतालमें जानेकी भी चेष्टा न करता। वह जो तुमने पत्रमें लिखा था कि, ' सुखके दिनोंमें न सही तो दुःखके दिनोंमें ही मुझे याद कर लेना,' यह बात मुझे मेरी आयु बाकी थी इसीलिए याद आ गई, यह मैं इस समय अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूँ। "

" कर रहे हो ? "

" निश्चयसे। "

" तो फिर कहो कि मेरे ही लिए तुमने पुनः प्राण पाये हैं ? "

" इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। "

" तो क्या मैं उनपर दावा कर सकती हूँ, बोलो ? "

" कर सकती हो। परन्तु मेरे प्राण इतने तुच्छ है कि उनपर तुम्हारा लोभ होना ही उचित नहीं है। "

प्यारीने इतनी देर बाद कुछ हँसकर कहा, " फिर भी गनीमत है कि, अपने मूल्यको इतने दिनोंमें तुमने समझ तो लिया। " किन्तु दूसरे ही क्षण गंभीर होकर कहा, " दिल्लगी रहने दो, बीमारी तो एक तरहसे अच्छी हो गई, अब जानेकी कब सोच रहे हो ? "

उसके प्रश्नको अच्छी तरह न समझ सका। मैंने गंभीर होकर कहा, " कहीं जानेकी तो मुझे जल्दी है नहीं। इसलिए यही सोचना हूँ, और भी कुछ दिन ठहर जाऊँ। "

प्यारी बोली, "किन्तु मेरा लड़का आजकल अक्सर बाँकीपुरसे आया करता है। बहुत दिन ठहरोगे तो शायद वह कुछ ख्याल करने लगे।"

मैंने कहा, "करने दो न। उससे डरकर तो कुछ तुम चलती नहीं! ऐसा आराम छोड़कर यहाँसे शीघ्र ही तो मैं कहीं जाता नहीं।"

प्यारीने विषण्ण मुखसे कहा, "यह भी कहीं हो सकता है!" इतना कहकर वह एकाएक वहाँसे उठकर चल दी।

दूसरे दिन शामके वक्त मैं अपने कमरेके पश्चिमकी तरफके बरामदेमें एक इज़ीचेअरपर लेटा हुआ सूर्यास्त देख रहा था। इसी समय बंकू आ उपस्थित हुआ। अभी तक उसके साथ अच्छी तरह बातचीत करनेका सुयोग नहीं मिला था। एक चेअरपर बैठनेका इशारा करके मैं बोला, "बंकू, क्या पढते हो तुम?"

लड़का अत्यंत सीधा-सादा भलामानुस था। बोला "गये साल मैंने एन्ट्रेन्स पास किया है।"

"तो अब बाँकीपुर-कालेजमें पढते हो?"

"जी हाँ।"

"तुम कितने भाई बहिन हो?"

"भाई और नहीं है। चार बहिने।"

"उनका ब्याह हो गया?"

"जी हाँ, माँने ही उनको ब्याह दिया है।"

"तुम्हारी अपनी माँ जीती है?"

"जी हाँ, वे देशके ही मकानमे रहती हैं।"

"तुम्हारी ये माँ, कभी तुम्हारे देशके मकानमे गई है?"

"बहुत बार, अभी तो पाँच छः महीने हुए, आई हैं।"

"इससे देशमें कोई गड़बड़ नहीं मचती?"

"बंकू कुछ देर चुप रहकर बोला, "मचती रहे। हम लोगोंको 'जातिसे अलग' कर रखा है, सो इससे कुछ हम अपनी माँको छोड़ थोड़े ही सकते हैं! और ऐसी माँ भी कितने लोगोंको नसीब होती है!"

मुँहमे आया कि पूँछू, 'माँके ऊपर इतनी भक्ति हुई कैसे?' किन्तु दबा गया।

बंकू कहने लगा, 'अच्छा, आप ही कहिए, गाने बजानेमें क्या कोई दोष है? हमारी माँ केवल वही करती हैं। कुछ पराई निन्दा, पराई चर्चा तो

करती नहीं ? बल्कि, गाँवमें जो लोग हमारे परम शत्रु हैं उन्हींके आठ दस लड़कोंको पढ़ाई लिखाईका खर्च देती हैं; शीत-कालमें कितने ही लोगोंको कपड़े देती हैं, कम्बल देती हैं, यह क्या बुरा करती हैं ?"

मैंने कहा, "नहीं, वह तो बहुत ही भला काम है।"

बंकूने उत्साहित होकर कहा, "तब कहिए, हमारे गाँवके समान पाजी गाँव क्या और कोई है ! यही देखो न उस वर्ष ईंटें पकाकर हम लोगोंने मकान बनवाया। गाँवमें पानीकी भयानक तकलीफ देखकर माँ मेरी माँसे बोलीं, जीजी, और कुछ रुपये खर्च करके ईंट पकानेके भट्ठेकी जगह ही एक तालाब ही न बनवा दिया जाय ! तीन-चार हजार रुपये खर्च करके तालाब बनवा दिया। घाट भी बँधवा दिया। किन्तु, गाँवके लोगोंने माँको उस तालाबकी प्रतिष्ठा न करने दी। ऐसा बढ़िया पानी—किन्तु कोई पीएगा नहीं, कोई छुएगा नहीं, ऐसे बदजात आदमी हैं। केवल इसी ईर्षाके मारे सब मरे जाते हैं कि हमारा पक्का मकान बन गया। आप समझे न ?"

मैंने अचरजसे कहा, "कहते क्या हो जी ! पानीका ऐसा दारुण कष्ट भोगा करेंगे, फिर भी ऐसे पानीका व्यवहार न करेंगे ?"

बंकूने जरा-सा हँसकर कहा, "यही तो, किन्तु वह क्या अधिक समय चल सकता है ? पहले साल तो डरके मारे किसीने पानी छुआ नहीं; किन्तु अब छोटी जातिके सभी लोग लेते हैं और पीते हैं,—ब्राह्मण और कायस्थ भी चैत्र वैशाखके महीनोंमें लुक-छिपकर पानी ले जाते हैं,—परंतु फिर भी उन्होंने तालाबकी प्रतिष्ठा नहीं करने दी। यह क्या माँके लिए कम कष्टकी बात है ?"

मैंने कहा, "अपनी नाक काटके पराया अपशकुन करनेकी जो कहावत सुनी जाती है, वह यही है।"

बंकू जोरसे बोल उठा, "ठीक यही बात है। ऐसे गाँवमें अलहदा एक घरसे रहना शापके रूपमें भी वरदानके समान है। आपकी क्या राय है ?" जवाबमें मैंने भी केवल हँसकर सिर हिला दिया। हाँ या नहीं,—स्पष्ट कुछ नहीं कहा। परंतु, इस बंकूके उत्साहमें बाधा नहीं पड़ी। मैंने देखा कि लड़का अपनी विमाताको सचमुच ही प्यार करता है। अनुकूल श्रोता पाकर भक्तिके आवेगमें वह देखते देखते पागल हो उठा और उसके लगातारके स्तुति-वादने मुझे करीब करीब व्याकुल कर दिया।

हठात् एकाएक उसे होश आया कि इतनी देरमें मैंने उसकी एक भी बातमें योग नहीं दिया। तब वह कुछ अप्रतिभ-सा होकर किसी तरह प्रसङ्गको दबा देनेकी गरजसे बोला, " आप यहाँपर और भी कुछ दिन हैं न ? "

मैंने हँसकर कहा, " नहीं, कल सुबह ही चला जाऊँगा। "

" कल ही ! "

" हाँ, कल ही। "

" परन्तु आपका शरीर तो अभी तक सबल हुआ नहीं। क्या आप समझते हैं कि बीमारी एकबारगी चली गई ? "

मैंने कहा, " सुबह तक तो मैं यही समझता था कि बीमारी गई, परन्तु अब सोचता हूँ कि नहीं। आज दोपहरसे ही मेरा सिर दुख रहा है। "

" तो फिर क्यों इतने शीघ्र जाते हैं ? यहाँ तो आपको किसी प्रकारका कष्ट है नहीं " इतना कहकर वह लड़का चिन्तित मुखसे मेरी ओर देखने लगा।

मैंने भी कुछ देर चुप हो, उसके चेहरेकी ओर देखते हुए, उसके मुँहपर उसके भीतरके यथार्थ भावको पढ़नेकी कोशिश की। जितना भी मैंने उसे पढ़ा उससे उसकी ओरसे सत्य-गोपनकी कोई भी चेष्टा होती हुई मैं अनुभव नहीं कर सका। इसपर लड़का लजा अवश्य गया और उस लज्जाको ढँकनेकी भी उसने कोशिश की। वह बोला " आप यहाँसे मत जाइए। "

" क्यों न जाऊँ, बताओ ? "

" आपके रहनेसे माँ बड़े आनन्दसे रहती हैं। " यह कह तो दिया,—पर इससे उसका मुँह लाल हो गया। वह चटसे उठकर चल दिया। मैंने देखा, लड़का अत्यंत भोला और सरल प्रकृतिका जरूर है, परन्तु बेवकूफ नहीं है। प्यारीने कहा था, कि " और अधिक दिन रहोगे तो मेरा लड़का क्या खयाल करेगा ? " इस बातके साथ उस लड़केके व्यवहारकी आलोचनाका अर्थ भी मानों मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ ऐसा मुझे मालूम पड़ा; और मातृत्वकी इस एक नयी तसवीरके दृष्टिगोचर होनेसे मानों मैंने एक नूतन ज्ञान संपादित किया। प्यारीके हृदयकी एकाग्र वासनाका अनुमान करना हमारे लिए कठिन नहीं है और वह संसारमें सब ओरसे सब तरह स्वाधीन है, यह कल्पना करना भी, मैं समझता हूँ कि, पाप नहीं है। फिर भी, उसने जिस मुहूर्त्तसे एक दरिद्र बालकके मातृ-पदको स्वेच्छासे ग्रहण किया है तभीसे मानों अपने दोनों पैरोंको लोहेकी साँकलोंसे जकड़ लिया है। वह स्वयं

चाहे जो हो परन्तु उसे, अपनेतईं माताका सम्मान तो अब देना ही होगा ! उसकी असंयत कामना, उच्छृंखल प्रवृत्ति, उसे चाहे जितने अधःपातकी ओर क्यों न ठेलना चाहे, परन्तु यह बात भी तो उससे भूली नहीं जाती कि, वह एक लड़केकी माँ है ! और उस सन्तानकी भक्ति-नत दृष्टिके सामने तो वह उस माँको किसी तरह भी अपमानित नहीं होने देगी ! उसके विह्वल यौवनके लालसामत्त वसन्तके दिनोंमें प्यारके साथ किसने उसका नाम 'प्यारी' रखा था यह तो मैं नहीं जानता; किन्तु, यह नाम भी वह अपने लड़केके सामने छुपा रखना चाहती है, यह बात मुझे याद आ गई !

देखते देखते सूर्य अस्त हो गया। उस ओर ताकते ताकते मेरा सारा अन्तःकरण मानों पिघलकर लाल हो उठा। मन ही मन बोला कि राजलक्ष्मीको अब तो मैं नीची निगाहसे देख नहीं सकता। हम दोनोंका बाहरी बर्ताव इतने दिनोंतक चाहे जितने बड़े स्वातंत्र्यकी रक्षा करते हुए क्यों न चलता रहा हो, स्नेह चाहे जितना माधुर्य क्यों न ढाल दे, परंतु, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि दोनोंकी कामनाएँ एकत्र सम्मिलित होनेके लिए प्रत्येक क्षण दुर्निवार वेगके साथ एक दूसरेकी ओर दौड़ रही हैं। परंतु आज मैंने देखा कि यह असंभव है। एकाएक 'बंकूकी माँ' आकाशभेदी हिमालय पर्वतकी नाईं रास्ता रोककर राजलक्ष्मी और मेरे बीच आकर खड़ी हैं। मन ही मन मैंने कहा, कल सुबह ही तो मैं यहाँसे जा रहा हूँ – किन्तु तब कहीं ऐसा न हो कि मनमें फायदे-नुकसानका हिसाब लगाने जाकर कुछ बचा रखनेकी चेष्टा करने लगूँ। मेरा यह जाना अन्तिम जाना ही हो। देख न पानेका बहाना करके एक अतिसूक्ष्म वासनाका बन्धन मैं यहाँ न रख जाऊँ, जिसका सहारा लेकर फिर कभी मुझे यहाँ आकर उपस्थित होना पड़े।

अन्यमनस्क होकर उसी जगह बैठ हुआ था। संध्याके समय धूपदानीमें धूप डालकर उसे अपने हाथोंमें लिये हुए राजलक्ष्मी उसी बरामदेमेंसे और एक कमरेमें जा रही थी कि चौंककर खड़ी हो गई और बोली, "सिर दर्द कर रहा है, ओसमें क्यों बैठे हुए हो ? कमरेमें जाओ।"

मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा," अवाक् कर दिया तुमने लक्ष्मी ! ओस यहाँ कहाँ है ?"

राजलक्ष्मी बोली, "ओस न सही, ठण्ठी हवा तो चल रही है। वही क्या अच्छी होती है ?"

"नहीं, यह तुम्हारी भूल है। ठण्डी-गरम कोई हवा नहीं चल रही है।" राजलक्ष्मी बोली. "मेरी तो सब भूल ही भूल है, परतु सिर दर्द कर रहा है यह तो मेरी भूल नहीं है,—यह तो सत्य है न? कमरेमें जाकर थोड़ी देर सो रहो न! रतन क्या करता है! वह क्या थोड़ा ओ डिकोलोन सिरमे नहीं लगा सकता? इस घरके नौकर चाकरोंके समान नवाब नौकर पृथ्वीमे और कहीं नहीं हैं।" इतना कहकर राजलक्ष्मी अपने कामपर चली गई।

रतन जब घबराकर और लज्जित हो ओ डिकोलोन, पानी आदि लेकर हाजिर हुआ और अपनी भूलके लिए बार बार अनुताप प्रकट करने लगा तब मुझसे हँसे बिना न रहा गया।

रतनने इससे साहस पाकर धीरे धीरे कहा, "इसमें मेरा दोष नहीं है बाबू, यह क्या मैं नहीं जानता? परन्तु माँसे यह कहनेका उपाय ही नहीं कि जब तुम्हें गुस्सा आता है, तब झूठ-मूठ ही घर-भरके लोगोंके दोष देखने लगती हो!"

कुतूहलसे मैंने पूछा, "गुस्सा क्यों है?"

रतन बोला, "यह जाननेका क्या कोई उपाय है? बड़े लोगोंकी गुस्सा, बाबूजी, यों ही आ जाता है और यों ही चला जाता है। उस समय यदि अपना मुँह छिपाकर न रहा जा सके, तो नौकर चाकरोंके प्राण गये समझो!" दरवाजेके समीपसे एकाएक सवाल आया, "तब तुम लोगोंका मै सिर काट लेती हूँ, क्यों रतन? और फिर बड़े लोगोंके घरमें यदि इतनी मुसीबत है तो और कहीं क्यों नहीं चला जाता?"

मालिकके सवालसे रतन कुण्ठित हो नीचा सिर किये चुपचाप बैठा रहा। राजलक्ष्मीने कहा, "तेरा काम क्या है? उनका सिर दर्द करता है, यह बंकूके मुँहसे सुनकर मैंने तुझसे कहा। इसीसे अब रातके आठ बजे यहाँ आकर मेरी बड़ाई कर रहा है! कलसे कहीं और नौकरी खोज लेना, अब यहाँ काम नहीं है। समझा?"

राजलक्ष्मीके चले जानेपर रतन ओ'डिकोलोन पानी मिलाकर मेरे सिरपर रखकर हवा करने लगा। राजलक्ष्मीने उसी क्षण लौटकर पूछा, "क्या कल सुबह ही घर जाओगे?" मेरा जानेका इरादा जरूर था, परतु घर लौट जानेका नहीं। इसीलिए सवालका जवाब मैंने और ही तरहसे दिया, "हाँ, कल सुबह ही जाऊँगा।"

"सुबह कितने बजेकी गाड़ीसे जाओगे?"

"सुबह ही निकल पढ़ूँगा,—फिर जो भी गाड़ी मिल जावे।"

"अच्छा। न हो तो टाइमटेबुलके लिए किसीको स्टेशन भेजे देती हूँ।" इतना कहकर वह चली गई।

इसके बाद यथासमय रतनने काम समाप्त करके प्रस्थान किया। नीचेसे नौकर चाकरोंका शब्द आना बन्द हो गया। मैं समझ गया कि सभीने इस समय निद्राके लिए शय्याका आश्रय ग्रहण कर लिया है।

मुझे किन्तु किसी तरह नींद नहीं आई। घूम फिरकर केवल एक ही बात बार बार मनमें आने लगी कि प्यारी नाराज क्यों हो गई? ऐसा मैंने क्या किया है जिससे कि वह मुझे रवाना करनेके लिए अधीर हो उठी है? रतनने कहा था कि बड़े आदमियोंको क्रोध यों ही आ जाया करता है। यह बात और और बड़े आदमियोंके सम्बन्धमें ठीक उतरती है या नहीं, सो नहीं मालूम, परन्तु प्यारीके सम्बन्धमें तो किसी तरह भी ठीक नहीं उतरती। वह अत्यन्त संयमी और बुद्धिमती है, इसका परिचय मुझे बहुत बार मिल चुका है; और मुझमें भी, और बुद्धि चाहे भले ही न हो, प्रवृत्तिके सम्बन्धमें संयम उससे कम नहीं है,—मैं तो समझता हूँ किसीसे भी कम नहीं है। मेरे हृदयमें चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसे मुँहसे बाहर निकालना, अत्यन्त विकारकी बेहोशीमें भी मैं अपने लिए संभव नहीं मानता। व्यवहारमें भी किसी दिन ऐसा किया हो, सो भी मुझे याद नहीं! खुद उसके किसी कार्यके कारण लज्जाका कुछ कारण घटित हुआ हो, वह तो अलग बात है; परन्तु मेरे ऊपर गुस्सा होनेका कोई कारण नहीं है। इसलिए, विदाके समयका उसका यह उदासीन भाव मुझे जो वेदना देने लगा, वह अकिंचित्कर नहीं था।

बहुत रात बीते एकाएक तन्द्रा टूट गई और मैंने आँख खोलकर देखा कि राजलक्ष्मी गुपचुप कमरेमें आई और उसने टेबलके ऊपरका लेम्प बुझाकर उसे दरवाजेके कोनेकी आड़में रख दिया। खिड़की खुली हुई थी, उसे बन्द करके, मेरी शय्याके समीप आकर क्षण-भर चुप खड़ी रहकर उसने कुछ सोचा। इसके बाद मशहरीके भीतर हाथ डालकर उसने पहले मेरे सिरका उत्ताप अनुभव किया। इसके बाद कुरतेके बटन खोलकर वह छातीके उत्तापको बार बार देखने लगी। एकान्तमें आनेवाली नारीके इस गुप्त कर-स्पर्शसे पहले तो मैं कुण्ठित और लज्जित हो उठा; परन्तु,

उसी समय मनमें आया कि रोगकी बेहोशीकी हालतमें सेवा करके जिसने चैतन्यको लौटाकर ला दिया था, उसके नजदीक मेरे लिए लाज करनेकी बात ही कौन सी है ! इसके बाद उसने बटन बंद कर दिये, ओढनेका कपड़ा खिसक गया था उसे गलेतक उढ़ा दिया, अन्तमें मसहरीके किनारोंको अच्छी तरह ठीक करके अत्यन्त सावधानीसे किवाड़ बन्द करके वह बाहर चली गई।

मैंने सब कुछ देखा और सब कुछ समझा। जो छिपे छिपे आई थी उसे छिपे छिपे ही जाने दिया। परन्तु इस निर्जन आधी रातको वह अपना कितना मेरे निकट छोड़ गई, सो वह कुछ भी न जान सकी। सुबह जब नींद खुली तब बुखार चढा हुआ था ! आँखे और मुँह जल रहे थे, सिर इतना भारी था कि शय्या त्याग करते क्लेश मालूम हुआ। फिर भी जाना ही होगा। इस घरमें मुझे अब अपने ऊपर जरा भी विश्वास नहीं था, न जाने वह किस क्षण धोखा दे जाय। फिर भी डर मुझे अपने लिए उतना नहीं था। परन्तु, राजलक्ष्मीके लिए ही मुझे राजलक्ष्मीको छोड़ जाना होगा, इसमें अब जरा-सी भी आनाकानी करनेसे काम न चलेगा।

मन ही मन सोच कर देखा कि उसने अपने विगत जीवनकी कालिमाको बहुत कुछ धोकर साफ कर डाला है। आज अनेक लड़के बच्चे माँ माँ कहते हुए उसे चारों ओरसे घेरे खड़े हैं। इस भक्ति और प्रीतिके आनन्द-धामसे उसे अपमानके साथ छीनकर बाहर निकाल लाऊँ ?—इतने बड़े प्रेमकी क्या यही सार्थकता अन्तमें मेरे जीवनके अध्यायमें चिरकालके लिए लिपिबद्ध हो रहेगी ? "

प्यारीने कमरेमें प्रवेश करके पूछा, " इस समय तबीयत कैसी है ? "

मैं बोला, " ऐसी कुछ विशेष खराब नहीं है। जा सकूँगा। "

" आज न जानेसे क्या न चलेगा ? "

" नहीं, आज तो जाना ही चाहिए। "

" तो फिर घर पहुँचते ही खबर देना। नहीं तो हम लोगोंको बहुत चिन्ता होगी। "

उसके अविचिलित धैर्यको देखकर मैं मुग्ध हो गया। उसी क्षण सम्मत होकर बोला, "अच्छा, मैं घर ही जाऊँगा और पहुँचते ही तुम्हें खबर दूँगा। "

प्यारीने कहा, " जरूर देना। मैं भी चिट्ठी लिखकर तुमसे दो-एक बातें पूछूँगी। "

जब मैं बाहर पालकीमें बैठने जा रहा था तब देखा कि दूसरे मंजिलके बरामदेमें प्यारी चुपचाप खड़ी है। उसकी छातीके भीतर क्या हो रहा है, सो उसका मुँह देखकर मैं न जान सका।

मुझे अपनी अन्नदा जीजी याद आ गईं। बहुत समय पहले एक अन्तिम दिन वे भी मानों ठीक ऐसी ही गम्भीर, ऐसी ही स्तब्ध, होकर खड़ी थीं। उस समयकी उनकी दोनों करुण आँखोंकी दृष्टिको मैं आज भी नहीं भूला हूँ; परन्तु उस दृष्टिमें निकटवर्ती जुदाईकी कितनी बड़ी व्यथा घनीभूत हो रही थी सो मैं उस समय नहीं पढ़ सका था। क्या जानूँ, आज भी उसी तरहका कुछ उन दोनों निविड़ काली आँखोंमें है या नहीं।

उसास छोड़कर मैं पालकीमें जा बैठा। देखा कि बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, दूर भी ठेल देता है। छोटे-मोटे प्रेमके लिए यह साध्य ही नहीं था कि वह इस सुखैश्वर्यसे भरे-पूरे स्नेह-स्वर्गसे मुझे, मङ्गलके लिए, कल्याणके लिए, एक डग भी आगे बढ़ाने देता। कहार पालकी लेकर स्टेशनकी ओर जल्दीसे चल दिये। मन ही मन मैं बारंबार कहने लगा कि लक्ष्मी दुःख मत करना। यह अच्छा ही हुआ कि मैं यहाँसे चल दिया। तुम्हारा ऋण इस जीवनमें चुकानेकी शक्ति तो मुझमें नहीं है। परंतु जिस जीवनको तुमने दिया है, उस जीवनका दुरुपयोग करके अब मैं तुम्हारा अपमान न करूँगा,—तुमसे दूर रहते हुए भी मैं यह संकल्प सदा अक्षुण्ण रखूँगा।

प्रथम पर्व समाप्त